सातवें संस्करण पर वक्तव्य

इस संस्करण में मैंने केवल भाषा का ही संशोधन किया है।

हमें इस बात का हर्ष है कि 'साहित्य-सेवा-सदन' द्वारा प्रकाशित "भ्रमर गीत सार", "बिहारी सतसई" (सटीक), "पद्य-रत्नावली", "रहीम-रत्नावली", "तुलसी-सूक्ति-सुधा", "भंवर गीत" "विनय-पत्रिका" "मुद्राराक्षस", "कुसुम-संग्रह", आदि ग्रन्थों का पाठकों ने विशेष आदर किया है। वे सभी प्रायः भारत के सब विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम, रिफरेंस और पुस्तकालयों के लिये निर्धारित हैं। इधर जितने नये विश्वविद्यालय, पुस्तकालय इत्यादि खुले हैं उनके संचालक तथा कर्मचारियों को भी धन्यवाद! क्योंकि उन लोगों ने राष्ट्रभाषा (हिन्दी) की सेवा करने में सहायता दी है।

गोपाल मन्दिर, काशी
श्रावण सं० २०१०

गोपालदास गुजराती 'सेवक'
साहित्य-सेवा-सदन

विषयानुक्रमणिका

टीकाकार का वक्तव्य	प्रारम्भ में
टीकाकार का परिचय	”

(प्रथम शतक १–१००)

विषय	दोहों का नंबर
मंगलाचरण	१–२३
वय:सन्धि-वर्णन	२४-२७
युवावस्था-वर्णन	२८-३२
केश-वर्णन	३३-३६
स्नानान्तर मुखपर छुटी हुई लटका वर्णन	३७
बेणी वर्णन	३८
टीका वर्णन	३९
बिंदी वर्णन	४०-४६
भौंह वर्णन	४७-४९
नयन वर्णन	५०-५७
नैन-सैन वर्णन	५८-७२
नयनोक्तियाँ	७३-८४
नासिका वर्णन	८५-९०
कपोल वर्णन	९१
श्रवण वर्णन	९२
अधर वर्णन	९३
चिबुक वर्णन	९४-९७
डिठौना वर्णन	९८-९९
मेहँदी वर्णन	१००

(द्वितीय शतक १०१-२००)

मुख वर्णन	१०१-१०२
हास्य-वर्णन	१०३
कुच वर्णन	१०४
कटि वर्णन	१०५-१०६
जंघा वर्णन	१०७
मोरवा वर्णन	१०८
एंडी वर्णन	१०९-११०
पायल वर्णन	१११
अनवट वर्णन	११२
पगतल वर्णन	११३
कंचुकी वर्णन	११४-११५
वस्त्राभूषण वर्णन	११६-१२१
खुभी वर्णन	१२२
तरौना वर्णन	१२३-१३५
छवि वर्णन	१३६-१५५
सुकुमारता वर्णन	१५६-१६०
रूप वर्णन	१६१-१६६
हाव वर्णन	१६७-१७०
स्वकीया वर्णन	१७१-१७२
नवोढ़ा वर्णन	१७३
विश्रब्ध नवोढ़ा वर्णन	१७४
परकीया वर्णन	१७५-१७६
अनुराग वर्णन	१७७-१८०

प्रत्यक्षदर्शन वर्णन १८१-२००

(तृतीय-शतक २०१-३००)

अनुराग वर्णन २०१-२१०
स्वप्न दर्शन २११-१२
गुट्टी २१३
प्रेम-दृढ़ता २१४-२१७
प्रेमानुभव २१८-२२७
प्रेमपीड़ा २२८-२३५
प्रेमानन्द २३६
प्रेमालाप २३७
प्रेम विवशता २३८-२४८
प्रेमछल २४९
चित्तचोरी २५०
नायिका नागिन २५१
चतुराई २५२
प्रेम सूचक चेष्टा २५३-२५६
नारि-निशा २५७
प्रेमोत्पादक प्रशंसा २५८-२६५
सखीकृत शिक्षा २६६-२७५
विरह निवेदन २७६-२७९
उपालंभ २८०
प्रेमोत्तेजन २८१-२८६
संघट्टन युक्ति २८७-२८८
मुख प्रशंसा २८९-२९०
संघट्टन युक्ति २९१-२९२
फुटकर २९३-३००

(चतुर्थ शतक ३०१-४००)

प्रेम लक्षण ३०१-३०४
प्रेम सांत्वना ३०५-३०६
दूती ३०७
अभिसारिका वर्णन ३०८-३१५
पियामिलन उछाह वर्णन ३१६-३२०
प्रथम मिलन में दूती वचन ३२१-३२४
प्रथम मिलन वर्णन ३२५-३३०
नाही वर्णन ३३१
सुरतारम्भ वर्णन ३३२-३३७
रति वर्णन ३३८-३३९
विपरीत रति वर्णन ३४०-३४४
सुरतान्त वर्णन ३४५-३४६
लोट (त्रिवली) वर्णन ३४७
प्रेम क्रीड़ा वर्णन ३४८-३५७
मदपान वर्णन ३५८-३६१
वनविहार वर्णन ३६२-३६५
जलविहार वर्णन ३६६-३६७
हिंडोरा वर्णन ३६८-३६९
चोरमिहीचनी वर्णन ३७०
सेज से उठना ३७१-३७४
रतिलक्षिता वर्णन ३७५-३७८
गर्विता वर्णन ३७९-३८१
खंडिता वर्णन ३८२-४००

(पञ्चम शतक ४०१-५००)

खंडिता ४००-४२२
मानिनी वर्णन ४२३-४५०

क्रिया विदग्धा ४५१
मान और परिहास ४५२–४५४
प्रेम गर्विता ४५५
पति अनुरागिनी ४५६–४६१
उत्कंठिता ४६२
दक्षिण नायक ४६३
धृष्ट नायक ४६६
जेठा कनिष्ठा वर्णन ४६७–४७२
परोसिन प्रेम ४७३–४७५
विरह वर्णन ४८५–५००
(षष्ठ शतक ५०१–६०५)
विरह वर्णन ५००–५३७
प्रेम-संदेश ५३८
प्रेमपाती ५३९–५४२
आगतपतिका ५४३–५५२
फाग वर्णन ५५३–५५९
(षटऋतु वर्णन)
वसंत ५६०–५६३
ग्रीष्म ५६४–५६६
पावस ५६७–५७८
शरद् ५७९
हेमंत ५८०–५८३
शिशिर ५८४–५८६
द्वितीयाचंद्र दर्शन ५८७–५८८
चांदनी ५८९
पवन वर्णन ५९०–५९४
कूलवधू वर्णन ५९५
ग्रामीण नायिका–
वर्णन ५९६–५९८
नायिका का स्नान
वर्णन ५९९–६०५
(सप्तम शतक ६०६–७२५)
गर्भवती ६०६
कातनिहारी ६०७
स्त्री चरित्र ६०९
फुटकर ६१०–६१६
रसिक वर्णन ६१७–६१८
सज्जन ६१९
सम्पति ६२०
दुर्जन ६२१
कृपण ६२२
नीच ६२३–२५
जयसिंह वर्णन ६२६–३१
दुराज ६३२
लोकरीति ६३३–३६
संगति ६३८
फुटकर ६३९–५४
अन्योक्तियाँ ६५५–७७
शांत रस ६७८–७१०
फुटकर ७११–७२५
दोहों के म्नबर की सूचनिका २९०
शब्दकोश ३०५

❀ श्रीहरिः ❀

❀ बिहारी-बोधिनी ❀

(प्रथम शतक)

[मङ्गलाचरण]

दो०—मेरी भवबाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाँई परे, स्याम हरित दुति होय ॥१॥

शब्दार्थ—भवबाधा = जन्म-मरण का दुःख। जा तन की = जिसके शरीर की। झाँई = छाया। स्याम = श्रीकृष्ण। हरित दुति = आनन्दित।

भावार्थ—वे ही राधा नागरी मेरे जन्म-मरण के दुःखों को दूर करें जिनके शरीर की छाया पड़ते ही श्रीकृष्ण जी भी (जो स्वयं आनन्द-मूर्ति हैं) आनन्दित हो जाते हैं।

[विशेष]—इस दोहे में कवि श्रीराधिका जी को कृष्ण से भी बढ़ कर आनन्ददायिनी शक्ति मानकर निज दुःख हरण की प्रार्थना करता है।

अलंकार—काव्यलिंग। (काव्यलिंग जहँ युक्ति सों अर्थ समर्थन होय)।

[सूचना]—हमारी सम्मति में 'हरित दुति' का अर्थ होना चाहिये "हरी गई है द्युति जिसकी"। इसी अर्थ से राधिका जी में 'भवबाधा' हरने की शक्ति का होना प्रतिपादित होकर 'काव्यलिंग' अलंकार सिद्ध हो सकता है।

दो०—सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
यहि बानिक मो मन बसो, सदा बिहारीलाल ॥२॥

शब्दार्थ—उर = हृदय। बानिक = रूप।

भावार्थ—सरल ही है। (यह बानिक वर्णन है)।

अलंकार—स्वभावोक्ति (जाको जैसो रूप गुण बरनत ताही साज

दो०—मोहनि मूरति स्याम की, अति अद्भुत गति जोय।
बसति सुचित अन्तर तऊ, प्रतिबिंबित जग होय ॥३॥

शब्दार्थ—जोय = देखो। अन्तर = भीतर।

भावार्थ—देखो! श्याम (कृष्णजी) की मोहिनी मूर्ति की अत्यन्त अनोखी रीति है। सुन्दर चित्त के भीतर तो रहती है, परन्तु उसकी कान्ति संसार भर में प्रतिबिंबित होती है।

अलंकार—तीसरी विभावना (प्रतिबन्धक के होत हू होय काज जेहि ठौर)

दो०—तजि तीरथ हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुराग।
जिहिं ब्रज केलि निकुंज मग, पग-पग होत प्रयाग ॥४॥

शब्दार्थ—तजि = छोड़ो। करि = करो। निकुञ्ज = कोई निश्चित कुञ्ज। प्रयाग = (प्र + याग = जहाँ बहुत से यज्ञ हुए हों) तीर्थराज प्रयाग, त्रिवेणी तीर्थ।

(वचन)—किसी प्रेमी भक्त का वचन किसी तीर्थाटनप्रिय व्यक्तिप्रति।

भावार्थ—तीर्थाटन को छोड़कर श्रीकृष्ण और राधिका की छटा पर प्रेम करो। (प्रेमपूर्वक युगल-मूर्ति की माधुरी को ध्यान में अवलोकन करो) जिस छटा से ब्रजमण्डल की केलि-निकुञ्जों के रास्ता को पग-पग पृथ्वी प्रयाग के समान पुण्यदायिनी हो जाती है—अथवा त्रिवेणीवत् हो जाती है।

[विशेष]—श्रीकृष्ण और राधिकाजी के चरणों के प्रभाव से पृथ्वी का पवित्र होना असम्भव नहीं।

चरणों की नखप्रभा से सफेद, तलवों की आभा से लाल और कृष्ण के चरणों के पृष्ठ भाग से श्याम कान्ति की आभा पड़ने से गंगा, सरस्वती और यमुना (अर्थात् त्रिवेणी) का होना सम्भवित है। यथा:—वैरै जहाँ ही जहाँ वह बाल तहाँ तहाँ ताल में होत त्रिवेणी (पद्माकर)।

अलंकार—१ काव्यलिंग। २—उल्लास। ३—तद्गुण।

दो०—सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मंद समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर ॥५॥

शब्दार्थ—मन्द=धीरे-धीरे बहनेवाली। समीर=हवा।

भावार्थ—सरल ही है।

अलंकार—स्मरण (कछु लखि, कछु सुनि, सोचि कछु सुधि आवै कछु खास)।

दो०—सखि सोहति गोपाल के, उर गुञ्जन की माल।
बाहर लसति मनो पिये, दावानल जो ज्वाल ॥६॥

शब्दार्थ—गुंजा=घुंघुची। ज्वाल=लपट।

भावार्थ—हे सखी देखो, गोपाल के हृदय पर घुंघुचियों की माला ऐसी शोभा देती है, मानो कृष्ण ने जो दावानल पी लिया है उसी की ज्वाला बाहर दिखलाई पड़ रही है।

अलंकार—उक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—जहाँ जहाँ ठाढ़ो लख्यो, स्याम सुभग-सिरमौर।
उनहूँ बिन छिन गहि रहत, दृगनि अजहुँ वह ठौर ॥७॥

शब्दार्थ—सुभग-सिरमौर=भाग्यवानों में शिरोमणि (यहाँ पर रूपवानों में शिरामणि)। छिन=थोड़ी देर के लिये। वह ठौर अजहुँ दृगनि गहि रहत=वह जगह अब भी आँखों को पकड़ लेती है अर्थात् आँखें वही टकटकी बाँधकर देखती हैं।

भावार्थ—जहाँ जहाँ उस अत्यन्त सुन्दर श्याम (कृष्ण) को खड़े देखा है, वह स्थान अब भी, उनकी अनुपस्थिति में भी, मेरे नेत्रों को पकड़ रखता है। अर्थात् मेरे नेत्र उस स्थान को टकटकी बाँधकर बड़ी देर तक देखा करते हैं!

अलंकार—विभावना। स्मरण।

दो०—चिरजीवो जोरी जुरै क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि ये वृषभानुजा, वे हलधर के बीर ॥८॥

शब्दार्थ—स्नेह = प्रेम। गँभीर = गहरा। वृषभानुजा = वृषभानु की बेटी। हलधर के बीर = बलदेव के भाई। (दूसरा अर्थ) वृषभानुजा= वृषभ + अनुजा = बैल की बहिन। हलधर के बीर = बैल (हलधर) के भाई।

[विशेष]—श्लेष वक्रोक्ति अलंकार से इस दोहे में इसी दूसरे अर्थ के भान से ही अधिक मज़ा आता है। हास्य उद्देश्य के सखी का वचन सखी प्रति।

भावार्थ—यह जोड़ी दीर्घजीवी हो, इन दोनों (राधा और कृष्ण) में गहरा प्रेम क्यों न जुड़े (अर्थात् जुड़ना ही चाहिये, क्योंकि दोनों सम हैं)। दोनों में से कोई कम नहीं है, ये (राधा) वृषभानु की कन्या हैं और वे बलदेव के भाई हैं, (अथवा व्यंग्य से ये बैल की बहिन और वे बैल के भाई हैं)

अलंकार—श्लेषवक्रोक्ति। सम (वरणत जहाँ विशुद्ध मति यथा-योग्य को संग)।

दो०—नित प्रति एकत ही रहत, बैस बरन मन एक।
चहियत जुगल किसोर लखि, लोचन जुगल अनेक ॥६॥

शब्दार्थ—नित प्रति = सदा। एकत ही=एकत्र, एक साथ ही। बैस = अवस्था। बरन = जाति (अथवा नाम के अक्षर अर्थात् श्यामा और श्याम)। जुगलकिसोर = राधा और कृष्ण। लखि=देखने के लिये। लोचन जुगल = आँखों के जोड़े। (यह अनुकूल नायक का वर्णन है)।

भावार्थ—सदा एक ही साथ रहते हैं। अवस्था, जाति और मन (दोनों के) एक ही से हैं। ऐसी युगलमूर्ति की माधुरी देखने के लिये आँखों के अनेक जोड़े चाहिये (अर्थात् वह सौन्दर्य देखने के लिये आँखों का एक जोड़ा काफी नहीं है)।

(व्यंग)—राधाकृष्ण का सौन्दर्य अपार है।

अलंकार—सम।

दो०—मोर मुकुट की चन्द्रिकनि, यों राजत नँदनन्द ।
मनु ससिसेखर के अकस, किय सेखर सत चन्द ॥१०॥

शब्दार्थ—चन्द्रिका=मोरपंख में बने हुए चन्द्राकार चिह्न । ससि-सेखर के अकस=महादेवजी के विरोधी ने (अर्थात् कामदेव ने)। किय सेखर=सिर पर धारण किये हैं ।

भावार्थ—श्रीकृष्णजी मोरपंखों के मुकुट की चन्द्रिकाओं से ऐसे शोभित हो रहे हैं, मानों शिव जी से ईर्षा रखने वाले कामदेव ने सौ चन्द्रमाओं को सिर पर धारण किया हो ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

दो०—नाचि अचानक ही उठे, बिन पावस बन मोर ।
जानति हौं नन्दित करी, यह दिसि नन्दकिसोर ॥११॥

शब्दार्थ—पावस=वर्षा । नन्दित करी=आनन्दित की ।

(वचन)—सखी वचन विरहिनी नायिका प्रति नायक आगमन, सूचनार्थ ।

भावार्थ—बिना वर्षा के ही वन में अचानक मोर नाचने लगे, इससे मैं अनुमान करती हूँ कि इस दिशा को श्रीकृष्ण ने आनन्दित किया है। (इस स्थान पर आते ही हैं) ।

अलंकार—भ्रम (कृष्ण को देख कर मोरों को घन का भ्रम हुआ) प्रमाणान्तर्गत अनुमान अलंकार (मोरों को नाचते देख कृष्ण के आगमन का अनुमान) ।

दो०—प्रलय करन बरषन लगे, जुरि जलधर इक साथ ।
सुरपति गर्ब हर्यो हरषि, गिरिधर गिरिधर हाथ ॥१२॥

शब्दार्थ—प्रलय करन=प्रलय काल वाले । जलधर=बादल । सुरपति=इन्द्र । गिरिधर=श्रीकृष्ण ।

भावार्थ—जिस समय (व्रज को बहा देने के लिये) प्रलयकाल वाले बादल एकत्र होकर बरसने लगे, उस समय श्रीकृष्ण ने सहर्ष अपने हाथ पर पहाड़ को उठाकर इन्द्र का अहंकार दूर किया ।

[विशेष]—श्रीकृष्ण का वीरत्व-वर्णन है। हर्ष संचारी है।

अलंकार—छेकानुप्रास, यमक।

दो०—डिगत पानि डिगुलात गिरि, लखि सब ब्रज बेहाल।
संग किसोरी दरस तें, खरे लजाने लाल ॥१३॥

शब्दार्थ—डिगुलात = डगमगाता है। बेहाल = व्याकुल। किसोरी = श्रीराधिकाजी। खरे = बहुत अधिक। लाल = श्रीकृष्ण।

(वचन)—सखी का सखी प्रति।

भावार्थ—(हाथ पर गोवर्धन उठाये हुए) श्रीकृष्णजी के निकट जब राधिकाजी आई तब श्रीकृष्णजी को प्रेमाधिक्य से कंप हुआ। हाथ के डिगते ही पहाड़ भी डगमगाने लगा। इसे लख कर सब ब्रजवासी व्याकुल हो उठे। किशोरीजी के दर्शन से यह कंप हुआ (ऐसा न हो कि लोग लख जायें) जानकर श्रीकृष्णजी बहुत लज्जित हुए।

[विशेष]—कंप अनुभाव। व्रीड़ा संचारी। कृष्ण के लिये शृङ्गार रस। ब्रजवासियों के लिये भयानक रस।

अलंकार—हेतु (प्रथम)।

दो०—लोपे कोपे इन्द्र लौं, रोपे प्रलय अकाल।
गिरिधारी राखे सबै, गो-गोपी-गोपाल ॥१४॥

शब्दार्थ—लोपे = पूजा लोप किये जाने पर। कोपे = क्रुद्ध। रोपे प्रलय अकाल = बेवक्त ही प्रलय करना चाहती है। गिरिधारी = गोवर्धन पर्वत को उठाने वाले (वा) गिरिवत् कुच स्पर्श करने वाले।

(वचन)—विरहिनी नायिका की दूती का वचन नायक प्रति। विरह निवेदन। संघटन उद्देश्य।

भावार्थ—वह नायिका (राधा) पूजा लुप्त हुए क्रुद्ध इन्द्र की तरह समय से पहिले ही प्रलय करना चाहती है (रो रो कर अपने आँसूओं से संसार को डुबो देना चाहती है)। हे कृष्ण! उस समय तुमने पहाड़ उठाकर सब की अर्थात् गौओं, गोपियों और गोपालों की रक्षा की थी

(उसी प्रकार इस समय उसके गिरिवत् कुचों को स्पर्श कर सब की पुनः रक्षा कीजिये)।

अलंकार—(पूर्वार्द्ध में) वृत्यनुप्रास, उपमा। (उत्तरार्द्ध में) परिकरांकुर, वृत्यनुप्रास। पूर्ण दोहे में 'कारज मिस कारण कथन' से अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है।

(दूसरा अर्थ)—(तृणावर्त, केशी, अघ, बक इत्यादि की तो बात ही क्या) कुपित हुए इन्द्र तक का (जिसने अकाल ही प्रलय करना विचारा था) घमंड लोप कर दिया और गोवर्द्धन पर्वत को उठाकर गौ, गोपी और गोपालादि सब की रक्षा की।

[नोट] इस अर्थ से कृष्ण की दया और वीरता प्रगट होती है, परन्तु हमें पहला अर्थ बहुत अधिक अच्छा जँचता है।

दो०—लाज गहो बेकाज कत, घेरि रहे घर जाहिं।
गोरस चाहत फिरत हौ, गोरस चाहत नाहिं ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—घर जाहि = घर छूट जायँगे (बदनाम होने से घर से निकाल दिये जायँगे)। गोरस =(१) दही, मही इत्यादि (२) इन्द्रियों का मजा-आलिंगन, चुम्बन-संभोगादि।

(वचन)—स्वयंदूतिका नायिका का वचन अनभिज्ञ नायक प्रति।

भावार्थ—कुछ तो शर्माओ, व्यर्थ यहाँ रास्ते में मुझे क्या घेरे खड़े हो (अर्थात् मेरी अङ्गचेष्टाओं से तुम नहीं समझ सकते कि मैं क्या चाहती हूँ, व्यर्थ यहाँ रास्ते में रोके खड़े हो, घने जंगल में क्यों नहीं ले चलते)। ऐसा करने से (रास्ते में यदि कोई देख लेगा तो) हमारे तुम्हारे घर छूट जायँगे। तुच्छ चीजें दही, माठा तो माँगते हो, पर इन्द्रियों का रस नहीं चाहते।

अलंकार—यमक और पर्यायोक्ति। (पर्यायोक्ति बखानिये कछु रचना सों बात)।

अथवा—लज्जा करो, व्यर्थ घेर रहे हो, राह छोड़ो, घर जायँ। तुम यथार्थ में इन्द्रियों का भोग चाहते हो, गोरस नहीं चाहते।

दो०—मकराकृति गोपाल कै, कुण्डल सोहत कान ।
धस्यो समर हिय गढ़ मनो, ड्योढ़ी लसत निसान ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—मकराकृति=मछली के आकार वाले । धस्यो=पैठा है, भीतर गया है । समर=(स्मर) कामदेव । निसान=ध्वजा ।

भावार्थ—श्रीकृष्ण के कानों में मछली के आकार के कुण्डल शोभा देते हैं । वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो कामदेव श्रीकृष्ण के हृदयगढ़ में प्रवेश कर गया है और ये कुण्डल उसी की ध्वजाएँ हैं जो गढ़ के द्वार पर शोभा दे रही हैं ।

[विशेष]—जब कोई राजा किसी दूसरे राजा की भेंट के लिये उसके गढ़ में जाता है तब राजा तो भीतर चला जाता है, पर उसके माही-मरातिब (ध्वजादि राजचिन्ह) द्वार ही पर रहते हैं ।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा ।

दो०—गोधन तू हरष्यो हिये, घरियक लेहि पुजाय ।
समुझि परैगी सीस पर, परत पसुन के पाय ॥१७॥

शब्दार्थ—गोधन=गोबर की बनी हुई गोवर्द्धन गिरि की प्रतिमा जिसे किसान लोग कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा के दिन अपने द्वार पर बना कर पूजते हैं । घरियक=(घरी+एक) घड़ी भर, थोड़ी देर तक । पुजाय लेहि=आदर करवा ले ।

भावार्थ—हे गोवर्धन देव ! (गोबर गणेशजी) तुम हृदय में हर्षित होते हुए थोड़ी देर अपना आदर सत्कार करा लो । पर जब थोड़ी देर बाद पशुगण तुम्हें पैरों से रौंदेंगे, तब सच्ची कैफियत मालूम होगी ।

(वचन)—किसी दुष्ट प्रकृति अधिकारी प्रति किसी सज्जन उपदेशक का वचन ।

अलंकार—'अन्योक्ति' ।

दो०—सिलि परछाहीं जोन्ह सों, रहे दुहुनि के गात ।
हरि राधा इक संग ही चले गली में जात ॥१८॥

शब्दार्थ—जोन्ह=(ज्योत्स्ना) चाँदनी। गात=शरीर।

(वचन)—सखी का सखी प्रति। (दम्पति—प्रशंसा)।

भावार्थ—जब कृष्ण और राधिका एक साथ मिलकर गली में चले जा रहे थे तब (मैंने देखा कि) उन दोनों के शरीर चाँदनी और छाया से मिल गये थे। (अर्थात् पहचाने नहीं जा सकते थे। राधिका का शरीर चाँदनी में मिल जाता था और कृष्ण उनकी छाया में लुप्त से थे)।

[विशेष]—परकीया नायिका, संयोगसिंगार, नायक-नायिका अवलंबन, शंका तथा अवहित्थ संचारीभाव, रति स्थायी भाव, अनुभावान्तर्गत ललित हाव—अतः पूर्ण श्रृङ्गार।

अलंकार—मीलित। (दुइ चीजैं इक रंग जहँ मिले न भेद लखात)।

दो०—गोपिन सँग निसि सरद की, रमत रसिक रसरास।
लहाछेह अति गतिन की, सबनि लखे सब पास ॥१९॥

शब्दार्थ—रमत=क्रीड़ा करते हैं। रसिक=रसिया (रसज्ञ)। रसरास=रसमय रास में। रास=नृत्य विशेष। लहाछेह=एक प्रकार की गति जिसमें बड़ी तेजी से चक्रवत् घूमना पड़ता है।

भावार्थ—शरद ऋतु की रात्रि में गोपियों के साथ रसमय रास-नृत्य करते समय रसिया श्रीकृष्ण इस प्रकार क्रीड़ा करते हैं कि लहाछेह नामक गति की अत्यन्त चंचलता के कारण सब गोपियों ने कृष्ण को सब के निकट देखा।

[विशेष]—दक्षिण नायक। आश्चर्य संचारी।

अलंकार—तृतीय विशेष। (वस्तु एक जहँ युक्ति तें बहु थल बरनी जाय)।

दो०—मोरचंद्रिका [illegible] सिर, चढ़ि कत करति गुमान।
लखिबी [illegible] त, सुनियत राधा

शब्दार्थ—गु [illegible] घमंड। लखिबी=दे
लोटते हुए।

भावार्थ—हे मोरचंद्रिका ! तू श्रीकृष्ण के सिर पर चढ़ कर क्यों घमंड करती है। बहुत शीघ्र ऐसा समय आवेगा कि हम तुझको पैरों पर लोटते हुए देखेंगे, क्योंकि सुनते हैं कि राधा ने मान किया है। (अर्थात् राधिका का मान मनाते समय श्रीकृष्णजी उनके चरणों पर अपना मस्तक धरेंगे, तब मुकुट की चंद्रिकाएँ राधिकाजी के चरणों पर लोटेंगी)।

अलंकार—अन्योक्ति, (अन्योकति मिस और के कीजै पर उपदेस)।

[नोट]—देखो नोट दोहा नं० ६६३।

दो०—सोहत ओढ़े पीतपट स्याम सलोने गात।
मनो नीलमणि सैल पर, आतप पर्यो प्रभात ॥२१॥

शब्दार्थ—पीतपट = पीताम्बर। सलोना = सुन्दर। गात = शरीर। आतप = धूप। प्रभात = प्रातःकाल में।

भावार्थ—पीताम्बर ओढ़े हुए श्रीकृष्णजी का सुन्दर श्याम शरीर कैसी शोभा देता है मानो नीलम-पर्वत के शिखर पर प्रातःकाल की धूप पड़ रही हो।

[विशेष]—सखी नायक की अद्भुत शोभा सुनाकर नायिका को मिलाना चाहती है।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

प्रीतम जी कहते हैं:—

क़दे घनश्याम पर क्या पीतपट की ज़ौ दमकती है।
ज़ियाये होर सहरी कोहे नीलम पर चमकती है॥

दो०—किती न गोकुल कुलबधू, काहि न किन सिख दीन।
कौन तजी न कुलगली, ह्वै मुरली-सुर लीन ॥२२॥

शब्दार्थ—सिख = शिक्षा। कुल-गली = कुलीनों की राह (पातिव्रत) मुरली-सुर = वंशी की ध्वनि। लीन = निमग्न।

भावार्थ—गोकुल गाँव में कितनी कुल-वधुएँ नहीं हुई और किसने किसको शिक्षा नहीं दी, परन्तु मुरली की ध्वनि में निमग्न होकर किसने कुल की राह नहीं छोड़ दी।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति और विशेषोक्ति (विद्यमान कारण बन्यो तऊ न कारज होय)।

दो०—अधर धरत हरि के परत, ओठ डीठि पट जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्र धनुष सी होति ॥२३॥

शब्दार्थ—अधर=होठ। डीठि=दृष्टि। पट=पीताम्बर। जोति=छटा। हरित=हरा, सब्ज़।

भावार्थ—ज्योंही श्रीकृष्ण अपनी वंशी होठ पर धरते हैं, त्योंही उस वंशी पर होठ की (लाल रंग की), दृष्टि की (सफेद, काले और लाल रंग की) और पीताम्बर की (पीली) छटा पड़ती है; तब वह हरे बाँस की वंसी इन्द्रधनुष के समान कई रंगवाली हो जाती है।

अलंकार—उपमा और तद्गुण।

(वयःसन्धि वर्णन)

दो०—छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यो जोबन अंग।
दीपति देह दुहून मिलि, दिपत ताफता रंग ॥२४॥

शब्दार्थ—सिसुता=(शिशुता) बचपन। जोबन=जवानी। दीपति-देह=देह की दीप्ति (शरीर की चमक)। दिपत=चमकती है। ताफतारंग=धूप छाँह की तरह। ताफता=धूपछाँह नाम का रेशमी कपड़ा।

भावार्थ—लड़कपन की झलक अभी नहीं छूटी और जवानी की झलक शरीर में आ चली है। दोनों अवस्थाओं के मेल से शरीर की छटा धूपछाँह के रंग की तरह दो रंगी-सी चमकती है।

[विशेष]—वयःसंधि नायिका।

अलंकार—वाचक लुप्तोपमा।

दो०—तिय तिथि तरनि किसोरबय, पुन्यकाल सम दौंन।
काहू पुन्यनि पाइयत, वैससन्धि संक्रौन ॥२५॥

शब्दार्थ—तरनि=सूर्य। किसोरवय=किशोरावस्था। दौंन=दोनों। बैससन्धि=लड़कपन और जवानी की सन्धि अर्थात् किशोरावस्था। संक्रौन=संक्रान्ति।

भावार्थ—नायिका तिथि है, किशोरावस्था (बैससन्धि) सूर्य है। संक्रान्ति और बैससन्धि दोनों बराबर दर्जे के पुण्यकाल हैं। यह दोनों किसी बड़े पुण्य से प्राप्त होते हैं।

वचन—नायक प्रति नायिका की दूती का वचन। नायिका की प्रशंसा करके नायक को मिलाने की चेष्टा करती है।

अलंकार—रूपक।

दो०—ललन अलौकिक लरिकई, लखि-लखि सखी सिहाति।
आज कालि में देखियत, उर उकसौंहि भाँति ॥२६॥

शब्दार्थ—सिहाति=ईर्षा करती है। उकसौंही भाँति=उभड़नेवाला।

भावार्थ—हे ललन! (कृष्ण) उस नायिका की (राधिका की) अद्‌भुत लड़काई देख-देख कर सदा निकट रहनेवाली सखी ईर्षा करती हैं (कि ऐसी अवस्था और ऐसी शोभा मेरे तन में न हुई)। देखती हूँ कि बस आज ही कल में (अतिशीघ्र) उसकी छाती पर कुछ उभार होने वाला है।

अलंकार—अनुमान (प्रमाणान्तर्गत)।

दो०—भावक उभरौहौं भयो, कछुक परयो भरु आय।
सीप-हरा के मिस हियो निसदिन देखत जाय ॥२७॥

शब्दार्थ—भावक=एक भाव से, एक तरह से, कुछ थोड़ा थोड़ा। उभरौहौं=उभरने वाला। भरु=बोझ, भार। सीप-हरा=सीपजनित मोतियों का हार। हियो=वक्षस्थल। जाय=गुजरता है, व्यतीत होता है।

(वचन)—नायक प्रति दूती वचन। ज्ञातयौवना नायिका।

भावार्थ—हे कृष्ण! उस (नायिका) के वक्षस्थल पर कुछ उभार

होने वाला है और इसी कारण उसकी छाती पर कुछ बोझ-सा आ पड़ा है। अतः मोतियों के हार को देखने के बहाने से रात दिन उसका समय छाती ही देखते बीतता है।

अलंकार—द्वितीय पर्यायोक्ति—(मिसकरि कारज साधिये जो हित चितहिं सोहात)।

(युवावस्था वर्णन)

दो०—इक भीजे चहले परे, बूड़े बहे हजार।
किते न औगुन जग करत, नै वै चढ़ती बार ॥२८॥

शब्दार्थ—चहले परे=दलदल में फँसे। नै=नदी। वै=(वय) उम्र।

भावार्थ—कोई भींग जाता है, कोई कोई दलदल में फँस जाते हैं, कोई बूड़ जाता है और हजारों बह जाते हैं। चढ़ती हुई नदी और चढ़ती जवानी का उम्र संसार में कितना औगुन नहीं करती (अर्थात् बहुत अवगुण करती हैं)।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति और दीपक (वर्ण्य अवर्ण्यन को जहाँ एकै धर्म कहाय)।

दो०—अपने तन के जानि कै, जोबन नृपति प्रवीन।
स्तन मन नैन नितंब को, बड़ो इजाफा कीन ॥२९॥

शब्दार्थ—अपने तन के=अपने सहायक (अपने पक्ष के)। जोबन=जवानी। प्रवीन=चतुर। स्तन=कुच। नितंब=चूतड़। इजाफा=तरक्की, बढ़ती। (जवानी में उक्त अंग स्वाभाविक रीति से बढ़ते ही हैं)।

भावार्थ—सरल है।

(वचन)—दूती वचन नायक प्रति।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में रूपक । उत्तरार्द्ध में तुल्ययोगिता ।

दो०—देह दुलहिया की बढ़ै, ज्यौं ज्यौं जोबन जोति ।
त्यौं त्यौं लखि सौतैं सबै, बदन मलिन दुति होति ॥२०॥

शब्दार्थ—दुलहिया = नववधू । बदन = मुख ।

भावार्थ—नववधू के शरीर में जैसे-जैसे जवानी की छटा बढ़ती जाती है वैसे ही वैसे उसकी सुछवि देख-देखकर सौतों के मुख मलीन (प्रभाहीन) होते जाते हैं ।

अलंकार—उल्लास-(औरहि के गुण दोष ते औरहिं को गुण दोष)

दो०—नव नागरि तनु मुलक लहि, जोबन आमिल जोर ।
घटि बढ़ि ते बढ़ि घटि रकम, करी और की और ॥२१॥

शब्दार्थ—नव नागरि = नवीन युवती । मुलक = देश । आमिल = शासक, हाकिम । जोर = जबरदस्त । रकम = जमा ।

भावार्थ—जबरदस्त यौवन-शासक ने नववधू का शरीर रूपी देश पाकर जमाबंदी की रकमों में बहुत कुछ हेर-फेर कर डाला अर्थात् छोटी रकम को बढ़ा दिया और बड़ी रकम को घटा दिया (अर्थात् शरीर के अवयवों में अनेक परिवर्तन कर डाले) ।

अलंकार—रूपक (सम अभेद) ।

दो०—लहलहाति तन तरुनई, लचि लगि लौं लफिजाय ।
लगै लांक लोयन भरी, लोयन लेति लगाय ॥२२॥

शब्दार्थ—लहलहाति = उमँड़ती है । तरुनई = तरुणाई, जवानी । लचि = लचक कर, ने कर । लगि = बाँसकी हरी शाखा (लग्गी, कइन) । लगि लौं = बाँस की हरी शाखा की तरह । लफिजाय = झुक जाती है, दूनर हो जाती है । लांक = कमर । लोयनभरी = लावण्यपूर्ण । लोयन = लोचन (आँख) । लोयन लेति लगाय = आँखों को अपने में लगा लेती है, आँखों को अपनी ओर आकर्षित करती है ।

भावार्थ—उस नायिका के शरीर में जवानी उमँड़ रही है। उसके भार से उसकी कमर झुक कर बाँस की हरी शाखा की तरह दूनर हुई जाती है। वह कमर लावण्य से परिपूर्ण जान पड़ती है और बरबस देखने वालों की आँखों को अपनी ओर लगा लेती है।

(वचन)—दूती का वचन नायक प्रति। नायिका की जवानी की प्रशंसा करके नायक को उससे मिलाना चाहती है।

अलंकार—वृत्यनुप्रास और उपमा।

(केश वर्णन)

दो०—सहज सचिक्कन स्यामरुचि, सुचि सुगंध सुकुमार।
गनत न मन पथ अपथ लखि, बिथुरे सुथरे बार ॥३३॥

शब्दार्थ—सहज सचिक्कन=बिना फुलेल लगाये ही चिकने हैं। स्यामरुचि=काले। सुकुमार=मुलायम। पथ अपथ=राह कुराह। बिथुरे=छूटे हुए, बिखरे हुए। सुथरे=सुन्दर।

[विशेष]—नायक नायिका के बालों को याद करके कह रहा है। स्मृति संचारी भाव है।

भावार्थ—जो सहज ही चिकने, काली चमक वाले, पवित्र, सुगंधित और कोमल हैं। ऐसे सुन्दर बिखरे हुए बालों को देख कर मेरा मन राह कुराह नहीं देखता (अर्थात् उन्हीं बालों में जाकर फँस जाता है)।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में वृत्यनुप्रास, उत्तरार्द्ध में छेकानुप्रास है, पूर्ण में स्वभावोक्ति है।

दो०—वेई कर ब्योरनि वहै, ब्यौरो कौन बिचार।
जिनहीं उरझ्यो मो हियो, तिनहीं सुरझे बार ॥३४॥

शब्दार्थ—ब्योरनि=बाल सुलझाने का ढंग। ब्यौरो=मर्म, भेद।

[विशेष]—नायक ने नाइन का रूप धर कर छल से नायिका के

बाल सँवारे हैं। कर स्पर्श से नायिका को रोमांच हुआ है। (तब वह स्वगत कहती है) नायिका परकीया है।

भावार्थ—वैसेही तो इस नाइन के हाथ हैं (जैसे नायक के हैं) और बाल सुलझाने का ढंग भी वही है। (जैसा नायक का है) हे मन! तू विचार तो कर कि यह क्या भेद है (यह कौन-सी नाइन है) मुझे तो जान पड़ता है कि जिनसे मेरा हृदय उलझा हुआ है (अर्थात् प्रेम है) वही मेरे बाल सुलझा रहे हैं।

अलंकार—प्रमाणान्तर्गत अनुमान।

दो०—कच समेटि कर, भुज उलटि, खए सीस पट डारि।
काको मन बाँधै न यह, जूरो बाँधनिहारि ॥२५॥

शब्दार्थ—कच=बाल। खए=भुजमूल, पखौरा।

भावार्थ—बालों को हाथों से समेटकर, भुजाओं को पीछे की ओर मोड़ कर और सीस पर के कपड़े को पखौरों पर डाल कर यह जूड़ा बाँधने-वाली (अपनी स्वाभाविक छबि से) किसका मन नही बाँध लेती? (सबका मन अपने वश में कर लेती है)।

[विशेष]—किसी स्त्री को उपर्युक्त प्रकार से जूड़ा बाँधते देख कोई रसिक स्वगत कहता है।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति और स्वभावोक्ति।

दो०—छुटे छुटावैं जगत तें, सटकारे सुकुमार।
मन बाँधत बेनी बँधे, नील छबीले बार ॥२६॥

शब्दार्थ—सटकारे=लंबे। सुकुमार=मोलायम। नील=काले और चमकदार। छबीले=(छबि+ईला) सुन्दर।

[विशेष]—नायक नायिका के सुन्दर बालों का स्मरण कर रहा है। स्मृति संचारी भाव है।

भावार्थ—वे लंबे और मोलायम बाल जिस समय छूटे हुए रहते हैं उस समय देखने वालों को संसार से छोड़ा देते हैं। (उन्हें देख कर सांसारिक काम-काज में मन नहीं लगता) और जब वे काले चमकीले

और सुन्दर बाल वेणीरूप में बँधे रहते हैं, तब मन ही को बाँध लेते हैं (अर्थात् प्रत्येक दशा में मनोहर हैं ।)

अलंकार—दूसरी व्याजस्तुति—(बालों की प्रशंसा से नायिका की रूप-सम्पत्ति की अत्यन्त प्रशंसा होती है) । यथा—

(कीन्हें पर अस्तुति जहाँ पर अस्तुति दरसाय)

(मुख पर पड़ी हुई लट का वर्णन)

दो०—कुटिल अलक छुटि परत मुख, बढ़िगो इतो उदोत ।
बंक बिकारी देत ज्यों, दाम रुपैया होत ॥३७॥

शब्दार्थ—कुटिल = टेढ़ी । अलक = लट । उदोत = सौन्दर्य । वंक= टेढ़ी । बिकारी = टेढ़ी लंबी पाई जो रुपया लिखने में अंक के नीचे खिची जाती है जैसे ( )) । दाम = दमड़ी ।

भावार्थ—स्नान करने के अनन्तर (नायिका के) मुख पर टेढ़ी लट छूट पड़ने से मुख का सौन्दर्य (वा प्रकाश इतना बढ़ गया जैसे टेढ़ी बिकारी लगा देने से दमड़ी सूचक अंक का मान रुपया सूचक हो जाता है ।

अलंकार—प्रतिवस्तूपमा ।

(वेणी वर्णन)

दो०—ताहि देखि मन तीरथनि, बिकटनि जाय बलाय ।
जा मृगनैनी के सदा, बेनी परसत पाय ॥३८॥

शब्दार्थ— बिकटनि = कठिन । (व्याकरणानुसार 'विकट' यहाँ पर 'तीरथनि' का विशेषण है । इसका बहुवचन रूप न होना चाहिये था) । वेनी = (१) चोटी, (२) त्रिवेणी । परसत=स्पर्श करती है ।

भावार्थ—जिस मृगनैनी के पैरों को सदा वेणी स्पर्श किया करती है

(जिसकी चोटी पैर तक लंबी है) उसे देखकर, हे मन ! विकट तीर्थों का अटन करने मेरी बलाय जाय।

अलंकार—१ काव्यलिंग (तीर्थाटन न करने की बात का युक्ति से समर्थन है)।

२—श्लेष-'बेणी' शब्द में।

३—व्याजस्तुति (द्वितीय)-बेणी की प्रशंसा से नायिका की अत्यंत प्रशंसा सूचित होती है।

(टीका वर्णन)

दो०—नीको लसत लिलाट पर, टीको जटित जराय।
छबिहिं बढ़ावत रबि मनो, ससि मंडल में आय ॥३९॥

शब्दार्थ—टीको = भाल पर पहनने का आभूषण विशेष। जटित जराय = रत्नजटित।

भावार्थ—रत्नजटित टीका भाल पर ऐसी अच्छी शोभा देता है मानो सूर्य शशिमण्डल में आकर उसकी छबि बढ़ा रहा हो।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

(बिंदी वर्णन)

दो०—सबै सोहाये ई लगैं, बसत सोहाये ठाम।
गोरे मुख बेंदी लसै, अरुन पीत सित स्याम ॥४०॥

शब्दार्थ—ठाम = ठौर, स्थान। अरुन = सुर्ख। सित = सफेद।

भावार्थ—अच्छे स्थान में रहने से सभी वस्तुएँ अच्छी ही जान पड़ती हैं। गोरे मुख पर लगाने से लाल, पीली, सफेद और श्याम सभी रंग की बिंदी अच्छी ही लगती है।

[विशेष]—अरुन से रोरी की बिंदी, पीत से केसर की, सित से चंदन की, श्याम से कस्तूरी की समझना चाहिये।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास।

दो०—कहत सबै बेंदी दिये, आंक दस गुनो होत।
तिय लिलार बेंदी दिये, अगनित बढ़त उदोत ॥४१॥

शब्दार्थ—लिलार = ललाट। उदोत = प्रकाश, छवि। बेंदी = बिंदी, (सिफर, शून्य)।

भावार्थ—सब लोग कहते हैं कि अंक पर बिंदी लगाने से अंक का मूल्य दसगुना बढ़ जाता है, परन्तु नायिका के ललाट पर बिंदी लगाने से तो अगणित गुना प्रकाश वा सौन्दर्य बढ़ जाता है।

अलंकार—व्यतिरेक।

दो०—भाल लाल बेंदी दिये, छुटे बार छबि देत।
गह्यो राहु अति आह करि, मनु ससि सूर समेत ॥४२॥

शब्दार्थ—अति आह करि = बड़ी भारी साहस करके। सूर = सूर्य। सूर समेत = सूर्य की सहायता से।

[विशेष]—यहाँ 'राहु', कर्मकारक में है और 'ससि सूर समेत', कर्ता कारक में है। यदि ऐसा न मानेंगे तो 'छबिदेत' शब्द निरर्थक हो जायँगे, क्योंकि जब राहु, चन्द्रमा और सूर्य को ग्रसता है तब उनकी छवि मंद पड़ जाती है।

भावार्थ—नायिका ने भाल पर जो लाल बिंदी लगाई है (रोरी की) वह सिर के बाल छुटे हुए होने पर भी शोभा देती है और ऐसा जान पड़ता है मानो चंद्रमा और सूर्य ने मिलकर और बड़ा साहस करके राहु को पकड़ा है (जिससे राहु का शरीर शिथिल होकर छिन्न-भिन्न हो गया है)।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—पायल पाय लगी रहै, लगे अमोलक लाल।
भोंडर हू की भासिहै, बेंदी भामिनि भाल ॥४३॥

शब्दार्थ—पायल = पायजेब। अमोलक = बहुमूल्य। लाल = माणिक। भोंडर = अनरख। भासिहै = शोभा देगी।

भावार्थ—पायजेब अमूल्य माणिक जटित होने पर भी पैरों में ही पड़ी रहती है, परंतु बिंदुली चाहे अवश्य ही की क्यों न हो पर वह सुन्दर स्त्रियों के भाल पर ही शोभित होती है। (अर्थात् नीच व्यक्ति बहुत बना ठना होने पर भी नीचे ही दर्जे में रहता है और कुलीन वा गुणवान व्यक्ति साधारण होने पर भी उच्च पदवी पाता है)।

अलंकार—अप्रस्तुत प्रशंसान्तर्गत अन्योक्ति।

दो०—भाल लाल बेंदी ललन, आखत रहे बिराजि।
इंदुकला कुज में बसी, मनो राहु भय भाजि ॥४४॥

शब्दार्थ—आखत = (अक्षत) चावल। कुज = मंगल।

भावार्थ—हे ललन ! नायिका के भाल पर रोचना की लाल बिंदी पर जो चावल लगे हुए हैं वे ऐसे विराज रहे हैं, मानो राहु के डर से चन्द्रमा की कलाएँ भाग कर मंगल में बसी हैं।

अलंकार—सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा।

दो०—मिलि चंदन बेंदी रही, गोरे मुख न लखाय।
ज्यों ज्यों मद लाली चढ़ै, त्यों त्यों उघरति जाय ॥४५॥

शब्दार्थ—मदलाली = शराब के नशे की लाली। उघरति जाय = प्रकट होती जाती है।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—उन्मीलित (जहँ मीलित में हेतु लहि कछुक भेद बिलगाई)।

दो०—तिय मुख लखि हीरा जरी, बेंदी बढ़ै बिनोद।
सुत सनेह मानो लियो, बिधु पूरण बुध गोद ॥४६॥

शब्दार्थ—बिनोद = आनन्द। बिधुपूरण = पूर्ण चन्द्र।

भावार्थ—हे तिय ! तेरे मुख पर हीराजटित बेंदी देख कर मेरा आनन्द बढ़ता है, ऐसा जान पड़ता है मानो पुत्रस्नेहवश पूर्ण चन्द्र ने अपने पुत्र बुध को गोद में लिया है।

(वचन)—नायक वचन परकीया नायिका प्रति ।

अलंकार—सिद्धास्पद हेतुत्प्रेक्षा ।

[विशेष]—यद्यपि बुद्ध का रंग 'हरा' माना जाता है तो भी हीरा की उपमा के कारण, तथा गौर वर्ण चन्द्रमा का पुत्र होने के कारण बिहारी ने सफेद ही माना । अथवा ज्योतिष में यह बात भी लिखी है कि बुद्ध जिस ग्रह के साथ होता है वैसा ही रूप स्वभाव और गुण ग्रहण करता है । यहाँ चन्द्रमा की गोद में होने से सफेद मानने में कोई बाधा नहीं आती । केशव ने भी बुलाक के मोती के लिए लिखा है—"मानो गोद चंद ही की खेलै सुत चंद को" ।

(भौंह वर्णन)

सो०—चितवनि भौंह कमान, गढ़ रचना बरुनी अलक ।
तरुनि तुरंगम तान, आघु बँकाई ही बढ़ै ॥४७॥

शब्दार्थ—गढ़रचना = किले की बनावट (किला वा व्यूह सदा टेढ़े बनते हैं) आघु=(सं० अर्घ) मूल्य, आदर । बँकाई = टेढ़ापन । तुरंगम = घोड़ा ।

भावार्थ—चितवन, भौंह, कमान, गढ़रचना, बरुणी (पलक) लट, तरुणी (स्त्री), घोड़ा और तान का मूल्य (आदर) टेढ़ाई से ही बढ़ता है ।

(वचन)—सखी की शिक्षा नायिका प्रति कि जरा बाँकपन से रहा करो, निपट सीधी सादी नहीं ।

अलंकार—दीपक ।

दो०—नासा मोरि नचाय दृग, करी कका की सौंह ।
काँटे सो कसकति हिये, वहै कटीली भौंह ॥४८॥

शब्दार्थ—मोरि = सिकोड़ कर । सौंह = शपथ । कसकति = सालती है, गड़ती है, पीड़ा देती है । कटीली = काट करनेवाली ।

(वचन)—नायक वचन सखी प्रति। नायिका परकीया।

भावार्थ—नाक सिकोड़, आँखें मटका और भौंहें टेढ़ी करके जिस समय उसने (नायिका ने) चाचा की शपथ की थी, (उस समय की वह कटीली भौंहों की बाँकी अदा) अब भी मेरे हृदय में काँटे की तरह गड़ती है।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—खौरि पनच भृकुटी धनुष, बधिक समर तजि कानि।
हनत तरुन मृग तिलक सर, सुरकि भाल भरि तानि॥४९॥

शब्दार्थ—खौरि=ललाट पर का बेंड़ा टीका। पनच=कमान की डोरी, प्रत्यंचा। कानि=मर्यादा। तिलक=ललाट पर का खड़ा टीका। सुरकि=तिलक का वह भाग जो नाक पर लगा होता है। भाल=तीर की गाँसी। भरि तानि=खूब खींच कर।

भावार्थ—भृकुटी रूपी धनुष पर खौर की प्रत्यंचा चढ़ा कर सुरक रूपी गाँसी वाले तिलक रूपी बाण को संधान कर और खूब खींच कर मर्यादा छोड़ कर काम रूपी व्याधा युवक रूपी हिरनों का शिकार करता है। ('तजि कानि' इसीसे कहा गया है)

(वचन)—नायक वचन सखी प्रति। नायिका परकीया।

अलंकार—सांग सम अभेद रूपक।

(नयन वर्णन)

दो०—रस सिंगार मंजन किये, कंजन भंजन दैन।
अंजन रंजन हू बिना, खंजन गंजन नैन॥५०॥

शब्दार्थ—रस सिंगार मंजन किये=शृङ्गार रस से नहलाये हुए। कंजन भंजन दैन=कमलों का मान भंग करने वाले। अंजन रंजन हू बिना=बिना अंजन लगाये हुए।

भावार्थ—उसके नेत्र शृंगार रस से नहलाये हुए हैं अतः कमलों का मान मर्दन करते हैं। बिना अंजन लगाये हुए सहज ही कजरारे हैं और चंचलता में खंजन का भी मान गंजन करते हैं।

अलंकार—वृत्यनुप्रास (उपनागरिका वृत्ति) और चतुर्थप्रतीप।

दो०—खेलन सिखये अलि भले, चतुर अहेरी मार।
कानन चारी नैन मृग, नागर-नरनि सिकार ॥५१॥

शब्दार्थ—अहेरी=शिकारी। मार=कामदेव। काननचारी=(१) कानों तक फैले हुए अर्थात् अति दीर्घ। (२) जंगली। नागरनरनि= शहराती चतुर पुरुषों को।

भावार्थ—हे अलि! चतुर शिकारी कामदेव ने तेरे अति दीर्घ नैन रूपी मृगों को चतुर पुरुषों का शिकार करना भली भाँति सिखलाया है।

[विशेष]—सखी वचन नायिका प्रति। नायिका कुलटा वा गणिका (क्योंकि नागर-नरनि बहुवचन है)। यहाँ शृंगार रस में अद्भुत रस का पुट है (क्योंकि साधारणतः नर लोग मृगों का शिकार करते हैं, पर यहाँ नैन मृगों ने नरों का शिकार करना सीखा है।)

अलंकार—रूपक। 'काननचारी' में श्लेष।

दो०—अर तें टरत न बर परे, दई मरुक मनु मैन।
होड़ा होड़ी बढ़ि चले, चित चतुराई नैन ॥५२॥

शब्दार्थ—अर=(अड़) हठ। बर परे=बलवान पड़ गये हैं। मरुक=बढ़ावा। होड़ा होड़ी=शर्त लगा कर।

(वचन)—सखी वचन नायक प्रति।

भावार्थ—उसके (नायिका के) चित्त की चतुराई ने और उसके नेत्रों ने परस्पर एक दूसरे से बढ़ जाने की शर्त लगाई है; और काम ने मानो बढ़ावा दे दिया है अतः उसका बढ़ावा पाकर दोनों अति बलवान पड़ गये हैं और अपनी हठ नहीं छोड़ते।

[विशेष]—जवानी में नेत्रों का और चातुर्य का बढ़ना कवि लोग मानते हैं। इस दोहा में वही वर्णन है।

अलंकार—असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा (काम के बढ़ावा देने को कवि ने नेत्रों और चातुर्य के बढ़ने का हेतु माना है। यह अहेतु को हेतु कल्पित किया है)।

दो०—सायँक सम मायक नयन, रँगे त्रिविध रँग गात।
झखौ बिलखि दुरि जात जल, लखि जलजात लजात ॥५२॥

शब्दार्थ—साँयक=संध्या। मायक=माया करने वाले। झख=मछली बिलखि=व्याकुल होकर। जलजात=कमल।

भावार्थ—उस नायिका के जादूगर नेत्र संध्या के समान हैं, और अपने शरीर को संध्या के समान तीन रंगों से रँगे हुए हैं। इसी कारण उनको देखकर दुखित होकर मछली तो पानी में छिप जाती है और कमल लज्जित हो जाता है (संध्या होते ही मछली गहरी तह में पैठ जाती है, और कमल संपुटित हो जाता है)।

अलंकार—उपमा और यमक।

[नोट]—केशवदास ने कोपमय नेत्रों की उपमा संध्या से दी है। बिहारी ने वहीं से यह भाव लिया है। प्रमाण के लिये देखिये रामचंद्रिका प्रकास ५ वाँ, छंद नम्बर २७ *।

दो०—जोग जुगुति सिखिये सबै, मनो महा मुनि मैन।
चाहत पिय अद्वैतता, कानन सेवत नैन ॥५४॥

शब्दार्थ—जोग=(१) योग (२) संयोग। अद्वैतता=(१) एकता (ईश्वर में मिल जाना) (२) सर्वकालीन संयोग। कानन सेवत=कानों बढ़े हैं।

भावार्थ—मानो काम महामुनि ने योग की सब युक्ति सिखा दी है। से निज प्रियतम से सदा छिपे रहने की इच्छा से (उस नायिका के) नेत्र कानन सेवन करते हैं। (कानों तक लंबायमान हैं)।

* दो०—केशव विश्वामित्र के, रोषमयी दृग जानि।
संध्या सी तिहूँ लोक के, किहिनि उपासी आनि ॥

अलंकार—जोग, अद्वैतता और कानन में श्लेष। "महामुनिमैन" में रूपक और पूर्ण दोहा में सिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा है।

[विशेष]—जैसे कलिदास ने वेदान्तिक सिद्धान्त "अणोरणीयान्महतो महीयान्" की पूर्ति शृङ्गार रस में की थी, उसी प्रकार विहारी ने भी इस दोहे में योग संबंधी सिद्धान्त की पूर्ति शृङ्गार में की है इससे कवि की प्रतिभा की विलक्षणता प्रकट होती है।

दो०—बर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनान तें, हरि नीके ये नैन ॥२५॥

शब्दार्थ—बर =बलपूर्वक, बलात्, जबरदस्ती।

(वचन)—सखी वचन नायक प्रति।

भावार्थ—हे हरि! ये नैन (इस नायिका के नेत्र) हरिनी के नेत्रों से भी बढ़कर हैं। मैंने तो ऐसे नेत्र कभी नहीं देखे। इन्होंने बलात् काम के बाणों को जीत लिया है।

अलंकार—यमक और काव्यलिंग।

दो०—संगति दोष लगै सबै, कहे जु साँचे बैन।
कुटिल बंक भ्रू संग ते, भये कुटिल गति नैन ॥२६॥

शब्दार्थ—कुटिल=कपटी, छली। वंक=टेढ़ी। भ्रू=भौंह। नैन= (१) नेत्र। (२) जिसमें नीति का आचरण न हो (नय+न)। कुटिलगति= (१) कपट की चाल चलनेवाले (२) तिरछे कटाक्ष करनेवाले।

भावार्थ—लोगों ने जो ये वचन कहे हैं कि "संगति का दोष सब को लगता है" सो सत्य है। देखो छली और टेढ़ी भौंहों के संग से नेत्र भी कुटिल गतिवाले (अर्थात् तिरछे कटाक्ष करनेवाले) हो गये हैं।

अलंकार—उल्लास से परिपुष्ट अर्थान्तरन्यास।

दूसरा अर्थ—(खंडिता नायिका का वचन सखि प्रति) हे सवय (सखी) तू ने जो कहा था कि संगति का दोष अवश्य लगता है सो

सत्य ही हुआ, देखो किसी कुटिल और टेढ़ी भौंह वाली स्त्री की संगति से ये मेरे स्वामी भी (नायक) कुटिल गति वाले हो गये हैं और इनमें अब नीति के आचरण नहीं रहे।

दो०—दृगन लगत बेधत हियो, बिकल करत अँग आन।
ये तेरे सब तें विषम, ईछन तीछन बान ॥५७॥

शब्दार्थ—विषम=अद्भुत। ईछन (ईक्षण)=नेत्र। तीछन=पैनी नोक के।

(वचन)—नायक वचन नायिका प्रति।

भावार्थ—हे प्यारी! ये तेरे पैने नयनबाण सब (बरछी, तरवार, कटारी, इत्यादि) से अधिक अद्भुत हैं, क्योंकि ये लगते तो नेत्रों में हैं, बेधते हैं हृदय को और व्याकुल करते हैं अन्य सब अंगों को।

अलंकार—असंगति द्वारा पुष्ट किया हुआ काव्यलिंग अलंकार। (काव्यलिंग जहँ युक्ति तें अर्थ समर्थन होय) नयनबाण की विषमता असंगति द्वारा पुष्ट की गई है।

असंगति—'कारण कहुँ कारज कहूँ, देश काल को बीच'। लगते हैं नेत्रों में, बेधते हैं हृदय और व्याकुल करते हैं अन्य अंगों को।

(नयनसैन वर्णन)

दो०—झूठे जानि न संग्रहे, मन मुँह निकसे बैन।
याही ते मानो किये, बातन को विधि नैन ॥५८॥

शब्दार्थ—संग्रहे=ग्रहण किये, प्रमाण माने।

भावार्थ—मुँह से निकले हुए वचन कभी-कभी झूठे भी हो जाते हैं। ऐसा जान कर ही उन्हें मन से संग्रह करने योग्य नहीं माना (प्रामाणिक न मान कर) मानो इसी हेतु विधि ने बातें करने के लिए नेत्र बनाये हैं। अर्थात् नेत्रों के इशारे से निकला हुआ भाव हार्दिक और अत्यन्त सत्य होता है।

अलंकार—सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा।

दो०—फिरि फिरि दौरत देखियत, निचले नेकु रहैं न।
ये कजरारे कौन पै, करत कजाकी नैन॥ ५९॥

शब्दार्थ—निचले = स्थिर। नेकु = तनक, थोड़ी देर। कजरारे = अंजनयुक्त। कजाकी = लूटमार, हत्यारापन।

(वचन)—सखी वचन नायिका प्रति। परिहास।

भावार्थ—ये तेरे नेत्र स्थिर नहीं रहते, देखती हूँ कि बार-बार इधर उधर दौड़ते हैं। आज तूने अंजन लगाया है सो ये कजरारे नेत्र किस पर लूटमार करने वाले हैं।

अलंकार—छेकानुप्रास। 'नेत्र कज्जाक से दौरत' मान कर वाचकोपमान लुप्ता भी कह सकते हैं।

[विशेष]—कोई कोई इसमें कुलटा नायिका मानते हैं।

दो०—खरी भीरहू भेदिकै, कितहू ह्वै उत जाय।
फिरै डीठि जुरि डीठिसों, सब की डीठि बचाय॥६०॥

शब्दार्थ—खरी = भारी। उत जाय = नायक के पास जाकर।

(वचन)—सखी का वचन सखी प्रति। नायिका परकीया।

भावार्थ—भारी भीड़ को चीरकर कहीं होकर उस नायक तक पहुँच कर और सब (भीड़ के लोगों की) की दृष्टि बचाकर नायक की दृष्टि से मिलकर तब इसकी दृष्टि लौटती है।

अलंकार—तीसरी विभावना (प्रतिबंधक के होत हू, होय काज-जेहि ठौर) भीर प्रतिबंधक के होते भी दृष्टि मिलौना हो रहा है।

दो०—सब ही तन समुहाति छिन, चलति सबनि दै पीठि।
वाहि तन ठहराति यह, किबलनुमा लौं दीठि॥६१॥

शब्दार्थ—तन=तरफ। समुहाति=सामना करती है। किबलनुमा= मुसल्मानी समय का वह यंत्र जिसकी सुई सदैव मक्के की ओर रहती थी। (यहाँ पर उसकी सुई से ही तात्पर्य है)।

[विशेष]—'किब्लानुमा' वास्तव में वह यंत्र था जिसकी सुई सदैव 'मक्के' की ओर रहती थी। मुसल्मान लोग इस यंत्र को अपने पास इसलिये रखते थे जिसमें उन्हें नमाज पढ़ते समय मक्के की दिशा का ठीक ज्ञान हो जाय, क्योंकि मुसलमान लोग मक्के की ओर मुँह करके ही नमाज़ पढ़ते हैं।

(वचन)—सखी प्रति सखी का वचन।

भावार्थ—इस नायिका की दृष्टि सबकी ओर एक क्षणमात्र के लिये जाती तो है, पर तुरन्त ही उनकी ओर से पलट पड़ती है, केवल उसी ओर (नायक की ओर) इसकी दृष्टि किब्लानुमा की भाँति स्थिर रहती है।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—कहत नटत रीझत खिझत, मिलत खिलत लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नैनन ही सों बात ॥६२॥

शब्दार्थ—नटत = नाहीं करते हैं। खिलत = प्रफुल्लित होते हैं। लजियात = (पूर्वी बोली) लज्जित होते हैं।

(वचन)—सखी प्रति सखी वचन। नायक-नायिका की दशा का वर्णन। नायिका परकीया।

भावार्थ—नायक कुछ कहता है। नायिका नाहीं करती है। इस बनावटी नाहीं पर नायक रीझता है, तब नायिका खीझती है। पुनः मिलकर दोनों प्रसन्न हो जाते हैं और कोई लख न ले इस विचार से लज्जित हो जाते हैं। इस प्रकार भरे भवन में नेत्रों ही द्वारा ये सब बात कर लेते हैं।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में कारक दीपक (यथाः—क्रमतें क्रिया अनेक को कर्त्ता एकै होय)। उत्तरार्द्ध में तीसरी विभावना।

दो०—सब अँग करि राखी सुघर, नायक नेह सिखाय।
रसयुत लेति अनन्त गति, पुतरी पातुरराय ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ—सुघर = चतुर। नायक = नाच सिखानेवाला उस्ताद। पातुरराय = पतुरियों की सरदार।

(वचन)—सखी वचन सखी प्रति। नायिका वासकसज्जा है।

[विशेष]—मिलन की सब तैयारी लगाकर नायक का रास्ता देख रही है। बार-बार रास्ता देखने में पुतली चंचल हो रही है। उसी चञ्चलता का वर्णन इस दोहे में है।

भावार्थ—प्रेम रूपी नायक ने (उस्ताद ने) शिक्षा देकर इसको (आँख की पुतली को) नृत्य के सब अङ्गों में (नृत्य, गान, वाद्य और भाव प्रदर्शन में) चतुर कर रक्खा है; अतः उसकी (नायिका की) पातुर शिरोमणि पुतली असंख्य रसीली गतियाँ ले रही है (अर्थात् नायक का आगमन बार-बार देखती है)।

अलंकार—रूपक।

दो०—कंजनयनि मंजन किए, बैठी ब्यौरति बार।
कच अँगुरिन बिच डीठि दै, निरखति नंदकुमार ॥६४॥

शब्दार्थ—ब्यौरति = सुलझाती है। कच = बाल।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—दूसरी पर्यायोक्ति।

दो०—डीठि बरत बाँधी अटनि, चढ़ि धावत न डरात।
इत उत तें चित दुहुनि के, नट लौं आवत जात ॥६५॥

शब्दार्थ—बरत = रस्सी। अटनि = अटारियों पर।

भावार्थ—दृष्टि रूपी रस्सी अटारियों पर बाँधी है (नायक और नायिका अपनी-अपनी अटारियों पर खड़े परस्पर देख रहे हैं) और रस्सी पर चढ़ कर दोनों के मन नट की तरह दौड़ते हैं। गिरने से नहीं डरते (लोकदृष्टि से नहीं डरते)।

(वचन)—सखी का सखी प्रति। नायिका परकीया।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—जुरे दुहुनि के दृग झमकि, रुके न झीने चीर।
हलकी फौज हरौल ज्यों, परत गोल पर भीर ॥६६॥

शब्दार्थ—झमकि=शीघ्रता से। झीने=बारीक, महीन। हलकी फौज=थोड़ी सेना। हरौल=(तुर्की शब्द हरावल) सेना का अगला भाग। गोल=(तुर्की शब्द) सेना का मध्य-भाग जिसमें सेना का मुख्य नायक रहता है।

भावार्थ—दोनों अर्थात् नायक और नायिका के दृग शीघ्रता से मिल गये घूँघट के महीन कपड़े से रुक नहीं सके, जैसे हरावली सेना थोड़ी होने से शत्रु की सेना नहीं रुकती और सेना के मुख्य भाग पर भीर आ पड़ती है।

अलंकार—उदाहरण (देखो अलंकार मंजूषा पृष्ठ १०७ सूचना)

दो०—डीठि न परत समान दुति, कनक कनक सो गात।
भूषन कर करकस लगत, परसि पिछाने जात॥

दो०—कीनें हूँ साहस सहस, कीने जतन हजार।
लोयन लोयनसिंधु तन, पैरि न पावत पार॥६७॥

शब्दार्थ—लोयन=लोचन। लोयनसिंधु=(लावण्य सिन्धु) सुन्दरता का समुद्र।

[विशेष]—नायक वा नायिका का वचन सखी प्रति। पूर्वानुराग की दशा का वर्णन। उत्सुकता संचारी भाव।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—यमक और रूपक तथा विशेषोक्ति।

दो०—पहुँचत डटि रन सुभट लौं, रोकि सकैं सब नाहिं।
लाखन हूँ की भीर मैं, आँखि उतै चलि जाहिं॥६८॥

शब्दार्थ—डटि=वीरता युक्त, साहस सहित। उतै=वहीं (नायक वा नायिका के पास)।

भावार्थ—सरल है।

[विशेष] शृङ्गार में वीर रस का पुट। परकीया नायिका।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में पूर्णोपमा, उत्तरार्द्ध में तृतीय विभावना।

दो०—गड़ी कुटुँब की भीर मैं, रही बैठी दै पीठि।
तऊ पलक परिजात उत, सलज हँसौहीं डीठि॥६९॥

शब्दार्थ—गड़ी = छिपी हुई। पलक = एक पल मात्र के लिये। सलज=लज्जा सहित। हँसौहीं = हँसती सी। रही बैठि दै पीठि = नायक की ओर पीठ किये बैठी है।

[विशेष]—नायिका स्वकीया। सखी वचन सखी प्रति।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—तीसरी विभावना।

दो०—भौंह उचै आँचरु उलटि, मौर मोरि मुँह मोरि।
नीठि नीठि भीतर गई, डीठि डीठि सों जोरि ॥७०॥

शब्दार्थ—उचै=उठाकर। आँचरु = अंचल। मौरि = (मौलि) सिर। नीठि नीठि = किसी प्रकार, मुशकिल से।

(वचन)—नायक वचन सखी प्रति। नायिका परकीया।

भावार्थ—भौंहें उठा (अर्थात् भौंहों से कुछ इशारा करके) अंचल उलट, सिर निहुरा, मुँह मोड़ और दृष्टि से दृष्टि मिलाकर मुशकिल से किसी प्रकार (अर्थात् अपनी इच्छा के विरुद्ध) भीतर गई।

[विशेष]—इस दोहा में चिंता और चपलता संचारी है, अनुभावान्तर्गत विलास हाव है, नायक-नायिका आलंबन, रति स्थायी स्पष्ट है। अतः शृङ्गार की पूर्ण सामग्री है।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

दो०—ऐंचत सी चितवनि चितै, भई ओट अलसाय।
फिरि उझकनि को मृगनयनि, दगनि लगनिया लाय ॥७१॥

शब्दार्थ—ऐंचत सी = मेरे मन को खींचती हुई सी। फिरि उझकनि को = फिर फिर उठकर देखने के लिये। लगनिया लाय = लगन लगाकर।

(वचन)—नायक वचन सखी प्रति। नायिका परकीया।

भावार्थ—चित्त को खींचती सी चितवन से देखकर और अलसाकर वह मृगनयनी नायिका आँखों से ओट हो गई और मेरे नेत्रों को बार-बार उझक-उझक कर देखने की लगन लगा गई।

[विशेष]—इस दोहा में अभिलाषा संचारी, आलस्य अनुभाव नायक-नायिका आलंबन, रति स्थायी स्पष्ट है।

अलंकार—'ऐंचति सी' में उत्प्रेक्षा। जहाँ क्रिया वा क्रियार्थ द्योतक संज्ञा में 'सी' शब्द लगता है वहाँ अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा मानी जाती है।

दो०—सटपटाति सी ससिमुखी, मुख घूँघट पट ढाँकि।
पावक झर सी झमकि कै, गई झरोखे झाँकि ॥७२॥

शब्दार्थ—सटपटाति सी = डरती हुई सी (लज्जा वा भय से)। पावक झर = आग की लपट। झमकि कै = शीघ्रता से। झरोखे = खिड़की से।

भावार्थ—वह शशिमुखी डरती हुई सी मुख को घूँघट से ढककर आग की लपट के रूप वाली नायिका शीघ्रता से झरोखे से झाँक कर चली गई।

[विशेष]—इसमें त्रास और लज्जा संचारी भाव हैं।

अलंकार—पूर्णोपमा। 'सटपटाति सी' में उत्प्रेक्षा है।

(नयनोक्तियाँ)

दो०—लागत कुटिल कटाच्छ सर, क्यों न होहिं बेहाल।
कढ़त जु हियो दुसार करि, तऊ रहत नटसाल ॥७३॥

शब्दार्थ—कटाच्छ = चितवन। बेहाल = व्याकुल। दुसार करि = आर-पार होकर, इस पार से उस पार होकर। नटसाल = तीर की गाँसी का वा काँटे का वह भाग जो टूटकर शरीर के भीतर ही रह जाय (परन्तु यहाँ पर उस पीड़ा से तात्पर्य्य है जो ऐसे भाग के रह जाने से तब तक हुआ करती है जब तक वह भाग निकाल नहीं लिया जाता)।

[विशेष]—प्रलय अनुभाव स्पष्ट है।

भावार्थ—तिरछे कटाक्ष वाण लगने से नायक (वा नायिका)

क्यों न व्याकुल हो जायँ, क्योंकि कटाक्ष बाण ऐसा होता है कि हृदय को छेद कर आर से पार हो जाता है तो भी उसकी कसक बनी ही रहती है।

अलंकार—काव्यलिंग, और विरोधाभास।

दो०—नैन तुरंगम अलक छबि, छरी लगी जिहि आय।
तिहि चढ़ि मन चंचल भयो, मति दीनी बिसराय ॥७४॥

शब्दार्थ—तुरंगम = घोड़ा। अलक छबि=मुख पर पड़ी हुई लट की सुन्दरता।

(वचन)—नायक वचन सखी प्रति।

भावार्थ—अलकछवि रूपी छड़ी द्वारा उत्तेजित किये हुए नेत्र रूपी घोड़े पर सवार होकर मेरा मन चंचल हो गया और सुध बुध भूल गई (अर्थात् नायिका के सुन्दर और चंचल नेत्र देख कर मेरी बुद्धि जाती रही)

अलंकार—रूपक।

[विशेष]—कोई कोई कहते हैं कि यह दोहा बिहारी कृत नहीं है, परन्तु हमारी सम्मति में यह दोहा अवश्य बिहारी ही का है। "किसी को आँखों में चढ़ना" यह हिन्दी का एक मुहावरा है। इस मुहावरे का भाव लेकर नेत्रों को घोड़ा बनाना बिहारी की ही प्रतिभा का काम है। नेत्रों को तुरङ्ग तो अन्य कवियों ने भी माना है। परन्तु पहुँचे हैं केवल उसकी चंचलता ही तक। बिहारी ने उपर्युक्त मुहावरे का सहारा लेकर उस घोड़े पर सवारी भी गाँठी है। तुर्रा यह कि शृंगार रस की पूरी सामग्री भी मौजूद कर दी है। रति स्थायी नायिका नायक आलम्बन विभाव, सखी उद्दीपन, चपलता संचारी और प्रलय (मति बिसराना) अनुभाव स्पष्ट है।

दो०—नीची यै नीची निपट, डीठि कुही लौं दौरि।
उठि ऊँचे नीचे दियो, मन कुलंग झकझोरि ॥७५॥

शब्दार्थ—कुही = छोटी जाति का बाज पक्षी। कुलंग = (सं० कलविंक) गौरवा पक्षी।

[विशेष]—कुही पक्षी पहले नीचे ही उड़ता रहता है; पर जब किसी पक्षी पर आक्रमण करता है, तब पहले बहुत ऊँचे उड़ जाता है, और उस पर अचानक टूट पड़ता है। कुही के इसी स्वभाव को लेकर बिहारी नायिका की नीची निगाह का उपमान बनाते हैं. ऐसा प्रकृति निरीक्षण और ऐसी योजना बिहारी ही की प्रतिभा का काम है।

भावार्थ—नायिका की निपट नीची दृष्टि ने कुही पक्षी की तरह नीचे ही नीचे उड़ कर पुनः ऊँचे उठ कर मेरे मन-कुलंग को झकझोर डाला (अर्थात् केवल एक दृष्टिपात से ही मुझे अपना आशिक बना लिया)।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—तिय कित कमनैती पढ़ी, बिनु जिह भौंह कमान।
चल चित बेझो चुकति नहिं, बंक बिलोकनि बान ॥७६॥

शब्दार्थ—कित=कहाँ। कमनेती=तीरंदाजी (धनुर्विद्या)। जिह=(फा०***) चिल्ला, प्रत्यंचा। बेझा=निशाना।

(वचन)—सखी वचन नायिका प्रति। नायिका परकीया।

भावार्थ—हे तिय! तूने ऐसी अद्भुत तीरंदाजी कहाँ से (किससे) सीखी है कि बिना प्रत्यंचा की भौंह रूपी कमान से तिरछी चितवन रूपी बाण चलाकर चंचल चित्त रूपी निशाने को कभी चूकती नहीं।

[विशेष]—शृंगार में अद्भुत का मेल। अद्भुतता यह कि (१) कमान बिना चिल्ले की (२) चितवन रूपी बाण भी टेढ़ा और (३) चित्त (जो प्रत्यक्ष देखा ही नहीं जाता और चलता भी है) का निशाना।

अलंकार—दूसरी विभावना। (हेतु अपूरण ते जहाँ कारज पूरण होय)।

दो०—दूरै खरे समीप को, मानि लेत मन मोद।
होत दुहुन के दृगन ही, बतरस हँसी विनोद ॥७७॥

शब्दार्थ—खरे=निपट। बतरस= रसीली बातें।

(वचन)—सखी का सखी प्रति। नायिका परकीया।

भावार्थ—नायक नायिका दूर ही रहने पर भी निपट समीप रहने

का सा आनन्द मान लेते हैं क्योंकि दोनों की रसीली बातें और हँसी विनोद आँखों ही में होते हैं।

अलंकार—दूसरी विभावना और काव्यलिंग।

दो०—छुटै न लाज न लालचौ, प्यौ लखि नैहर गेह।
सटपटात लोचन खरे, भरे सकोच सनेह ॥७८॥

शब्दार्थ—प्यौ=(प्रिय) नायक। नैहर=पीहर, मायका। सटपटात=छटपटाते हैं, व्याकुल हैं।

(वचन)—सखी का सखी प्रति। नायिका स्वकीया मध्या।

भावार्थ—नैहर में आये हुए नायक को देखने के लिये नायिका के लोचन व्याकुल हो रहे हैं क्योंकि संकोच और प्रेम युक्त होने के कारण न तो लज्जा ही त्यागते बनती है न मिलने का लालच ही।

अलंकार—दूसरा पर्याय। यथाः—

क्रम ही सों जहँ एक में आवैं वस्तु अनेक।

[विशेष]—संकोच और स्नेह—लज्जा और प्रेम की उमंगे बारी बारी से नायिका के हृदय में आकर उसे व्याकुल कर रही हैं। ऐसी दशा को साहित्य में "भाव-सन्धि" कहते हैं। यह भाव-सन्धि 'मध्या' में अवश्य ही होती है।

दो०—करे चाह सों चुटुकि कै, खरे उड़ौहैं मैन।
लाज नवाये तरफरत, करत खुँदी सी नैन ॥७९॥

शब्दार्थ—चुटुकि कै=चुटुकी से डरा डरा कर। खरे उड़ौहैं=खूब उड़ने वाले। तरफरत=तड़फड़ाते हैं। खुँदी=घोड़े की वह चंचलता जिसके कारण वह स्थिर होकर खड़ा नहीं रहता।

[विशेष]—सन की एक गावदुम लंबी रस्सी सी (बेणी के आकार की) बनाई जाती है उसे 'चुटुकी' कहते हैं। घोड़ा निकालते समय जब घोड़े को 'उड़ान' सिखाना होता है तब यह चुटकी घोड़े के पीछे तड़ाक, तड़ाक बजाई जाती है जिससे डरकर घोड़ा उड़ना (कूदते हुए चलना) सीखता है। खुँदी करना=जब घोड़ा उड़ना चाहता है, परन्तु सवार

उसे उड़ने से रोकता है तब घोड़ा एक जगह स्थिर होकर खड़ा नहीं रहता। इसी को 'खुँदी' करना कहते हैं।

भावार्थ—काम ने चाह की चुटकी दे देकर नायिका के नयन तुरंगों को खूब उड़नेवाले बना दिया है। अतः लाज रूपी लगाम द्वारा रोके जाने पर तड़फड़ा तड़फड़ाकर वे नेत्र-तुरंग खुँदी-सी करते हैं (अर्थात् नायिका नायक को देखना चाहती है पर गुरुजन की लज्जा से स्वतंत्रता-पूर्वक देख नहीं सकती अतः उसके नेत्र चंचल हो रहे हैं) मायके (नैहर, पीहर) में युवती स्त्रियाँ अपने पति को स्वतंत्रतापूर्वक नहीं देख सकतीं। यही अवस्था इस दोहे में वर्णित है।

अलंकार—एक देश विवर्तित सांग रूपक। (नेत्रों को 'तुरंग' और लाज को 'लगाम' कहना चाहिये था सो स्पष्ट शब्द नहीं कहे गये। "चुटकि कै, उड़ौंहैं करे, और खुँदी-सी करत" इत्यादि शब्दों की लक्षणा शक्ति से 'तुरंग' का रूपक जान पड़ता है। ऐसी लक्षणा शक्ति से काम लेना भी बिहारी ही का काम है।

दो०—नावक* सर से लाय कै, तिलक तरुनि इत ताकि।
पावक झर सी झमकि कै, गई झरोखे झाँकि ॥८०॥

शब्दार्थ—नावक सर (फा०) एक प्रकार का छोटा तीर जो एक नली द्वारा (जो कमान में लगी रहती है) फेंका जाता है। वास्तव में नावक उस नलिका को कहते हैं जिसमें से होकर वह बाण फेंका जाता है। परन्तु लक्षित लक्षणा से 'नावक' का अर्थ 'तीर' ही लेते हैं झर = लपट। झमकि कै = शीघ्रता से।

भावार्थ—वह तरुणी (नायिका) नावक के तीर के समान तिलक लगाकर मेरी ओर ताक कर, आग की लपट की तरह शीघ्रतापूर्वक झरोखे से झाँककर चली गई।

अलंकार—पूर्णोपमा।

---

* सतसैया के दोहरा, अरु नावक के तीर।
देखत के छोटे लगैं, घाव करैं गंभीर ॥

दो०—अनियारे दीरघ दृगनि, किती न तरुनि समान ?।
वह चितवनि औरै कछू, जिहिं बस होत सुजान ॥८१॥

शब्दार्थ—अनियारे = अनीवाले (वे नेत्र जो लंबे और जिनके कोने पैने नुकीले हों)। समान = (स + मान) गर्वीली।

[विशेष]—सखी नायिका की प्रशंसा में कहती है।

भावार्थ—इस ग्राम में अनियारे और बड़े नेत्र वाली गर्वीली स्त्रियाँ कितनी नहीं हैं (अर्थात् बहुत हैं), परन्तु तेरी चितवन कुछ विलक्षण भाँति की है जिससे सुजान नायक बस होता है।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति, व्यतिरेक और भेदकातिशयोक्ति।

दो०—चमचमात चंचल नयन, बिच घूँघट पट झीन।
मानहु सुरसरिता बिमल, जल उछरत जुग मीन ॥८२॥

शब्दार्थ—चमचमात = चमकते हैं। झीन = महीन, बारीक। सुरसरिता = गंगा।

भावार्थ—महीन घूँघटपट के भीतर नायिका के चंचल नेत्र चमकते हैं। वे ऐसे जान पड़ते हैं मानों गंगा के निर्मल जल में दो मछलियाँ उछलती हों।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—फूले फुदकत लै फरी, पल कटाच्छ करवार।
करत बचावत बिय नयन, पायक घाय हजार ॥८३॥

शब्दार्थ—फूले = आनन्दित होकर। फुदकत = पैतरे बदलते हैं। फरी = ढाल। करवार = (करवाल) तलवार। बिय = (द्वि) दोनों। पायक = सिपाही (पैदल)। घाय = (आघात) वार।

[विशेष]—नायिका नायक को देख रही है। यह देखकर सखी का सखी प्रति कथन।

भावार्थ—नायिका के दोनों नेत्र रूपी सिपाही पल रूपी ढाल और कटाक्षरूपी तलवार लिये हुए आनन्दयुक्त पैतरे बदलते हैं और हजारों वार करते और बचाते हैं।

[विशेष]—इसमें हर्ष संचारी भाव और कटाक्षपात अनुभाव है।
अलंकार – सांगरूपक और कारकदीपक।

दो०—जदपि चवायनि चीकनी, चलति चहूँ दिस सैन।
तऊ न छाँड़त दुहुन के, हँसी रसीले नैन ॥८४॥

शब्दार्थ—चवायनि चीकनी = चवाव अर्थात् निन्दा से चीकनी अर्थात् पुष्ट (निन्दायुक्त)। सैन = इशारा।

(वचन)—सखी प्रति सखी का। नायिका परकीया।

भावार्थ—यद्यपि निन्दायुक्त इशारे चारों ओर से हो रहे हैं, तो भी दोनों के रसीले नेत्र परस्पर की हँसी नहीं छोड़ते।

अलंकार—विशेपोक्ति (विद्यमान कारण बन्यो तऊ न फल जह होय)।

(नासिका वर्णन)

दो०—जटित नीलमणि जगमगति, सींक सुहाई नाँक।
मनो अली चंपककली, बसि रस लेत निसाँक ॥८५॥

शब्दार्थ—सींक = नाक में पहनने का एक आभूषण जिसे लौंग वा फुली भी कहते हैं। अली (अलि) भौंरा। निसांक = निःशंक।

भावार्थ—उस नायिका की सुन्दर नाक में नीलमजटित लौंग जगमगा रही है, वह ऐसी जान पड़ता है मानो चंपा की कली पर बैठा हुआ भौंरा बेखटके रस पी रहा हो।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा। (धन्य बिहारी ! प्रतिभा द्वारा भौंरे को चंपा की कली पर बैठा ही दिया)।

दो०—बेधक अनियारे नयन, बेधत कर न निषेध।
बरबस बेधत मो हियो, तो नासा को बेध ॥८६।

शब्दार्थ—बेधक = बेधनेवाला। अनियारे = नुकीले। निषेध = मनाहीं। बरबस = जबरदस्ती। बेध = छेद।

भावार्थ—हे प्रिया! तेरे नुकीले नेत्र जो मेरे हृदय को बेधते हैं, उन्हें तू मना मत कर (अर्थात् बेधने दे, वे नुकीले हैं, बेधना उनका काम ही है, क्योंकि नुकीली वस्तु है) परन्तु आश्चर्य तो यह है कि तेरी नाक का छेद (जो स्वयं बिद्ध है और नुकीला नहीं है) बरबस मेरे हृदय को बेधता है। (अति सौन्दर्य व्यंजित है)।

अलंकार—चौथी विभावना। (जाको कारण जो नहीं उपजत ताते तौन)।

दो०—जदपि लौंग ललितौ तऊ, तू न पहिरि इक आँक।
सदा संक बढ़ियै रहै, रहै चढ़ी सी नाँक ॥८७॥

शब्दार्थ—लौंग = नाक में पहनने की फुल्ली (सींक)। इक आँक = निश्चय।

(वचन)—शठ नायक का वचन मानवती नायिका प्रति।

भावार्थ—यद्यपि लौंग अति सुन्दर है तौ भी तू इसे कभी न पहना कर। इसके पहनने से तेरी नाक चढ़ी सी रहती है और मेरी शंका सदा बढ़ी ही रहती है (कि शायद तू मान किये हुए है)।

अलंकार—लेश = (जहँ वर्णत गुण दोष कै कहै दोष गुणरूप) यहाँ लौंग की ललिताई को दोषवत् माना है। श्लेष से यह व्यंजित होता है कि 'लौंग' कटु रस युक्त होती है अतः यह लौंग तेरी नाक से कटु रस अर्थात् मान (क्रोध) प्रदर्शित करती है।

दो०—बेसरि मोती-दुति झलक, परी अधर पर आय।
चूनो होय न चतुर तिय, क्यों पट पोछो जाय ॥८८॥

शब्दार्थ - बेसर = नाक में पहनने का एक आभूषण विशेष, जिसमें बहुत से मोती गुथे होते हैं। चूनो = पान में खाने का चूना।

भावार्थ—बेसर में गुँथे हुए मोतियों की चमक की सफ़ेद आभा

तेरे ओठों पर आ पड़ी है (जिसे तू चूना समझती है, सो) हे तिय ! यह चूना नहीं है, यह कपड़े से कैसे पूँछ सकती है।

अलंकार—भ्रान्त्यपह्नुति।

दो०—इहिं द्वै ही मोती सुगथ, तू नथ गरबि निसांक।
जिहिं पहिरे जगदृग ग्रसति, लसति हँसति सी नांक ॥८९॥

शब्दार्थ—सुगथ = सुन्दर पूँजी। गरबि = गर्व कर ले। निसांक = निर्भय।

(वचन —नायक वचन नथ प्रति (अति सौन्दर्य व्यंग)।

भावार्थ—हे नथ ! इन दोही मोतियों की पूँजी पर तू निःशंक गर्व करले, क्योंकि तू ऐसा सुन्दर है कि तुझे पहनकर यह नासिका हँसती सी जान पड़ती है और सबके नेत्रों को ग्रसती है (सब लोग टकटकी लगाकर इसे देखते हैं)।

[विशेष]—इस दोहा में विच्छित्त हाव और गर्व संचारी है।

अलंकार—अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा—(हँसती सी नाक)।

दो०—बेसरि मोती धन्य तू, को पूछे कुल जाति।
पीबो करि तिय अधर को, रस निधरक दिनराति ॥९०॥

शब्दार्थ—अधर = नीचे वाला ओठ। निधरक = निर्भयता से।

भावार्थ—हे बेसर के मोती, तू धन्य है, कुल और जाति कौन पूछता है ? नायिका के ओठ का रस निभयतापूर्वक रातो दिन पिया कर।

अलंकार—अन्योक्ति। व्याजस्तुति।

(कपोल वर्णन)

दो०—बरन बास सुकुमारता, सब बिधि रही समाय।
पँखुरी लगी गुलाब की, गाल न जानी जाय ॥९१॥

शब्दार्थ—बरन=(वर्ण) रंग । बास = गंध ।

भावार्थ—गुलाब की एक पँखुरी नायिका के गाल में चिपक गई है, सो जान नहीं पड़ती, क्योंकि वह रंग सुगंध और कोमलता में गाल ही में समा गई है (अर्थात् उसके गाल का रंग, उसकी सुगंध और कोमलता उसी प्रकार की है जैसी गुलाब की पंखुरी की)।

अलंकार—मीलित ।

(श्रवण वर्णन)

दो०—लसत सेत सारी ढक्यो, तरल तर्यौना कान ।
परयो मनो सुरसरि-सलिल, रवि-प्रतिबिंब विहान ॥९२॥

शब्दार्थ—तर्यौना = कर्णफूल । प्रतिबिंब = अक्स । विहान = प्रातःकाल ।

भावार्थ—सरल ।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा ।

(अधर वर्णन)

दो०—सुदुति दुराये दुरति नहीं, प्रगट करति रति रूप ।
छुटे पीक औरै उठी, लाली अधर अनूप ॥९३॥

शब्दार्थ—सुदुति = सुन्दर कान्ति । रति = समागम ।

[विशेष]—नायिका प्रति सखी वचन । नायिका लक्षिता ।

भावार्थ—ओठ की सुन्दर कान्ति (जो तू छिपना चाहती है) छिपाने से छिपती नहीं, वरन् वह प्रत्यक्ष पुरुष समागम का रूप प्रकट

कर रही है। पीक के छूट जाने से (नायक के चुम्बनादि से) ओठ में और ही प्रकार की अनुपम सुर्खी आ गई है।

अलंकार—भेदकातिशयोक्ति।

(चिबुक वर्णन)

दो०— कुच गिरि चढ़ि अति थकित ह्वै, चली डीठि मुख चाड़।
फिरि न टरी परियै रही, परी चिबुक की गाड़ ॥९४॥

शब्दार्थ—चाड़ = चाह। चिबुक = ठोडी। गाड़ = गड्ढा।

भावार्थ—मेरी दृष्टि कुचरूपी पर्वतों पर चढ़कर अत्यन्त थकित होकर धीरे धीरे मुख की छवि देखने की चाह में आगे बढ़ी, तो रास्ते में चिबुक का गड्ढा मिला। बस उस गड्ढे में जो गिरी तो वहीं पड़ी रह गई, फिर वहाँ से टली नहीं।

अलंकार—एक देश विवर्तित सांगरूपक—(यहाँ "दृष्टि"को "यात्री" कहना चाहिये था सो नहीं कहा)।

दो०—ललित स्यामलीला ललन, चढ़ी चिबुक छबि दून।
मधु छाक्यो मधुकर परयो, मनो गुलाब प्रसून ॥९५॥

शब्दार्थ—श्यामलीला = गोदना का विन्दु। मधु=मकरन्द, पुष्परस। प्रसून = फूल।

भावार्थ—(सखी वचन नायक प्रति) हे ललन ! उस नायिका की ठोढ़ी पर जो सुन्दर गोदना का विन्दु है उससे चिबुक पर दूनी छबि चढ़ गई है और ऐसा जान पड़ता है मानो मकरन्द से छक कर कोई भौंरा गुलाब के फूल में पड़ा हुआ है।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—डारे ठोढ़ी गाड़ गहि, नैन बटोही मारि।
चिलक चौंधि में रूप ठग, हाँसी फाँसी डारि ॥९६॥

शब्दार्थ—बटोही=मुसाफिर। चिलक=चमक। चौंधि=चकाचौंधी।

(वचन)—सखी वचन नायिका प्रति।

भावार्थ—तेरे रूप ठग ने कान्ति की चमक की चकाचौंधी में पड़े हुए नेत्र पथिकों को गले में हँसी की फाँसी डाल कर उन्हें मार कर ठोढ़ी के गड्ढे में डाल रक्खा है (जो नेत्र तेरे रूप को देखता है वही मारा जाकर चिबुक के गड्ढे में डाल दिया जाता है। उसी की लाश यह श्यामलीला है)।

अलंकार—सांग रूपक।

दो०—तो लखि मो मन जो लही, सो गति कही न जाति।
ठोढ़ी गाड़ गड़्यौ तऊ उड़्यौ रहै दिन राति ॥९७॥

शब्दार्थ तथा भावार्थ सरल है।

अलंकार—विरोधाभास।

(डिठौना वर्णन)

दो०—लोने मुख डीठि न लगै, यों कहि दीनो ईठि।
दूनी ह्वै लागन लगी, दिये डिठौना दीठि ॥९८॥

शब्दार्थ—लोने=सुन्दर। ईठ=हितू वा मित्र।

भावार्थ—(सखी वचन सखी प्रति) हितू सखी ने नायिका के मस्तक पर यह समझ कर कि इस सुन्दर मुख पर किसी की नजर न लग जाय दिठौना लगा दिया। परन्तु दिठौना लगाने से उस मुख की और भी अधिक सुन्दरता बढ़ गई और अधिक लोगों की दृष्टि उसके मुख पर पड़ने लगी।

अलंकार—तीसरा विषम।

(जहाँ भलो उद्यम किये होत बुरो फल आय),

दो०—पिय तिय सों हँसि कै कह्यौ, लखै दिठौना दीन।
चंदमुखी मुखचंद तैं, भलो चंद सम कीन ॥९९॥

भावार्थ—दिठौना दिये हुए देखकर नायक ने हँसकर नायिका से कहा कि हे चन्द्रमुखी तेरा मुख चन्द्रमा से अच्छा था सो अब दिठौना लगाकर कलंकी चन्द्रमा के समान कर डाला (अथवा) हे चन्द्रमुखी, यह चन्द्र सम कलंकित किया हुआ तेरा मुख अब भी चन्द्रमा से अच्छा ही है।

अलंकार—व्यतिरेक।

(मेंहँदी वर्णन)

दो०—गड़े बड़े छवि छाक छकि, छिगुनी छोर छुटैं न।
रहे सुरँग रँग रँगि वही, नह-दी महँदी नैन ॥१००॥

शब्दार्थ—छविछाक छकि = छवि के नशे से मस्त होकर। रँगि रहे = अनुरक्त हो रहे हैं।

भावार्थ—(नायक वचन सखी प्रति) हे सखी नायिका ने जो नाखून में मेंहदी लगाई है उसी के बड़े छवि-छाक से छक कर मेरे नेत्र छिगुनी के छोर में गड़ रहे हैं वहाँ से छूटने नहीं पाते, (मानो) उसी नाखून में दी हुई मेंहदी के सुन्दर लाल रंग से अनुरक्त हो रहे हैं।

अलंकार—गम्योत्प्रेक्षा।

द्वितीय शतक

(मुख वर्णन)

दो०—सूर उदित हू मुदित मन, मुख-सुखमा की ओर।
चितै रहत चहुँ ओर तें, निश्चल चखनि चकोर ॥१०१॥

शब्दार्थ—सुखमा=परम शोभा। निश्चल=स्थिर।

(वचन)—सखी वचन नायिका के मुख की प्रशंसा।

भावार्थ—सूर्य्य उदय हो आने पर भी उसकी मुख-शोभा की ओर आनन्दित मन से टकटकी लगाये चकोर चारो ओर से देखा करते हैं (चकोर उसके मुख को चन्द्रमा ही समझते हैं)

अलंकार—भ्रान्ति।

दो०—पत्राही तिथि पाइये, वा घर के चहुँ पास।
नितप्रति पून्योई रहत, आनन ओप उजास ॥१०२॥

शब्दार्थ—चहुँ पास=चारो ओर। पूनो=पूर्णमासी। ओप= चमक। उजास=प्रकाश।

(वचन)—सखी वचन नायक प्रति।

भावार्थ—वाके (नायिका के) घर के चारो ओर तिथि का ठीक पता नहीं चलता, केवल पत्रा ही से ठीक तिथि जानी जाति है। कारण इसका यह है कि उसके (नायिका के) मुख की चमक और प्रकाश से वहाँ नित्य पूर्णमासी ही की चाँदनी छिटकती है।

अलंकार—परिसंख्या तथा काव्यलिंग।

(हास्य वर्णन)

दो०—नेकु हँसौंही बानि तजि, लख्यौ परत मुख नीठि।
चौंका चमकनि चौंध में, परत चौंधि सी डीठी ॥१०३॥

शब्दार्थ—बानी = आदत। नीठि = कठिनता से। चौक = अगले चार दाँतों का समूह। चौंध = चकचौंध। डीठि चौंधि सी परति = दृष्टि चौंधियाँ सी जाती है।

भावार्थ—(सखी वचन नायिका प्रति) जरा हँसोड़ आदत छोड़ दो, इस हँसी के कारण तेरा मुख मुशकिल से देखा जा सकता है। चारो दाँतो की चमक की चकचौंध में देखने वाले की दृष्टि चौंधियासी जाती है।

अलंकार—काव्यलिंग और अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

(कुच वर्णन)

दो०—चलन न पावत निगम मग, जग उपजी अति त्रास।
कुच उतंग गिरिवर गह्यौ, मीना मैन मवास ॥१०४॥

शब्दार्थ—मीना = राजपूताने की एक जंगली और लुटेरी जाति (गोंड = भील)। मवास = आश्रयस्थान (गढ़)।

(वचन)—कवि की उक्ति।

भावार्थ—तेरे उतंग कुचों के कारण वेद का पथ (परनारि को माता समझना इत्यादि) नहीं चलने पाता, अतः संसार भर में अति त्रास उत्पन्न हो गई है। तेरे उतंग कुचरूप पहाड़ों पर काम रूपी मीना ने अपना गढ़ बना लिया है (वहीं रहकर चारों ओर लूट मार करता रहता है। अतः उसकी लूट के डर से वेद का रास्ता बंद हो गया है)।

अलंकार—सम अभेद रूपक। (सांगरूपक)।

(कटि वर्णन)

दो०—ज्यौं ज्यौं जोबन जेठ दिन, कुच मिति अति अधिकाति ।
त्यौं त्यौं छिन छिन कटि छपा, छीन परति सी जाति॥१०५॥

शब्दार्थ—मिति=दिन का मान। छपा=रात्रि। छीन परति जाति=कम होती जाती है।

(वचन)—सखी वचन नायक प्रति।

भावार्थ—जैसे जैसे जवानी रूपी जेठ मास में कुच रूपी दिनों का मान बढ़ता जाता है (अर्थात् जैसे जेठ मास में रोज रोज दिन बढ़ता है, वैसे ही जवानी में कुच बढ़ते हैं) वैसे ही वैसे कमर रूपी रात्रि प्रति दिन थोड़ी थोड़ी घटती जाती है।

अलंकार—रूपक।

दो०—लगी अनलगी सी जु विधि, करी खरी कटि छीन ।
किये मनो वाही कसरि, कुच नितम्ब अति पीन ॥१०६॥

शब्दार्थ— खरी छीन=बहुत पतली। वाही कसरि=उसी के बदले में। पीन=पुष्ट।

(वचन)--सखी वचन नायिका प्रति।

भावार्थ— ब्रह्मा ने जो उसकी कमर अत्यन्त पतली बनाई है, कि लगी हुई भी न लगी हुई सी जान पड़ती है, (अर्थात् ब्रह्मा ने उसकी कमर ऐसी पतली बनाई है कि होते हुए भी नहीं के समान है) मानो इसी का बदला देने के लिये उसके कुच और नितंब बहुत बड़े बड़े कर दिये हैं।

अलंकार—असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा।

(जंघा वर्णन)

दो०—जंघ जुगल लोयन निरे, करे मनो बिधि मैन ।
केलितरुन दुखदैन ए, केलि तरुन सुखदैन ॥१०७॥

शब्दार्थ—निरे = बिल्कुल, निखालिस।

(वचन)—सखी वचन नायक प्रति।

भावार्थ—मानो काम-ब्रह्मा ने उसके दोनों जंघा बिल्कुल लावण्य (सौन्दर्य) ही के बनाये हैं। वे जंघा केले के वृक्षों को तो दुख देने वाले हैं (लज्जित करने वाले हैं) परन्तु केलि (रति) समय में तरुण पुरुष को सुख देने वाले हैं।

अलंकार-पूर्वार्द्ध में अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा और उत्तरार्द्ध में यमक।

[मुरवा वर्णन]

दो०—रह्यो ढीठ ढाढ़स गहे, ससिहर गयो न सूर।
मुर्यो न मन मुरवान चुभि, भौ चूरन चपि चूर ॥१०८॥

शब्दार्थ—ढाढ़स = साहस। ससिहर = (फा० शशदर) भयभीत, हैरान। ससिहर गयो न = डरा नहीं, हैरान नहीं हुआ। सूर = शूर वीर। मुर्यो न = मुड़ा नहीं, लौटा नहीं। मुरवा = पाँव का वह भाग जहाँ पर कड़े, छड़े पाजेब इत्यादि भूषण पहने जाते हैं। चूरन = (चूरा का बहुवचन) कड़े।

भावार्थ—(नायक वचन सखी प्रति) हे सखी, मेरा मन भी कैसा शूरवीर है। देखो तो प्यारी के मुरवों को देखकर मुड़ा नहीं, डरा नहीं, वरन् ढीठ होकर साहस धारण किये रहा और वहीं चुभकर कड़ों से चपकर चूर चूर हो गया। (भाव यह है कि नायिका के मुरवा इतने सुंदर हैं कि मेरा मन वहाँ से हटा नहीं, वरन् वहीं चँपकर चूर चूर हो गया)।

अलंकार—छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास।

(एँड़ी वर्णन

दो०—पाय महावर देन कौं, नाइन बैठी आय।
फिरि फिरि जानि महावरी, एँड़ी मीड़त जाय ॥१०९॥

शब्दार्थ—महावरी = महावर की गोली।

भावार्थ—(सखी वचन नायक प्रति) हे लाल ! हमारी सखि (नायिका) की ऍड़ी स्वाभाविक ऐसी गोल और लाल है कि एक बार एक नाइन महावर लगाने को आई थी, उसे भ्रम हो गया और वह ऍड़ी ही को महावर की गोली समझ कर उसे ही मींड़ मींड़कर लाल रंग निकालने लगी।

अलंकार—भ्रम।

दो०—कौहर सी एँड़ीन की, लाली निरखि सुभाय।
पाय महावर देह को, आप भई बेपाय ॥११०॥

शब्दार्थ—कौहर = एक जंगली लाल फल जिसे माहुरी भी कहते हैं। बेपाय भई = चकित स्तंभित हो गई।

भावार्थ—कौहर समान एँड़ियों की सहज स्वाभाविक लालिमा देखकर नाइन ऐसी चकित हो गई कि उसकी बुद्धि भ्रमित हो गई, तो पैर में महावर कौन लगावै (अर्थात् महावर लगाना ही भूल गई)।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में पूर्णोपमा। उत्तरार्द्ध में (पाय बेपाय) यमक।

(पायल वर्णन)

दो०—किय हायल चित चाय लगि, बजि पायल तुव पाय।
पुनि सुनिसुनि मुख मधुर धुनि, क्यों न लाल ललचाय ॥१११॥

शब्दार्थ—हायल = (घायल) मूर्छित, स्थगित। चाय = चाह।

(वचन)—सखी वचन नायिका प्रति।

भावार्थ—चित्त में चाह लगी रहने के कारण जब तेरे पैर की पायजेब ही बज बजकर नायक को स्तंभित कर देती है, तो फिर तेरे मुख की मधुर ध्वनि सुन-सुनकर लाल (नायक) क्यों न ललचाय (तेरे मुख की वार्ता सुनने को)।

अलंकार—अनुप्रास।

(अनवट वर्णन)

दो०—सोहत अंगुठा पायके, अनवट जऱ्यौ जराय।
जीत्यौ तरिवन दुति सु ढरि, पऱ्यो तरनि मनु पाय ॥११२॥

शब्दार्थ—अनवट=पैर के अँगूठा में पहनने का आभूषण। तरिवन=(तऱ्यौन) कर्णफूल। तरनि=सूर्य्य।

(वचन)—सखी वचन नायक प्रति।

भावार्थ—पैर के अँगूठे में जड़ाऊ अनवट ऐसी शोभा देती है मानो कर्णफूल की दुति से पराजित होकर सूर्य्य ही पैरों पर आ गिरा है।

अलंकार सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा।

(पगतल अरुणता वर्णन)

दो०—पग पग मग अगमन परति, चरन अरुन दुति झूलि।
ठौर ठौर लखियत उठे, दुपहरिया से फूलि ॥११३॥

शब्दार्थ—अगमन=आगे। (जहाँ उठाया हुआ चरण पड़ने को) है। अरुन दुति झूलि परति=लाल आभा झड़ पड़ती है। दुपहरिया=बंधूक पुष्प।

(वचन)—सखी का नायक प्रति।

भावार्थ—रास्ते में (नायिका के चलते समय) पग पग पर आगे की ओर (जहाँ उठाया हुआ चरण पड़ता है) पैर की लाल आभा झड़ पड़ती है, (और ऐसी जान पड़ती है) मानो जगह जगह पर दुपहरिया के फूल, फूल उठते हैं।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

(कंचुकी वर्णन)

दो०—दुरत न कुच बिच कंचुकी, चुपरी सादी सेत।
कवि अंकनके अर्थ लौं, प्रगट दिखाई देत ॥११४॥

शब्दार्थ—कंचुकी = अँगिया। चुपरी = इत्र आदि सुगंध लगाई हुई।

(वचन)—सखी वचन नायक प्रति।

भावार्थ—सुगंध लगी हुई, सादी और सफेद कंचुकी में कुच छिपते नहीं हैं (अर्थात् अत्यंत कान्ति मान हैं) काव्य के अर्थ के समान प्रकट ही दिखाई पड़ते हैं।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—भई जु तन छबि बसन मिलि, बरनि सकै सुन बैन।
अंग ओप आँगी दुरी, आँगी आँग दुरै न ॥११५॥

शब्दार्थ—ओप = कान्ति। आँगी = अँगिया।

भावार्थ—वस्त्र से मिलकर जो छवि उसके शरीर की हुई उसे वचन नहीं कह सकता। उसके कुचों की कान्ति से अँगिया ही छिप गई, अँगियाँ में कुच न छिपे।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में "वाचकधर्मोपमानलुप्ता" तृतीय चरण में मीलित और चतुर्थ चरण में विशेषोक्ति।

(वस्त्राभूषण वर्णन)

दो०—भूषन पहिरि न कनक के, कहि आवत इहि हेत।
दरपन के से मोरचे, देह दिखाई देत ॥११६॥

शब्दार्थ—कनक = सोना। दरपन = आइना।

[विशेष]—स्मरण रखना चाहिये कि दर्पण (आइना) पहले लोहे से बनता था। उसमें मोरचा लगना संभव था।

भावार्थ—(सखी वचन नायिका प्रति) "तू सोने के भूषण न पहनाकर" यह बात इसलिये कही जाती है कि (भूषणों से तेरी शोभा नहीं बढ़ती वरन्) तेरी देह में वे भूषण दर्पण में लगे हुए मोरचे के समान दिखाई पड़ते हैं (अर्थात् तेरी स्वाभाविक सुन्दरता को भी बिगाड़ देते हैं।

अलंकार—पूर्णोपमा। विषम।

दो०—मानहु विधि तन अच्छ छवि, स्वच्छ राखिबे काज।
 दृगपग पोछन को किये, भूषन पायन्दाज ॥११७॥

शब्दार्थ—स्वच्छ = निर्मल। पायन्दाज=(फा०) पैर पोछने का वस्त्र।

(वचन)—कवि की उक्ति वा सखी वचन नायक प्रति।

भावार्थ—दृष्टि के पैरों से शरीर की अच्छी छवि मैली न हो जाय (स्वच्छ रहै) मानो इसीलिये दृष्टि के पैर पोछने के लिये ही ब्रह्मा ने पायन्दाज के तौर पर भूषणों की सृष्टि की है।

अलंकार—हेतूत्प्रेक्षा।

दो०—सोनजुही सी जगमगै, अँग अँग जोवन जोति।
 सुरँग कुसुम्भी चूनरी, दुरँग देहदुति होति ॥११८॥

शब्दार्थ—जगमगै = चमचमाती है। जोवन = जवानी। सुरंग = लाल। दुरंग = दो रंग की। देह दुति = शरीर की आभा।

(वचन)—सखी वचन नायक प्रति।

भावार्थ—जवानी के कारण उसके सब अंगों में सोनजुही (पीली चमेली) की आभा चमकती है। उस पर जिस समय वह कुसुम की रंगी हुई लाल चूनरी पहनती है उस समय उसके शरीर की आभा दोरंगी (धूप छाँह सी) हो जाती है।

अलंकार—(पूर्वार्द्ध में) पूर्णोपमा। (उत्तरार्द्ध में वृत्यनुप्रास)।

दो०—छप्यो छबीलो मुख लसै, नीले आँचर चीर।
 मनो कलानिधि झलमलै, कालिंदी के नीर ॥११९॥

शब्दार्थ—छप्यो = ढँका हुआ। छबीलो = सुन्दर। आँचर = दामन, सारी का वह भाग जो ओढ़ा जाता है। कलानिधि = चन्द्रमा। कालिंदी = यमुना।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—लसै मुरासा तिय स्रवन, यों मुकतन दुति पाय।
मानो परस कपोल के, रहे सेदकन छाय॥ १२०॥

शब्दार्थ—मुरासा=तरकी, तरौना। सेदकन=(स्वेदकण) पसीने के बूंद।

भावार्थ—मोतियों की आभायुक्त (मोती जटित) तरकी नायिका के कानो में ऐसी शोभायमान है, मानों कपोल के स्पर्श से (मुरासे को स्वेद सात्विक भाव हुआ है) पसीने की बूंदों से छा गया है।

अलंकार—सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा।

दो०—सहज सेत पचतोरिया, पहिरे अति छवि होति।
जल चादर के दीप लौं, जगमगाति तन जोति॥ १२१॥

शब्दार्थ—पचतोरिया=एक प्रकार की बारीक रेशमी साड़ी। जल-चादर=फव्वारे से छूटती हुई पानी की चादर।

भावार्थ—सफेद बारीक रेशमी साड़ी पहनने से सहज ही में उस नायिका की छवि बहुत बढ़ जाती है। उसके तन की कान्ति जल चादर के भीतर रक्खे हुए दीपक की भाँति जगमगाती है।

[विशेष]—राजाओं के अच्छे बागों में प्राय: ऐसी सजावट होती थी कि ऊपर से एक चौड़ी चादर की भाँति जल गिरता था और उसके पीछे ताखों में चिराग रक्खे जाते थे जो इस ओर झिलमिलाते से दिखाई पड़ते थे। महाराजा रणजीत सिंह के शालामार बाग में और श्रीअयोध्याजी में अवध नरेश के शृङ्गारवन नामक बाग में अब तक जलचादर मौजूद हैं।

अलंकार—पूर्णोपमा।

(खुभी वर्णन)

दो०—सालति है नटसाल सी, क्यों हूँ निकसति नाहिं।
मन-मथ नेजा नोक सी, खुभी खुभी मन माहिं॥ १२२॥

शब्दार्थ—सालति है=पीड़ा देती है। नटसाल=तीर की गाँसी का वह अंश जो टूट कर अंग के भीतर रह जाता है। खुभी=लौंग के आकार का एक कर्णभूषण। खुभी=गड़ी है।

भावार्थ—(नायक वचन नायिका प्रति) तेरे कान की खुभी मेरे मन में काम के नेजे की नोक की तरह गड़ गई है, सो भीतर टूटी गाँसी की तरह पीड़ा देती है, किसी प्रकार निकलती ही नहीं।

अलंकार—पूर्णोपमा। चतुर्थ चरण में "यमक"।

(तरौना वर्णन)

दो०—अजौं तर्‍यौना ही रह्यो, श्रुति सेवत इक अंग।
नाक बास बेसर लह्यो, बसि मुकुतन के संग ॥१२३॥

शब्दार्थ—तर्‍योना=(१) कर्णफूल (२) तर्‍योना (न तरा)। श्रुति=(१) कान (२) वेद। इक अंग=अबाध्य रीति से, स्वयं अकेला ही। नाक=(१) नासा (२) स्वर्ग। बेसर—(१) नाक का भूषण (२) जो समता का न हो। मुकतन=(१) मोती (२) मुक्त लोग।

भावार्थ—अबाध्य रूप से श्रुति का सेवन करते रहने पर भी यह कर्णफूल अब तक 'तर्‍योना' ही (के नाम से पुकारा जाता है) रहा।—(दूसरा अर्थ यह कि जो कोई श्रुति अर्थात् वेद का सेवन करता है वह तर जाता है, परन्तु यह अभी तक तरा नहीं) देखो (मुक्ता-जटित होने के कारण) बेसर ने नाक का बास पा लिया (जीवन-मुक्त-जनों का सङ्ग करके तुच्छ व्यक्ति ने स्वर्ग का वास पाया)।

[विशेष]—इस दोहे में बिहारी ने कमाल किया है। शब्दों के श्लेषार्थ बल से बड़ा भारी काम लिया है। वास्तव में 'तरौना' वर्णन है। दूसरा अर्थ जो श्लेष से भासता है वह अप्रस्तुत है।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट किया हुआ मुद्रालंकार।

सो०–मंगल बिंदु सुरंग, मुख ससि केसर आड़ गुरु।
इक नारी लहि संग, रसमय किय लोचन जगत ॥१२४॥

शब्दार्थ– बिंदु सुरंग = मस्तक पर लगी हुई रोरी की बिन्दी। केसर आड़ = केसर का आड़ा टीका। गुरु = बृहस्पति। नारी = (१) स्त्री (२) राशि। रस = (१) जल (२) शृंगार रस।

[विशेष]–ज्यौतिष के अनुसार यदि मंगल चन्द्रमा और बृहस्पति वर्षा के नक्षत्रों में एक राशि पर एक पंक्ति में आ जायें तो जलयोग होता है! इसी सिद्धान्त को बिहारी ने अपने सहज स्वभावानुसार इस सोरठा में दर्शाया है।

(वचन)–नायक वचन सखी प्रति।

भावार्थ–नायिका का मुख चन्द्रमा है ही, उसके भाल पर लगा हुआ रोरी का बिंदु मंगल है और केसर का आड़ा टीका बृहस्पति है। इन तीनों ने एक राशि पाकर संसार के नेत्रों को जलमय कर डाला–(अर्थात् देखने से दर्शकों के नेत्रों में आनन्द के आँसू आते हैं और न देखने से शोक के)।

अलंकार–श्लेष से पुष्ट किया हुआ सांग रूपक।

दो०–गोरी छिगुनी अरुन नख, छला स्याम छवि देय।
लहत मुकुति रति छिनक ये, नैन त्रिबेनी सेय ॥१२५॥

शब्दार्थ–छिगुनी = कनिष्ठिका अँगुली। छला स्याम = लोहे का छल्ला। रति = अनुराग।

(वचन) –नायक वचन सखी प्रति।

भावार्थ–नायिका की गोरी छिगुनी पर लाल नख और काला (लोहे का) छल्ला बड़ी छवि देते हैं। ये मेरे नेत्र इस त्रिवेणी का एक क्षण मात्र सेवन करके प्रीति रूपी मुक्ति को प्राप्त करते हैं, (देख कर अनुराग बढ़ता है)।

[विशेष]–कोई आभूषण नहीं, केवल एक लोहे का छल्ला पहनने से नायिका इतनी सुन्दर मालूम होती है कि नायक उस पर

आसक्त होता है। अतः विच्छित्ति हाव है, यथा--(तनक बनक ही में जहाँ तरुणि महा छवि देत)।
अलंकार—रूपक।

दो०--तरिवन कनक कपोल दुति, बिच बिचही जु बिकान।
लाल, लाल चमकत चुनी, चौकाचौंध समान ॥१२६॥

शब्दार्थ—तरिवन = कर्णफूल। बिचही जु बिकान = बीचही में बिक गया, ठगा गया (सुधबुध भूल गई)। लाल = नायक। चुनी = माणिक के टुकड़े। चौका = आगे के चार दाँत (दो नीचे के दो ऊपर के जो हँसते समय खुल जाते हैं)। चौंध = चकाचौंध।

(वचन)—सखी वचन नायिका प्रति।

भावार्थ—हे लाडिली, लाल (नायक) तो तेरे सोनहले कर्णफूल और गालों की चमक के बीच में पड़कर सब सुध बुध भूल गये (बीच ही बिकान) अर्थात् तेरे मुख की शोभा को भली प्रकार देख न सके, क्योंकि कर्णफूल में जड़ी हुई लाल चुन्नियाँ और चारो दाँत चकाचौंध के समान चमकते हैं (अर्थात् देखने वाले के नेत्रों में चकाचौंध सी डाल देते हैं)।

अलङ्कार—पूर्णोपमा।

दो०--सारी डारी नील की, ओट अचूक चूकैं न।
जो मन-मृग कर वर गहैं, अहे अहेरी नैन ॥१२७॥

शब्दार्थ—डारी =(डाल) वह टट्टी जिसकी ओट से शिकारी लोग शिकार करते हैं। अचूक = जिससे कभी धोखा न हो, जिसका निशाना कभी खाली न जाय। कर वर = (करबल) हाथ के बल (हाथ से)। अहे = आश्चर्य सूचक अव्यय।

(वचन)—नायक वचन नायिका प्रति।

भावार्थ—हे प्यारी! तेरे नेत्र बड़े विलक्षण और अचूक शिकारी हैं। ये कभी अपने शिकार को चूकते नहीं। नीली सारी की टट्टी की ओट में मेरे मन रूपी मृग को हाथ ही से पकड़ लेते हैं।

अलंकार—सम अभेद रूपक।

दो०—तन भूषन अंजन दृगनि, पगन महावर रंग।
नहिं सोभा को साज ये, कहिबे ही को अंग ॥१२८॥

शब्दार्थ—साज = सामग्री।

[विशेष]—नायिका की सहज शोभा का वर्णन। सखी वचन नायक प्रति।

भावार्थ—तन के भूषण, आँखों का काजल और पैरों का महावर, ये सब उसके लिए सोभा की सामग्री नही हैं, ये तो कहने मात्र के लिए शोभा के अंग समझे जाते हैं, (वह सहज ही ऐसी रूपवती है कि उसे इनकी आवश्यकता नहीं। ये वस्तुएँ उसकी सहज शोभा में लोप हो जाती हैं)।

अलंकार—मीलित।

दो०—पाय तरुनि कुच उच्च पद, चिरमि ठग्यो सब गाँव।
छुटे ठौर रहिहै वहै, जु है मोल छबि नाँव ॥१२९॥

शब्दार्थ—चिरमि = गुंजा, घुंघुची। ठग्यो = धोखा दे रक्खा है।

भावार्थ—हे गुंजा ! तूने स्त्री के ऊँचे कुचों पर स्थान पाकर सब गाँव को धोखे में डाल दिया है (नायिका के हृदय पर की गुंजमाला सब को रत्नमाला सी भासती है), पर जब तेरा स्थान छूटेगा (उतार डाली जायगी) तब तेरा मोल, तेरी छबि और तेरा नाम वही रह जायगा जो वास्तव में है।

अलंकार—उल्लास से परिपुष्ट अन्योक्ति (अप्रस्तुत प्रशंसा)।

उल्लास—(और वस्तु के गुणन ते और होत गुणवान)।

दो०—उर मानिक की उरबसी, डटत घटत दृग दाग।
झलकत बाहिर भरि मनो, तिय हिय को अनुराग ॥१३०॥

शब्दार्थ—उरबसी = चौकी (हमेल की)। डटत = देखते ही। घटत = कम हो जाता है। दृग दाग = आँखों की जलन। अनुराग = प्रेम।

(वचन)—सखी वचन नायक प्रति।

भावार्थ—उस लाड़िली के हृदय की माणिकजटित चौकी देखते ही आँखें ठंढी हो जाती हैं, ऐसा जान पड़ता है मानो तुम्हारा अनुराग जो उसके हृदय में भरा हुआ है वह बाहर होकर झलक रहा है।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—जरीकोर गोरे बदन, बरी खरी छबि देख।
लसति मनो बिजुरी किये, सारद ससि परिवेष ॥१३१॥

शब्दार्थ—जरीकोर=जरी की किनारी। बरी=प्रज्वलित। सारद ससि=शरदपूर्णिमा का चन्द्रमा। परिवेष=(सं०) चंद्रमा के इर्दगिर्द का मंडल जो वर्षा में कभी कभी दिखाई पड़ता है (जिसे साधारण लोग अथाई बैठना कहते हैं)।

(वचन)—सखी वचन नायक प्रति।

भावार्थ—उस लाड़िली के गोरे चेहरे पर, सारी में टँकी हुई जरी की किनारी से उसकी खरी छवि और भी प्रज्वलित हो उठी है। उसे तुम देखो। ऐसी जान पड़ती है मानो शरदपूर्णिमा के चन्द्रमा के चारों ओर बिजली ने मंडल (घेरा) बनाया है।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—देखत सोनजुही फिरति, सोनजुही से अंग।
दुति लपटन पट सेत हू, करत बनौटी रंग ॥१३२॥

शब्दार्थ—लपट=लौ। बनौटी=कपासी।

[विशेष]—नायिका सोनजुही की वाटीका में घुम रही है, सखी नायक को वहीं ले जाना चाहती है। सखी वचन नायक प्रति।

भावार्थ—वह सोनजुही के से अंगवाली (नायिका) सोनजुही की वाटिका देखती फिरती है। अपने शरीर की दुति की लपटों से सफेद सारी को भी कपासी रँग की बना रही है।

अलंकार—तद्गुण।

दो०—तीज परब सौतिन सजे, भूषन बसन सरीर।
सबै मरगजे मुँह करी, वहै मरगजे चीर ॥१३३॥

शब्दार्थ—तीज परब=तीज का त्योहार (अक्षय तृतीया वा हरतालिका तीज) मरगज=मलीन । मरगजेचीर=मलगजी सारी (मैलीसाड़ी) ।

भावार्थ—तीज के त्योहार में सब सौतों ने भूषण वस्त्रों से अपने अपने शरीर को सुसज्जित किया, मगर उस नायिका ने मल-गजी साड़ी ही पहन कर सबका मुख मलीन कर दिया अर्थात् अपनी स्वाभाविक शोभा से सबको मात कर दिया ।

[विशेष]—ईर्षा संचारी, विच्छित्ति हाव और वैवर्ण्य अनुभाव ।

अलंकार—(१) प्रथम असंगति (मलीन साड़ी नायिका ने पहनी और सौतें मलीन मुख हुईं । यथा:—कारण कहुँ कारज कहूँ देश काल को बीच) ।

(२) चौथी विभावना (सौति की मलगजी साड़ी सौति के मलिन मुख होने का कारण नहीं, सो हुआ) ।

दो०—पचरँग नद बेंदी बनी, उठी जागि मुख जोति ।
पहिरे चीर चुनौटिया, चटक चौगुनी होत ॥१३४॥

शब्दार्थ—चीर चुनौटिया=कई रंगों से रंगी हुई लहरियादार चूनरी । चटक=दमक ।

(वचन)—सखी वचन नायक प्रति ।

भावार्थ—पाँच रंग के नगों से जटित बेंदी जिस समय भाल पर लगाई गई, उस समय मुख की छबि जगमगा उठी । उस पर जब चुनवट की साड़ी पहनी जाती है, तब उससे भी चौगुनी दमक हो जाती है ।

अलंकार—अनुगुण-(पहिले को गुण आपनो बढ़े आन के संग) ।

दो०—बेंदी भाल तँबोल मुख, सीस सिलसिले बार ।
दृग आँजे राजै खरी, एही सहज सिंगार ॥१३५॥

शब्दार्थ—तँबोल=पान । सिलसिले=फुलेल से चिकनाये हुए । राजै खरी=अति शोभित होती है ।

(वचन)—सखी वचन नायिका प्रति—(अधिक बनाव सिंगार करने की जरूरत नहीं)।

भावार्थ—भाल पर बेंदी लगाये, मुख में पान खाये, सिर के बालों में फुलेल लगाये और आँखों में काजल लगाये हुए, केवल इन्हीं सहज सिंगारों से तू अत्यन्त शोभावती मालूम होती है (अधिक बनाव-सजाव करने की आवश्यकता नहीं है)।

[विशेष]—यदि सखी का वचन नायक-प्रति मानें तो उत्तरार्द्ध का यह अर्थ होगा कि "इन्हीं दो-चार मामूली सिंगारों से वह खड़ी-खड़ी शोभा दे रही है अर्थात् खड़ी तुम्हारी बाट जोहती है।" इस दोहा में विच्छित्ति हाव है।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

(छवि-वर्णन)

दो०—हौं रीझी, लखि रीझिहौ, छबिहिं छबीले लाल।
सोनजुही सी होति दुति, मिलति मालती माल ॥१३६॥

शब्दार्थ—छबीले = सुन्दर। मालती=एक सफेद पुष्प।

(वचन)—दूती-वचन नायक प्रति।

भावार्थ—हे छबीले लाल, उस नायिका की छबि देखकर मैं तो रीझ गई हूँ और तुम भी अवश्य रीझोगे। मालती की माला उसकी दुति से मिलकर सोनजुही की सी हो जाती है।

अलंकार—तद्गुण।

दो०—झीने पट में झिलमिली, झलकति ओप अपार।
सुरतरु की मनु सिन्धु में, लसत सपल्लव डार ॥१३७॥

शब्दार्थ—झिलमिली = कान में पहनने का जेवर जिसे पत्ता, पीपर-पत्ता वा झोटना भी कहते हैं। ओप = दमक। सुरतरु = कल्पवृक्ष। सपल्लव = पत्तों सहित।

भावार्थ—बारीक कपड़े के भीतर झिलमिली की अपार ज्योति झलक रही है। मानो समुद्र में पत्तों सहित कल्पवृक्ष की शाखा शोभा दे रही है।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—फिरि फिरि चित उतही रहत, टुटी लाज की लाव।
अंग अंग छवि झौंर में, भयो भौंर की नाव ॥१३८॥

शब्दार्थ—लाव = रस्सी, लहासी। झौंर = समूह, ढेर।

(वचन)—नायक वा परकीया नायिका का वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—हे सखी! मेरा चित्त फिर-फिर कर वहीं रहता है, उसकी लज्जा की रस्सी टूट चुकी है। अंगों के छवि-समूह में पड़कर मेरा चित्त भौंर की नाव हो रहा है।

अलंकार—रूपक।

दो०—केसरि कै सरि क्यों सकै, चंपक कितक अनूप।
गातरूप लखि जात दुरि, जातरूप को रूप ॥१३९॥

शब्दार्थ—सरि = बराबरी। कितक = कितना। जातरूप = सोना।

भावार्थ—केसर कैसे बराबरी कर सकती है, चंपा कितना सुन्दर होता है (अर्थात् कुछ भी नहीं), उसके शरीर की रूप-छटा देखकर सोने का रूप छिप जाता है (लज्जित होता है)।

अलंकार—चतुर्थ प्रतीप (अनआदर उपमेय ते, जब पावै उपमान)

दो०—वाहि लखे लोयन लगै, कौन जुवति की जोति।
जाके तन की छाँह ढिग, जोन्ह छाँह सी होति ॥१४०॥

शब्दार्थ—लोयन लगै = आँखों में जँचेगी। जोन्ह = चाँदनी।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—धर्मलुप्ता उपमा (जोन्ह छाँह सी होती है)।

दो०—कहि लहि कौन सकै दुरी, सोनजाय में जाय।
तन की सहज सुबासना, देती जो न बताय ॥१४१॥

शब्दार्थ—सोनजाय=सोनजुही (पीली चमेली)। सुवासना=सुगंध।

भावार्थ—जब वह (नायिका) पीली चमेली की क्यारी में जा छिपी थी तब, कहो, उसे कौन पा सकता था, यदि उसके शरीर की सहज सुगंध (जो कमल की सी है) न बता देती।

अलंकार—उन्मीलित।

दो०—हरि-छबि-जल जबतें परे, तबतें छिन बिछुरैं न।
भरत, ढरत, बूड़त, तिरत, रहँट-घरी लौं नैन ॥१४२॥

शब्दार्थ—भरत=आसुओं से भर जाते हैं। ढरत=आँसू गिरा देते हैं

[विशेष]—पूर्वानुराग में नायिका की दशा का वर्णन। सखी-प्रति सखी का वचन।

भावार्थ—कृष्ण की छबिरूपी जल में जबसे उसके (नायिका के) नेत्र पड़े हैं (अर्थात् जबसे कृष्ण की छबि देखी है), तब से जल से अलग नहीं होते। आँसू भरते और ढारते हैं, रहँट की घरियों की तरह उसके नेत्र सदा जल में ही डूबते उतराते रहते हैं (अर्थात् रोया करती है)।

अलंकार—समुच्चयोपमा।

दो०—रहि न सक्यो कसकरि रह्यो, बस कर लीन्हों मार।
भेदि दुसार कियो हियो, तन-दुति भेदीसार ॥१४३॥

शब्दार्थ—मार=काम। दुसार=(दो+शाल=दोनों ओर छेद किया हुआ) आर-पार छेद किया हुआ। भेदीसार=बरमा (बढ़ई का वह औज़ार जिससे वह काठ में छेद करता है)।

भावार्थ—खिचकर रुका तो, पर रह न सका, अंत में काम ने मेरे मन को वश में कर लिया (मैं आसक्त हुआ)। उसकी छबि बरमा है, उसी बरमा से उसने मेरे हृदय को छेद कर आर-पार कर दिया है।

अलंकार—रूपक है।

दो०—पहिरत ही गोरे गरे, यों दौरी दुति लाल।
मनो परसि पुलकित भई, मौलसिरी की माल ॥१४४॥

[विशेष]—नायक ने मौलसिरी की माला सखी द्वारा नायिका के पास भेजी है। सखी माला पहना कर आई है और नायक प्रति नायिका की दशा का वर्णन करती है। (इसमें हर्ष संचारी और रोमांच सात्विक भाव हैं)

भावार्थ—हे लाल, तुम्हारी भेजी हुई मौलसिरी की माला को गोरे गले में धारण करते ही उसके शरीर पर (हर्ष के कारण) ऐसी कान्ति छा गई कि मानो वह तुम्हींको स्पर्श करके (आलिंगन करके) रोमांचित हुई हो (अर्थात् तुम्हारी माला के स्पर्श को तुम्हारे ही स्पर्श के समान समझकर पुलकित हो गई।

अलंकार—असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा।

दो०—कहा कुमुद कह कौमुदी, कितक आरसी जोति।
जाकी उजराई लखे, आँखि ऊजरी होति ॥१४५॥

शब्दार्थ—कौमुदी=चाँदनी। उजराई=निर्मलता। ऊजरी=विमल

[विशेष]—कई एक प्रतियों में 'कुमुद' के स्थान पर 'कुसुम' पाठ है। परन्तु 'कुसुम' पीला वा लाल माना गया है और यहाँ श्वेतता और निर्मलता का वर्णन है। अतः 'कुमुद' ही होना चाहिये।

भावार्थ—सरल ही है।

अलंकार—पंचम प्रतीप।

दो०—कंचन तन घन बरनवर, रह्यो रंग मिलि रंग।
जानी जात सुबास ही, केसर लाई अङ्ग ॥१४६॥

शब्दार्थ—घन=घना। सुवास=(स्ववास) अपनी वास से अर्थात् केसर-की-सी गंध से (क्योंकि पद्मिनी नायिकाओं के शरीर से कमल की वास आती है)। लाई=लगाई हुई।

भावार्थ—कंचन ऐसे शरीर के घने और श्रेष्ठ रंग में केसर का रंग

मिल जाता है। अंग में लगी हुई केसर केवल अपनी गंध से ही जानी जाती है। (रंग से नहीं)।

अलंकार—उन्मीलित।

दो०—अङ्ग अङ्ग नग जगमगैं, दीप-सिखा-सी देह।
दिया बढ़ाये हू रहै, बड़ो उजेरो गेह ॥१४७॥

शब्दार्थ—दीप शिखा=चिराग की लौ। बढ़ाये हू = बुझाने पर भी।

(वचन)—सखी-वचन नायक प्रति। नायिका के रूप की प्रशंसा।

भावार्थ—उसके अङ्ग अङ्ग में आभूषणों के रत्न जगमगाते हैं, क्योंकि उसका शरीर दीपशिखा के समान है। अतः दिया बुझा देने पर भी घर में बहुत उजेला रहता है।

अलंकार—द्वितीय चरण में धर्मलुप्ता उपमा। पूर्ण दोहा में दूसरा 'पूर्वरूप' अलंकार है।

दो०—ह्वै कपूरमणिमय रही, मिलि तनदुति मुकुतालि।
छिन छिन खरी बिचच्छनौ, लखतिछ्वाय तिनु आलि ॥१४८॥

शब्दार्थ—कपूरमणि=कहरुवा (एक पदार्थ जो चमकीला और पीले रंग का होता है। यह तृण को आकर्षित करता है)। मुकुतालि= मोतियों की माला। खरी विचच्छन=बड़ी चतुरा। तिनु = तृण। आलि = (आली) सखी।

(वचन)—सखी वचन नायक-प्रति। नायिका के रंग की प्रशंसा।

भवार्थ—मोतियों की माला उसके शरीर की कान्ति से मिलकर कहरुवा की (पीत रंग की) माला-सी हो जाती है। तब बड़ी चतुरा सखी भी (अपना भ्रम निवारण करने क लिए) प्रतिक्षण उसमें तृण छुवा छुवाकर जाँचती है कि यह मोती की है वा कहरुवा की (यदि कहरुवा की होगी तो तिनका उसमें चिपक जायगा, मोती की होगी तो न चिपकेगा)।

अलंकार—तद्गुण और भ्रम।

दो०—खरी लसति गोरी गरे, धँसति पान की पीक।
मनो गुलूबँद लाल की, लाल लाल दुति लीक॥१४९॥

शब्दार्थ—गोरी=गौरांगी नायिका। पीक=पान का रस। गुलूबंद=गले में बाँधने का आभूषण विशेष, जिसे कंठी कहते हैं। लाल की=माणिक की। लीक=रेखा।

भावार्थ—उस गौरांगी नायिका के गले में धँसती हुई पान की पीक बड़ी शोभा देती है। (उस पीक की ललाई बाहर ऐसी झलकती है कि) उसकी द्युति की लाल-लाल लकीर ऐसी जान पड़ती है, मानो गले में माणिक की कंठी बँधी हो।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—बाल छबीली तियन में, बैठी आपु छिपाय।
अरगट ही फानूस सी, परगट परै लखाय॥१५०॥

शब्दार्थ—आपु छिपाय=अपने को छिपाकर (घूँघट में मुँह छिपाकर)। अरगट=[आड़+गात्र] परदा अर्थात् घूँघट। फानूस=काँच की हाँड़ी के अन्दर रक्खा हुआ दीपक। परगट=प्रत्यक्ष, भली प्रकार।

भावार्थ—वह छबीली नायिका बहुत सी स्त्रियों के मध्य में अपने चेहरे को घूँघट से छिपाकर बैठी, तौभी घूँघट के भीतर ही से उसकी छबि फानूस के अंदरवाले दीपक की तरह प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लगी।

अलंकार—पूर्णोपमा से पुष्ट विशेषोक्ति।

नोट—इस दोहे के अर्थ में अन्य टीकाकारों से हमारा मतभेद है। वे 'अरगट' का अर्थ 'अलग' लिखते हैं। समझदार पाठक जरा सोचे विचारेंगे तो हमारे अर्थ में विलक्षण चमत्कार दिखायी देगा।

दो०—दीठि न परत समान दुति, कनक कनकसे गात।
भूषन कर करकस लगत, परस पिछाने जात॥१५१॥

शब्दार्थ—कनक=सोना। करकस=कठोर। पिछाने जात=पहचाने जाते हैं।

भावार्थ—सोने-सरीखे शरीर में सोने के भूषण देख नहीं पड़ते, क्योंकि दोनों की एक सी दुति है। छूने से जब हाथ में कठोर लगते हैं, तब पहचाने जाते हैं कि ये भूषण हैं।

अलंकार—उन्मीलित।

दो०—करत मलिन आछी छबिहिं, हरत जु सहज बिकास।
अंगराग अंगन लग्यो, ज्यों आरसी उसास ॥१५२॥

शब्दार्थ—आछी = अच्छी। बिकास = चमक। अंगराग = केसर, चंदनादि का लेप। आरसी = दर्पण। उसास = मुख की भाफ।

(वचन)—सखी-वचन नायक-प्रति। नायिका की कान्ति की प्रशंसा।

भावार्थ—केसर, चंदन कस्तूरी इत्यादि का अंगलेप उसकी (नायिका की) छवि को मलिन करके स्वाभाविक कान्ति को नष्ट कर देता है, जैसे दर्पण पर मुख की भाप पड़ने से उसकी कान्ति मारी जाती है।

अलंकार—उदाहरण।

दो०—अंग अंग प्रतिबिंब परि, दरपन से सब गात।
दुहरे तिहरे चौहरे, भूपन जाने जात ॥१५३॥

शब्दार्थ—प्रतिबिंब = अक्स, छाया। गात = शरीर।

(वचन)—सखी-वचन नायक-प्रति। नायिका के शरीर की कान्ति की प्रशंसा।

भावार्थ—उस नायिका के सब अंग दर्पण के समान स्वच्छ और प्रकाशमान हैं, अतः एक एक भूषण, कई एक अंगों पर प्रतिबिंब पड़ने से, दोहरा तिहरा और चौहरा तक मालूम पड़ता है।

अलंकार—धर्मलुप्ता उपमा (दर्पन से गात)।

दो०—अंग अंग छबि की लपट, उपटति जाति अछेह।
खरी पातरीऊ तऊ, लगै भरी-सी देह ॥१५४॥

शब्दार्थ—लपट = प्रकाश, आभा। उपटति जात = उभरती जाती

है। अछेह=अनन्त, बहुत। खरीपातरी=अति पतली, कृशांगी।
भरी-सी=पीनांगी (मोटी ताजी)।

(वचन)—सखी-वचन नायक-प्रति।

भावार्थ—उस नायिका के प्रति अंग में छबि की आभा बहुत अधिक उभरती आती है (छवि के प्रकाश का भराव हो रहा है), इसी कारण अत्यंत पतली होने पर भी उसकी देह मोटी-ताजी ज्ञात पड़ती है।

अलंकार—(१) काव्यलिंग (२) तीसरी विभावना (३) अनुक्त-विषया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—रंच न लखियत पहिरिये, कंचन से तन बाल।
कुँभिलाने जानी परै, उर चंपे की माल॥१५५॥

(वचन) सखी-वचन नायक-प्रति।
शब्दार्थ तथा भावार्थ सरल हैं।
अलंकार—उन्मीलित।

(सुकुमारता-वर्णन)

दो०—भूषन भार सँभारिहै, क्यों यह तन सुकुमार।
सूधे पाय न परत धर, सोभा ही के भार॥ १५६॥

शब्दार्थ—धर=(धरा) पृथ्वी। भार=बोझा।
(वचन)—सखी-वचन नायिका-प्रति।
भावार्थ—हे ला[illegible] [illegible] सुकुमार शरीर भूषणों का भा[illegible]
सँभालेगा, जब शो[illegible] से तेरा पैर पृथ्वी पर[illegible]
पड़ता।

अलंकार—क[illegible]

दो०—न जक धरत हरि हिय धरत, नाजुक कमला बाल।
भजत भार-भय भीत ह्वै, घन चंदन बनमाल ॥१५७॥

[विशेष]—इस दोहे के अनेक अर्थ हो सकते हैं, कारण यह है कि 'जक' शब्द अनेकार्थवाची है और 'भजत' 'भार' 'घन' 'बन' शब्द भी द्व्यर्थक, त्र्यर्थक हैं। मुख्य अर्थ वही है जिसमें नायिका की उत्कृष्ट सुकुमारता प्रमाणित हो। अनेक अर्थ करना हमें पसन्द नहीं।

शब्दार्थ—जक = डर। भार = बोझा। घन = घनसार (कपूर)।

[अन्वय]—हरि (कृष्ण) नाजुक कमला (वत) बाल हिय धरत जक न धरत। भार-भय भीत ह्वै घन, चंदन (तथा) बनमाल (तें) भजत (भागत)।

भावार्थ—(सखी-वचन सखी-प्रति) हे सखी, देख, श्रीकृष्ण उस सुकुमार लक्ष्मी-सरीखी बाला को अपने हृदय में बसाने से जरा भी नहीं डरते (कि ऐसा करने से सुख और शोभा की सामग्री छूट जायगी), वरन् इस बात से डरकर कि ऐसा न हो कि हृदय में बसी हुई प्यारी पर बोझा पड़े वे (कृष्ण) कपूर, चंदनादि के लेप तथा बन-माला धारण करने से भागते हैं (नहीं धारण करते)

[विशेष]—नायक नायिका को इतनी सुकुमार समझता है कि हृदय से बसी हुई उसकी कल्पनामय मूर्ति पर चंदन मालादि का बोझ डालना उचित नहीं समझता। यह सुकुमारता की बहुत ऊँची कल्पना है। इस दोहे में 'कमला' शब्द कमाल कर रहा है। कमला = कमल से पैदा। कमल अति सुकुमार पुष्प है, तब कमला तो उससे कहीं अधिक सुकुमार होगी।

दो०—अरुन बरन तरुनी-चरन, अँगुरी अति सुकुमार।
चुवत सुरँग रँग सी मनो, चपि बिछुवन के भार ॥१५८॥

शब्दार्थ—अरुन = लाल। बरन = रंग। सुरँग रँग = लालरंग।

भावार्थ—नायिका के चरण के तलवे लाल हैं और अँगुलियाँ अति कोमल हैं। मानो बिछियों के भार से दबने के कारण उन कोमल अँगु-

लियों से लाल रंग निचुड़ता-सा है—(बिछियों के भार से दबना, और दबना भी इतना कि रंग निकल आवे सुकुमारता की पराकाष्ठा है)।

अलंकार—सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा।

दो०—छाले परिबे के डरनि, सकै न हाथ छुवाय।
झिझकति हिये गुलाब के, झँवा झँवावत पाय ॥१५९॥

शब्दार्थ—छाला = फफोला। झिझिकना = डरना। झँवा = (झाँवाँ) मिट्टी की बनी हुई एक वस्तु विशेष, जिससे, स्त्रियाँ पैर के तलवे साफ करती हैं। झँवाना = झाँवाँ से साफ कराना (दासी द्वारा)।

भावार्थ—(सखी-वचन नायक-प्रति, सुकुमारता की प्रशंसा) वह नायिका इतनी सुकुमार है कि उसके पैर धोते समय नाइन (वा दासी) फफोले पड़ जाने के डर से अपना हाथ, तलवों में नहीं छुवा सकती। (हाथ से मलकर तलवा धोने की तो बात क्या) गुलाब के झाँवाँ से पैर का तलवा रगड़वाते समय वह हृदय में शंकित होती है (कि कहीं क्षत न हो जायँ)

[विशेष]—जिस नायिका के पैर के तलवे साफ करने के लिये गुलाबपुष्प झाँवाँ का काम दे और नायिका उसकी कठोरता से भी शंकित हो, उसकी सुकुमारता कैसी होगी यह कल्पना की बात है।

अलंकार = सम्बन्धातिशयोक्ति।

दो०—मैं बरजी कै बार तू, इत कत लेति करौंट।
पँखुरी लगे गुलाब की, परिहै गात खरौंट ॥१६०॥

शब्दार्थ—बरजी=मना किया। करौंट=करवट। खरौंट=खरोंचा। इत = इस ओर, मेरी ओर।

[विशेष]—नायक नायिका एक सेज पर हैं। नायिका ने मान करके नायक की ओर से मुँह फेर कर दूसरी ओर को करवट ली। तब अंतरंग सखी भय दिखाकर मान छोड़कर नायिका का मुख पुनः नायक की ओर कराना चाहती है।

भावार्थ—मैं कितनी वार मना कर चुकी, तू मानती नहीं। तू इधर

को (मेरी ओर को) क्यों करवट लेती है। इधर को करवट लेने से गुलाब की पँखुड़ियाँ शरीर में छू जायँगी तो तेरे सुकुमार शरीर में खरोंचे पड़ जायेंगे।

अलंकार—संबन्धातिशयोक्ति।

(रूप-वर्णन)

दो०—कन देबो सौंप्यो ससुर, बहू थुरहथी जानि।
रूप रहँचटें लगि लग्यो, माँगन सब जग आनि॥१६१॥

शब्दार्थ—कन (कण) = भिक्षा। थुरहथी = छोटे हाथोंवाली। रहँचट = चाह, लालच। लगि = लग कर।

(वचन)—कवि की उक्ति।

भावार्थ—बहू को छोटे हाथोंवाली जानकर ससुर ने भिक्षा देने का काम सौंपा (यह समझकर कि कम अन्न खर्च होगा), परन्तु उसके रूप के दर्शन के लालच में पड़कर सारा संसार ही भिक्षुक बनकर उसके द्वार पर भिक्षा माँगने के लिये आने लगा।

अलंकार—विषादन।

दो०—त्यौं त्यौं प्यासेई रहत, ज्यौं ज्यौं पियत अघाय।
'सगुन' सलोने रूप की, जु न चखतृषा बुझाय॥१६२॥

शब्दार्थ—अघाय = भरपेट (इच्छा भर)। सगुन = अपने गुण का पूरा। सलोना = (१) नमकीन (२) सुन्दर। जु = जो। चखतृषा = आँखों की प्यास (दर्शनेच्छा।

भावार्थ—(नायक-वचन नायिका-प्रति , हे प्यारी, मेरे नेत्र ज्यों-ज्यों तेरे रूप को अघा-अघाकर पीते हैं (यथारुचि देखते हैं) त्यों-त्यों प्यासे ही रहते हैं (दर्शनों की इच्छा बनी ही रहती है)। तेरे सलोने (सुन्दर) रूप की प्यास (चखतृषा = दर्शनेच्छा) जो नहीं बुझती,

इससे स्पष्ट प्रमाणित है कि तेरा रूप सगुण है अर्थात् अपने 'सलोनेपन' में सच्चा है।

[विशेष]—'सलोना' का अर्थ 'लवणयुक्त' भी होता है। लवण-युक्त (खारी) पानी पीने से प्यास नहीं बुझती। (वास्तव में 'रूप' की यही परिभाषा है—"क्षणेक्षणे यन्नवतामुपैति")।

अलंकार—विशेषोक्ति।

दो०—रूप-सुधा-आसव छक्यौ, आसव पियत बनै न।
प्याले ओठ प्रिया-बदन, रह्यो लगाये नैन ॥१६३॥

शब्दार्थ—रूप-सुधा-आसव=अमृत-समान मीठी रूप की मदिरा। आसव=मदिरा।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति (मद्यपान समय की दशा का वर्णन)।

भावार्थ सुधा-समान शीतल मधुर और आनन्ददायिनी रूप-मदिरा में छके हुए नायक से मामूली मदिरा (जो तीक्ष्ण और दाहक सी होती है) पीते नहीं बनी, (अर्थात् प्यारी का रूप देखकर उसे स्तंभ भाव हुआ और वह मदिरा न पी सका)। वह प्याले को ओठ में और नेत्रों को प्रिया के मुख में लगाये हुए ज्यों का त्यों रह गया।

[विशेष]—यहाँ अभिलाप संचारी, स्तम्भ सात्विक भाव है। नायक नायिका प्रत्यक्ष आलंबन, रति स्थायी है। शृङ्गार की पूर्ण सामग्री मौजूद है।

अलंकार—पहली तुल्ययोगिता।

दो०—दुसह सौति सालै सुहिय, गनति न नाह-बियाह।
धरे रूप गुन को गरब, फिरै अछेह उछाह ॥१६४॥

शब्दार्थ—सालै=दुख देगी। गनति न=ध्यान में नहीं लाती। अछेह=अनन्त, बहुत। उछाह=आनन्द।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति। नायक के दूसरे विवाह पर नायिका की बेपरवाही का वर्णन। नायिका रूप-गुणगर्विता है।

भावार्थ—सवति सदा दुःसह होती है, हृदय में सालती है, परन्तु यह नायिका अपने रूप और गुण का गर्व किये हुए बड़े आनन्द से फिरती है और नायक के दूसरे विवाह की कुछ परवाह नहीं करती (क्योंकि यह जानती है कि मैं इतनी रूपवती और गुणवती हूँ कि कोई दूसरी स्त्री मेरे मुकाबिले में पति को पसन्द ही न आवेगी)।

अलंकार—तीसरी विभावना।

दो०—लिखन बैठि जाकी सबिहिं, गहि गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर ॥१६५॥

शब्दार्थ—सबी (फा० शबीह)=चित्र, तसवीर। गरूर=मगरूर, घमण्डी। चितेरा=चित्रकार। कूर=बेवकूफ।

(वचन)—सखी-वचन नायक-प्रति। नायिका के रूप की प्रशंसा।

भावार्थ—(मैं उस नायिका से आपका प्रेम कराना चाहती हूँ) जिसकी तसवीर बनाने के लिये अहंकार युक्त हो हो, चित्रित करने बैठकर संसार के कितने मगरूर चित्रकार बेवकूफ नहीं बने। (बहुत चित्रकार बेवकूफ बन चुके हैं)।

[विशेष]–चित्रकारों से चित्र न बन सकने का कारण नायिका का रूपाधिक्य है। उसका रूप देखकर चित्रकारों में से किसी को स्तंभ होता, तो हाथ ही रुक जाता; किसी को कंप होता, तो चित्ररेखायें अंड-बंड हो जातीं; किसी को स्वेद होता तो चित्र के रंगों पर टपककर उन्हें फीका कर देता इत्यादि। अथवा वयःसन्धि मुग्धा नायिका है, अतः उसका रूप प्रतिक्षण बदलता और बढ़ता है। चित्र बनाकर सर्वतोभाव रूप ठीक करके पुनः असली नायिका से मिलान करने में जितना समय लगता है, उतने ही समय में (दो चार मिनट में) चित्र और असली नायिका के रूपछटा, यौवनोत्थान, प्रत्यंगपुष्टि इत्यादि में भेद पड़ जाता है। अतः चित्र ठीक नहीं होता।

अलंकार—वक्रोक्ति तथा विशेषोक्ति (चतुर चितेरे होने पर भी चित्र न बना)।

सो०—तो तन अवधि अनूप, रूप लग्यो सब जगत को।
मो दृग लागे रूप, दृगन लगी अति चटपटी ॥१६६॥

शब्दार्थ—अवधि अनूप=अनूपता की सीमा। लग्यो=खर्च हुआ है, लगा है। लागे=असक्त हैं। चटपटी=आकुलता, बेचैनी।

(वचन)—नायक-वचन नायिका-प्रति।

भावार्थ—हे प्रिया, तेरा तन रूपकी अनूपता की सीमा है (अर्थात् अनुपम रूप की हद है, इससे आगे रूप को अनूपता है ही नहीं)। तेरे तन के बनाने में ब्रह्मा ने संसार भर का रूप लगा दिया है (खर्च कर डाला है)। अतः मेरे नेत्र तेरे रुप पर लगे हैं (आसक्त हुए हैं) और बेचैनी ने आँखों में डेरा डाला है।

[विशेष]—इस दोहे में "लगना" क्रिया तीन बार आई है! तीनों जगह अर्थ भिन्न है।

अलंकार—माला दीपक।

(हाव-वर्णन)

दो०—त्रिबली नाभि दिखाय कै, सिर ढँकि सकुचि समाहि।
अली अली की ओट ह्वै, चली भली बिधि चाहि ॥१६७॥

शब्दार्थ—त्रिबली=नाभि के ऊपर पड़नेवाली तीन रेखायें, जिन्हें कहीं कहीं 'लोट' भी कहते हैं। सकुच समाहि=संकोच में समाकर (लज्जित होकर)। चाहि=देखकर।

(वचन)—सखी का वचन सखीप्रति। नायिका की दशा का वर्णन।

भावार्थ—त्रिबली सहित नाभी को दिखलाकर, फिर बनावटी लज्जा में समाकर, सिर को ढँककर, वह अली (नायिका) सखी की ओट में होकर नायक को भली प्रकार देखकर चल दी।

(हाव की परिभाषा)—

होहि जो काम-विकार तें, दम्पति के तन आय।
चेष्टा त्रिविध प्रकार की, ते कहिये सब हाय॥

अलंकार—अनुप्रास और स्वभावोक्ति।

दो०—देख्यो अनदेख्यो कियो, अँग अँग सबै दिखाय।
पैठति-सी तन में सकुचि, बैठी चितहिं लजाय॥१६८॥

भावार्थ—नायक को देखकर भी अनदेखा-सा करके, विविध चेष्टाओं द्वारा अपने सब अंग उसे दिखा दिये, फिर तन में पैठती-सी (लज्जा से सिकुड़ती हुई) चित्त में लज्जित होकर बैठ गई।

अलंकार—स्वभावोक्ति। चेष्टाओं के मिस से नायक के चित्त में अपना अनुराग पैदा कर देना कार्य-साधन हुआ, अतः पर्यायोक्ति भी।

दो०—बिहँसि बुलाय बिलोकि उत, प्रौढ़ तिया रसघूमि।
पुलकि पसीजति पूत कों, पिय चूम्यो मुख चूमि॥१६९॥

शब्दार्थ—प्रौढ़=प्रौढ़ा (पूर्ण युवती)। रसघूमि=प्रेम में मस्त होकर। उत=नायक की ओर।

भावार्थ—(सखी-वचन सखी-प्रति) वह प्रौढ़ा (मदान्धा प्रौढ़ा) अनुराग में मस्त होकर, हँसकर अपने निकट बुलाकर और नायक की ओर देखकर, नायक का चूमा हुआ सवतिपुत्र का मुख चूमकर पुलकती और पसीजती है।

[विशेष]—बिहँसना और नायक की ओर देखना कायिक अनुभाव; पुलकना, पसीजना, सात्विक भाव; हर्ष संचारी भाव; तिय, पिय आलंबन विभाव; पुत्र उद्दीपन विभाव; रसघूमि स्थायी भाव; स्पष्ट हैं, अतः इस दोहे में शृंगार रस की सामग्री लबालब भरी है।

अलंकार—दूसरी असंगति (और ठौर करनीय जो, करै और ही ठौर) चूमना चाहिये था पति का मुख, सो उस मुख से स्पर्शित पुत्र का मुख चूमकर उतना ही आनन्द माना।

दो०—रहौ, गुही बेनी, लख्यो, गुहिबे को त्यौनार।
लागे नीर चुचान ये, नीठि सुखाये बार ॥१७०॥

शब्दार्थ—रहौ = ठहरो। गुही बेनी = तुम बेणी गूँथ चुके (तुमसे न गुही जायगी)। त्यौनार = ढंग, चतुराई। चुचान = चुचुआना। नीठि = मुशकिल से।

(वचन)—स्वाधीनपतिका नायिका का वचन नायक प्रति-(नायक वेणी गूँथ रहा है)।

भावार्थ—ठहरो (रहने दो) आप वेणी गूँथ चुके (अर्थात् तुमसे वेणी न गुही जायगी), तुम्हारे गूँथने का ढंग देख लिया। जिन बालों को मैंने मुशकिल से सुखाया था उनमें पानी चुचुआने लगा।

[विशेष]—स्पर्श से दम्पति को स्वेद सात्विक भाव हुआ है। गर्व संचारी भाव है।

अलंकार—पंचम विभावना-(सूखे बालों से पानी चुचुआने लगा) "वर्णत हेतु विरुद्ध ते उपजत है जहँ काज"। व्याजोक्ति।

(स्वकीया)

दो०—सेद सलिल रोमांच कुस, गहि दुलही अरु नाथ।
हियो दियो सँग हाथ के, हथलेवा ही हाथ ॥१७१॥

शब्दार्थ—स्वेद = पसीना। सलिल = पानी। नाथ = पति। हथलेवा = विवाह समय का पाणिग्रहण। सँग हाथ के = अपने हाथ के साथ। हाथ=दूसरे के हाथ में।

[विशेष]—विवाह के समय नायक नायिका दोनों को स्वेद और रोमांच भाव हुए हैं।

भावार्थ—पसीने का पानी और उठे हुए रोंगटों के कुश लेकर वर वधू दोनों ने पाणिग्रहण के समय अपने हाथ के साथ ही दूसरे के हाथ में हृदय भी संकल्प कर दिया।

[विशेष]—हियो दियो स्थायी, दुलही और नाथ आलंबन, स्वेद और रोमांच सात्विक भाव (अनुभाव), हर्ष संचारी अस्तु शृङ्गार रस की भरपूर सामग्री मौजूद है।

अलंकार—रूपक।

दो०—मानहु मुख दिखरावनी, दुलहिनि करि अनुराग।
सासु सदन मन ललन हू, सौतिन दियो सोहाग॥१७२॥

शब्दार्थ—मुख दिखरावनी = वधू जब पतिगृह आती है तब एक रीति होती है। सब लोग उसका मुँह देखते हैं और उसे कुछ भेंट देते हैं। ललन = नायक। सौतिन = सवतें (सपत्नियाँ)। सोहाग = (सौभाग्य) नायक का प्रेम।

भावार्थ—मानो मुख दिखरावनी की रीति में नववधू पर प्रेम कर के सास ने घर, नायक के निज मन और सौतियों ने अपना सोहाग उसे दे दिया।

अलंकार—सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा। तुल्ययोगिता।

(नवोढ़ा)

दो०—निरखि नवोढ़ा नारि तन, छुटत लरिकई लेस।
भौ प्यारो पीतम तियन, मनौं चलत परदेस॥१७३॥

शब्दार्थ—नवोढ़ा = नववयस्का, नवयुवती। लेस = संबंध। भौ = हुआ। पीतम = नायक। तियन = सपत्नियों को।

भावार्थ—नववयस्का नायिका के शरीर से लड़कपन का अवशिष्ट भाग जाते हुए देखकर अन्य सपत्नियों के चित्त में नायक इतना प्यारा हो गया मानो वह विदेश-गमन किया चाहता है (इसमें शंका संचारी भाव है)।

अलंकार—हेतूत्प्रेक्षा।

(विश्रब्ध नवोढ़ा-वर्णन)

दो०—ढीठो दै बोलति हँसति, प्रौढ़-बिलास अपौढ़।
त्यौं त्यौं चलत न पिय नयन, छकये छकी नवोढ़ ॥१७४॥

शब्दार्थ—ढीठो दै=ढिठाई करके। प्रौढ़-बिलास=प्रौढ़ा के विलास की-सी बातें। अपौढ़=जो पूर्ण वयस्का नहीं है, नवोढ़ा। छकये=मतवाले कर दिये हैं। छकी नवोढ़=मदमस्त नवोढ़ा नायिका।

(वचन)—सखी वचन सखी प्रति।

भावार्थ—ज्यों ज्यों वह अपौढ़ (नवोढ़ा) नायिका ढिठाई करके हँसती है और नायक से प्रौढ़ा के विलास की-सी बातें करती है, त्यों-त्यों नायक के नेत्र उसकी ओर से चलायमान नहीं होते मानो उस मदमस्त नवोढ़ा ने नायक के नेत्रों को मद से छका दिया है।

[विशेष]—स्तंभ भाव, विलास हाव, हर्ष संचारी।

अलंकार—गम्योत्प्रेक्षा।

(परकीया)

दो०—सनि कज्जल चख झख लगन, उपज्यो सुदिन सनेह।
क्यौं न नृपति ह्वै भोगवै, लहि सुदेस सब देह ॥१७५॥

शब्दार्थ—सनि=(शनि) शनिश्चर ग्रह। चख=(चक्षु) नेत्र। झख लगन=मीनराशि। सुदिन=अच्छी साइत में। भोगवै=भोग करते हो। सुदेस=(१) सुंदर, (२) सुंदर देश।

[विशेष]—ज्योतिष शास्त्रानुसार मीन के शनिश्चर यदि दशम स्थान में पड़ें तो राज्य योग होता है।

(वचन)—दूती वचन नायिका प्रति। संघट्टन उद्देश्य।

भावार्थ—तेरे नेत्र रूपी मीन लग्न में कज्जल रूपी शनि पड़ा ही हैं

और शुभ साइत में नायक से स्नेह पैदा ही हो गया है, तो अब समस्त देह रूपी सुन्दर देश को पाकर राजा की तरह क्यों नहीं भोगती।

अलंकार—सम अभेद रूपक।

दो०—चितई ललचौहैं चखनि, डटि घूँघट पट माहँ।
छल सों चली छुवाय कै, छिनक छबीली छाहँ ॥१७६॥

शब्दार्थ—ललचौहैं = लालच भरे। डटि = खूब अच्छी तरह से।

(वचन)—नायक वचन सखी प्रति—नायिका क्रिया-विदग्धा।

भावार्थ—(हे सखी वह नायिका बड़ी चतुरा है) पहले तो खूब अच्छी तरह से लालच भरे नेत्रों से उसने मुझे घूँघट के भीतर ही से देखा और फिर बड़े छल से एक क्षणमात्र के लिये मेरी छाया से अपनी छाया को छुला कर चली गई (यह इशारा कर गई कि छाया की तरह आपका अंगस्पर्श चाहती हूँ)।

अलंकार—युक्ति।

(अनुराग वर्णन)

दो०—कीनें हूँ कोटिन जतन, अब कहि काढ़ै कौन।
भो मन मोहन रूप मिलि, पानी में को लौन ॥१७७॥

शब्दार्थ—कहि = कहो। काढ़ै = निकालै।

(वचन)—नायिका वचन सखी प्रति।

भावार्थ—करोड़ यत्न करने पर भी, कहो, अब कौन उसे निकाल सकता है। श्रीकृष्ण के रूप में मिलकर अब तो मेरा मन पानी का नमक हो गया (अर्थात् जैसे पानी में घुला हुआ नमक निकल नहीं सकता, इसी प्रकार मन भी नहीं निकल सकता)।

अलंकार—दृष्टान्त।

दो०—नेह न नैननि को कछू, उपजी बड़ी बलाय।
नीर भरे नित प्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाय ॥१७८॥

शब्दार्थ—नेह = प्रेम। बलाय = रोग।
(वचन)—नायिका वचन सखी प्रति।
[विशेष]—वितर्क संचारी भाव है।
भावार्थ—सरल है।
अलंकार—विशेषोक्ति से परिपुष्ट हेत्वपह्नुति।

दो०—छुटा छबीले लाल को, नवल नेह लहि नारि।
चूमति चाहति लाय उर, पहिरति धरति उतारि ॥१७९॥

शब्दार्थ—नवलनेह=नवीन प्रेम में (प्रेमारम्भ में)। लहि=पाकर। चाहति = देखती है।
भावार्थ—सरल है। (इसमें परकीया प्रेमगर्विता नायिका है)।
(वचन) – सखी का सखी प्रति—(नायिका की दशा का वर्णन)।
[विशेष]—चूमना और पहिरना अनुभाव। लाल और नारि आलंबन। उतारि धरति से शंका संचारी भाव। रति स्थायी। शृङ्गार रस की पूर्ण सामग्री।
अलंकार—स्वभावोक्ति अथवा कारक दीपक।

दो०—थाकी जतन अनेक करि, नेकु न छाँड़ति गैल।
करी खरी दुबरी सु लगि, तेरी चाह चुरैल ॥१८०॥

(वचन)—नायिका की दूती का वचन नायक प्रति। संघट्टन उद्देश्य।
भावार्थ—मैं अनेक यत्न करके थक गई मगर तेरी चाह उसकी राह को तनक भी नहीं छोड़ती (अर्थात् साथ ही लगी फिरती है)। तेरी चाह रूपी चुड़ैल ने उसको लगकर उसे अत्यन्त दुबली बना डाला है।
अलंकार— रूपक।

(प्रत्यक्ष दर्शन)

दो०—उन हरकी हँसिकै इतै, इन सौंपी मुसकाय।
नैन मिलत मन मिलि गये, दोउ मिलवत गाय ॥१८१॥

[विशेष]—श्रीकृष्ण गोधन लिये रहावन में हैं। राधिकाजी अपनी गाय रहावन में छोड़ने गई हैं। उस समय का दृश्य इस दोहा में वर्णित है।

(वचन)—सखी प्रति सखी वचन—नायिका के हृदय में अनुराग उत्पन्न करानेवाली घटना का वर्णन।

शब्दार्थ—उन=श्रीकृष्ण (नायक)। हरकी=हटकी, रहावन में मिलाने से रोका। इतै=इस ओर। इन=श्रीराधिकाजी। सौंपी=सिपुर्द की (चरा लाने के लिये)। मन मिलि गये दोऊ=दोनों के चित्त में परस्पर अनुराग पैदा हो गया। गाय मिलवत=गाय को रहावन में छोड़ते समय।

भावार्थ—उन्होंने हँसकर राधिकाजी की गाय को रहावन में मिलाने से रोका (यह हमारी गाय नहीं है, हमारी रहावन में क्यों मिलाती हो), इधर इन्होंने (राधिका ने) मुसकुरा कर गाय उन्हें सौंपी (यह गाय हमारी है, तुम चरा लाओ, हम चराई देंगी)। इस प्रकार नेत्र मिलते ही इस गो-सम्मिलनी में दोनों के मन भी मिल गये (प्रेम पैदा हो गया)।

अलंकार—चपलातिशयोक्ति—नैन मिलते ही मन मिल गया।

दो०—फेरु कछुक करि पौंरि तें, फिरि चितई मुसुकयाय।
आई जामन लेन तिय, नेहै गई जमाय ॥१८२॥

शब्दार्थ—फेरु=मिस, बहाना। पौंरि=बरोठा, दहलीज। जामन=वह थोड़ा सा खट्टा दही, जिसे दूध में डालकर दही जमाया जाता है।

(वचन)—नायक वचन सखी वा दूती प्रति।

भावार्थ—कुछ मिस करके बरोठे से लौटकर मुसकुराकर मेरी ओर

देखा। वह आई तो थी जामन लेने, परन्तु इस चेष्टा से मेरे चित्त में अपना प्रेम स्थापित कर गई।

अलंकार—पर्यायोक्ति (मिसकरि कार्य साधन)। (अथवा) परिवृत (जामन ले गई, नेह दे गई)।

दो०—या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों ज्यों बूड़ै श्याम रँग, त्यौं त्यौं उज्जल होय ॥१८३॥

शब्दार्थ—अनुरागी = प्रेमी। गति = दशा। श्याम रंग=(१) काला रंग (२) कृष्ण प्रेम। उज्जल = (१) निर्मल, स्वच्छ (२) शृङ्गारमय, प्रेममय।

[विशेष]—इस दोहे का अर्थ शृङ्गार के अलावा शान्त रस में भी लगता है।

शान्त का भावार्थ—इस अनुरागी चित्त की दशा को कोई समझता नहीं। यह ज्यों ज्यों कृष्ण के रंग में डूबता है (उनके श्याम रूप का ध्यान करता है) त्यों-त्यों निर्मल होता है।

शृङ्गार का भावार्थ—(नायिका-वचन सखी-प्रति) हे सखी इस मेरे अनुरागी चित्त की दशा कोई समझता नहीं। ज्यों-ज्यों यह चित्त कृष्ण के प्रेम में लीन होता है त्यों-त्यों (व्याकुल न होकर) अधिकाधिक प्रेम-मग्न होता जाता है।

अलंकार—विषम (दूसरा)—कारण औरै रंग को, कारज औरै रंग।

दो०—होमति सुख करि कामना, तुमहिं मिलन की लाल।
ज्वालमुखी सी जरति लखि, लगनि अगनि की ज्वाल॥१८४॥

शब्दार्थ—होमति=हवन करती है, आग में झोंकती है (त्यागती है)। कामना = अभिलाषा। ज्वालमुखी = ज्वालामुखी पर्वत। लखि= चलकर देख लो। लगनि = लगन (अनुराग)। अगनि = अग्नि। ज्वाल = लपट।

(वचन)—दूती वचन नायक प्रति। नायिका का विरह निवेदन। संघट्टन उद्देश्य।

भावार्थ—हे लाल तुमसे मिलने की अभिलाषा में वह नायिका अपना सब सुख (सुख की सामग्री) हवन में छोड़ती है (त्याग किये है)। चलकर देख लो वह प्रेमाग्नि की ज्वाला में ज्वालामुखी सी जलती है।

[अथवा]—तुम्हारे अनुराग की अग्नि की ज्वाला को ज्वाला-मुखी पर्वत के समान जलते देखकर, (अर्थात् तुम्हारा प्रचंड अनुराग देखकर), हे लाल, वह भी तुमसे मिलने की अभिलाषा में अपने सब सुखों का हवन कर रही है (जैसे तुम उसे चाहते हो वैसे ही वह तुम्हें चाहती है, तुम्हारे लिये सर्वस्व त्यागने को तैयार है)।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—मैं हो जान्यो लोयननि, जुरत बाढ़िहै जोति।
कौ हो जानत डीठि को, डीठि किरकिटी होति ॥१८५॥

शब्दार्थ—मैं हो जान्यो = मैं जानती थी। लोयननि = नेत्रों। को हो जानत = कौन जानता था। किरकिटी = आँख में पड़ा हुआ तृण या रजकण जिससे आँख को कष्ट हो।

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—मैं तो जानती थी कि आँखों के मिलने से (प्रेम हो जाने से) नेत्रों की जोति बढ़ेगी (सुख होगा)। कौन जानता था कि दृष्टि के लिये दृष्टि ही किरकिटी (दुखदायिनी वस्तु) हो जाती है।

अलंकार—विषम (तीसरा)—और भलो उद्यम किये, होत बुरो फल आय।

दो०—जो न जुगुति पिय मिलन की, धूरि मुकुति मुख दीन।
जो लहिये सँग सजन तौ, धरक नरक हू कीन ॥१८६॥

शब्दार्थ—जुगुति = उपाय। धूरि मुकुति मुख दीन = किसी के मुख में धूल देना, तुच्छ समझना। सजन = प्रियतम (प्रेमपात्र)। धरक = (धड़क) डर, भय।

(वचन)—नायिका-वचन प्रिय सखी-प्रति।

भावार्थ—हे सखी, यदि मोक्ष में प्रियतम से मिलने का उपाय न हो तो ऐसी मुक्ति के मुख में धूल डालनी चाहिये (तुच्छ समझना चाहिये) और यदि नरक में अपने प्रियतम का संग मिलता हो तो ऐसे नरक का भी भय न करना चाहिये।

अलंकार—काव्यलिंग से परिपुष्ट अनुज्ञा।

दो०—मोहू सों तजि मोह दृग, चले लागि वहि गैल।
छिनक छवाय छवि गुरु-डरी, छले छबीले छैल ॥१८७॥

शब्दार्थ—मोह=ममता। गुरुडरी=गुड़ की डली।

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति। नायिका परकीया। पूर्वानुराग दशा।

भावार्थ—हे सखी, ये मेरे नेत्र मुझसे भी ममता छोड़कर उसी गली में चल पड़े हैं (सदा उसी मार्ग में चक्कर लगाया करते हैं, जिस मार्ग से नायक आता जाता है)। उस छबीले छैल ने इन्हें एक क्षण मात्र के खाने योग्य छबि-रूपी गुड़ की डली देकर छल लिया है।

[विशेष]—ठग लोग छोटे बच्चों को गुड़ की कोई मिठाई दे देकर भोराकर अपने साथ ले जाते हैं और उनका जेवर उतार कर उन्हें मार डालते हैं। इसी घटना का रूपक इस दोहा में वर्णित है।

अलंकार—रूपक।

दो०—को जानै ह्वै है कहा, जग उपजी अति आगि।
मन लागै नैनन लगे, चलै न मग लग लागि ॥१८८॥

शब्दार्थ—आगि=(अग्नि)। अति आगि=विलक्षण प्रकार की अग्नि। चलै न मग लग लागि=उस रास्ते के निकट होकर भी मत चलना।

(वचन)—सखी-वचन नायिका-प्रति। शिक्षण उद्देश्य।

भावार्थ—हे लाड़िली, संसार में विलक्षण अग्नि पैदा हुई है, न जाने क्या होनेवाला है। वह अग्नि ऐसी है कि आँखों में छू जाने

से मन में लग जाती है, अतः तुझे शिक्षा देती हूँ कि तू उस रास्ते के निकट होकर मत चलना।

अलंकार—असंगति (मन लागै नैनन लगे)।

दो०—तजत अठान न हठ पर्‍यौ, सठमति आठौ जाम।
भयो बाम वा बाम को, रहै काम बेकाम ॥१८९॥

शब्दार्थ—अठान = अनुचित कार्य। सठमति = मूर्ख। आठौजाम = रातो दिन। बाम = प्रतिकूल। बेकाम = व्यर्थ।

(वचन)—दूती-वचन नायक-प्रति। विरह निवेदन।

भावार्थ—काम व्यर्थ ही उस नायिका पर रातो दिन क्रुद्ध हुआ रहता है, ऐसा शठमति है कि ज़िद्द पकड़ गया है, यह अनुचित कार्य छोड़ता ही नहीं—(वीर को न चाहिये कि वह स्त्रियों को सतावै)।

अलंकार—यमक।

दो०—लई सौंह सी सुनन की, तजि मुरली धुनि आन।
किये रहति रति राति दिन, कानन लाये कान ॥१९०॥

शब्दार्थ—सौंह = शपथ। आन = अन्य। रति = रुचि। लाये = लगाये हुए।

(वचन)—नायिका की दशा। सखी-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—उसने तो मुरली की ध्वनि छोड़कर और बात (शिक्षादि) सुनने की मानो शपथ सी ली है (कि सुनूँगी नहीं)। वन की ओर कान लगाये रात दिन मुरली ही की ध्वनि सुनने की रुचि रखती है।

अलंकार—गम्योत्प्रेक्षा।

दो०—भृकुटी मटकनि पीत पट, चटक लटकती चाल।
चल चख चितवनि चोरि चित, लियो बिहारीलाल ॥१९१॥

शब्दार्थ—चटक = चमक। चल चख = चंचल नेत्र।

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—हे सखी, श्रीकृष्ण ने भौंहों की मटक, पीताम्बर की चमक, लटकती चाल और चंचल नेत्रों की चितवन से चित्त चुरा लिया है (उनकी इन चेष्टाओं पर मैं मोहित हो गई हूँ)।

अलंकार—समुच्चय (द्वितीय)—एक काज के करन को हेतु जु होयँ अनेक।

दो०—दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गाँठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति ॥१९२॥

शब्दार्थ—टूटत कुटुम=कुल-मर्यादा छूटती है, कुल से सम्बन्ध टूट जाता है। गाँठ=द्वेष। दुरजन=दुष्टजन। दई=हे ईश्वर। नई=अद्भुत, अनोखी।

(वचन)—नायिका-वचन स्वगत। वितर्क संचारी।

भावार्थ—हे ईश्वर प्रेम की यह कैसी अनोखी रीति है कि उलझती तो हैं आँखें और टूटता है कुटुम्ब ; प्रीति जुड़ती है चतुरों के चित्त में और गाँठ पड़ती है दुर्जनों के हृदय में।

[विशेष]—जो चीज उलझती है वही टूटती है, जो टूटती है वही जुड़ती है, जो जुड़ती है उसी में गाँठ पड़ती है, परन्तु यहाँ विलक्षणता है। यहाँ अद्भुत रस है, शृङ्गार उसका सहायक है।

अलंकार—प्रथम असङ्गति।

दो०—चलत घैरु घर घर तऊ, घरी न घर ठहराय।
समुझि वहै घर को चलै, भूलि वही घर जाय ॥१९३॥

शब्दार्थ—घैरु=गुप्तनिन्दा। चलत घैरु=गुप्तरीति से निन्दा होती है।

(वचन)—सखी नायिका की दशा सखी-प्रति कहती है।

भावार्थ—लोग घर-घर चवाव करते हैं (गुप्त रीति से निन्दा करते हैं) तो भी वह (नायिका) एक घड़ी भी अपने घर में नहीं ठहरती (नायक के घर की ओर आया जाया करती है) और वही निन्दा की बात समझ कर अपने घर को चलती है, परन्तु तुरंत ही भूल कर फिर उसी के घर जाती है।

[विशेष] उन्माद संचारी भाव है।

अलंकार—विशेषोक्ति।

दो०—डर न टरै नींद न परै, हरै न काल-विपाक।
छिनक छाकि उछकै न फिरि, खरो विषम छवि-छाक॥१०४॥

शब्दार्थ—काल-विपाक=समय का व्यतीत होना (एक नियत समय का गुजर जाना)। उछकै=उतरै। खरो विषम=बड़ा कठिन। छाक=नशा, मद।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति। पूर्वानुराग में नायिका की दशा का वर्णन।

भावार्थ—हे सखी, भंग, मदिरा इत्यादिक नशाओं की अपेक्षा छवि का नशा (रूप की आसक्ति) अति कठिन है, जो कोई तनक भी इसे पीता है, तो फिर यह नशा उतरता नहीं। यह नशा भय के कारण भी नहीं हटता, नींद भी नहीं आती (और नशे सो जाने से उतर जाते हैं, पर इसमें नींद भी तो नहीं आती) और नियत समय व्यतीत होने से भी नहीं उतरता (जैसे और नशे एक रात दिन में उतर जाते हैं)।

अलंकार—व्यतिरेक।

दो०—झटकि चढ़ति उतरति अटा, नेकु न थाकति देह।
भई रहति नट को बटा, अटकी नागर नेह॥१०५॥

शब्दार्थ—झटकि=(झटित) शीघ्रता पूर्वक। अटा=अट्टालिका। नेकु न=जरा भी नहीं। अटकी=उलझी हुई। नागर=चतुर।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति। पूर्वानुराग में नायिका की दशा का वर्णन।

भावार्थ—हे सखी, चतुर नायक के नेह में उलझी हुई वह नायिका नट का बट्टा बनी रहती है। शीघ्रतापूर्वक अटारी पर चढ़ा-उतरा करती है, उसकी देह जरा भी नहीं थकती।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में विशेषोक्ति, उत्तरार्द्ध में रूपक।

दो०—लोभ लगे हरि रूप के, करी साँट जुरि जाइ ।
हौं इन बेंची बीचहीं, लोयन बड़ी बलाइ ॥१२६॥

शब्दार्थ—साँट=सौदा बेंचने की बात चीत (दलालों की)। जुरिजाय=मिलकर। हौं=मुझे। बीच ही=बिना मेरी मंजूरी के, बिना मुझसे पूछे ही। लोयन=नेत्र।

(वचन)—नायिका का वचन सखी-प्रति। निज दशा-वर्णन।

भावार्थ—हे सखी, ये नेत्र बड़ी बुरी बला हैं। कृष्ण के रूप के लालच में पड़कर (रुपये के लालच से दलाल भी ऐसा ही करते हैं) कृष्ण के नेत्रों से मिलकर इन्होंने सौदा की बातचीत की और मुझे बिना मुझसे पूछे ही बेंच डाला।

अलंकार—रूपक।

दो०—नई लगनि कुल की सकुच, बिकल भई अकुलाइ ।
दुहूँ ओर ऐंची फिरति, फिरकी लौं दिन जाइ ॥१२७॥

शब्दार्थ—फिरकी=चमड़े का गोलाकार एक खिलौना जिसमें दो छेद होते हैं। उन छेदों में डोरा डालकर दोनों ओर खींच कर उसे घुमाते हैं।

(वचन)—नायिका की दशा का वर्णन। सखी-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—एक ओर नवीन प्रेम दूसरी ओर कुलमर्यादा का संकोच, इस खींचा-तानी से घबराकर बेचैन हो रही है; इसी में दोनों ओर इँचे-खिंचे हुए फिरकी की तरह चक्कर खाते, वह अपना दिन बिताती है।

[विशेष]—व्रीड़ा, अभिलाषा चपलता, उद्वेग इत्यादि संचारी भाव हैं।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—उत तें इत इत तें उतहिं, छिनकु न कहुँ ठहराति ।
जक न परति चकरी भई, फिरि आवति फिरि जाति ॥१२८॥

शब्दार्थ—उत=वहाँ। इत=यहाँ। जक=कल, चैन।

भावार्थ—सरल है (चपलता संचारी भाव है)।

अलंकार—अत्युक्तातिशयोक्ति।

दो०—तजी संक सकुचति न चित, बोलति बाक-कुबाक।
दिन-छनदा छाकी रहति, छुटै न छिन छवि-छाक ॥१९९॥

शब्दार्थ—संक=शंका, भय। बाक-कुबाक=अंडबंड वचन। छनदा=रात्रि। छाकी रहति=मस्त रहती है, नशे में चूर रहती है। छविछाक=रूप का नशा।

(वचन)—दूती वचन नायक-प्रति। विरह-निवेदन।

भावार्थ—हे कृष्ण तुम्हारे रूप का नशा उसे ऐसा चढ़ गया है कि रात-दिन वह उसीमें छकी रहती है, एक क्षण मात्र के लिये उस छवि का नशा नहीं उतरता और उसी नशे के कारण उसने भय छोड़ दिया, चित्त में लज्जित भी नहीं होती और अंडबंड निरर्थक वचन बोलती है।

[विशेष] इसमें विरह की प्रलाप दशा का वर्णन है।

अलंकार—व्यतिरेक (छविछाक से रातो दिन छकी रहती है—और नशा से इसमें अधिकता है)।

दो०—ढरे ढार त्योंहीं ढरत, दूजे ढार ढरैं न।
क्यौंहूँ आनन आन सों, नैना लागत हैं न ॥२००॥

शब्दार्थ—ढार=बहाव की ओर। आनन=मुख। आन=अन्य।

[विशेष]—नायिका परपुरुष पर आसक्त है सखी ने शिक्षा दी कि पर पुरुष प्रेम छोड़ निज पति से प्रेम कर। इस पर नायिका कहती है।

भावार्थ—हे सखी, मेरे ये नेत्र जिस ढार की ओर ढर गये हैं, अब उसी ओर ढरते हैं दूसरी ओर नहीं ढरते। किसी प्रकार भी अन्य मुख से अब ये नेत्र लगते ही नहीं (दूसरे की ओर देखने की इच्छा नहीं)।

[अथवा]—कोई दूती किसी पतिव्रता को बहका के किसी पर पुरुष पर प्रेम करने का आग्रह कर रही है। उसके उत्तर में उस दूती से नायिका का यह कथन है।

अलंकार—अनुप्रास।

तृतीय शतक

(अनुराग-वर्णन)

दो०—चकी जकी सी ह्वै रही, बूझे बोलति नीठि।
कहूँ डीठि लागी लगी; कै काहू की डीठि ॥२०१॥

शब्दार्थ—चकी=चकित। जकी=डरी हुई, स्तंभित। नीठि=कठिनता से। डीठि लागी=किसी से प्रेम लगा है। डीठि लगी=नज़र लगी है।

(वचन)—पूर्वानुराग में नायिका की दशा का वर्णन। सखी का वचन सखी-प्रति। व्याधि संचारी भाव है।

भावार्थ—यह नायिका चकित और भय से स्तंभित सी हो रही है, हाल पूछने पर मुशकिल से बोल सकती है। न जाने किसी से प्रेम लगा है (आसक्त हो गई है) वा किसी की नज़र लग गई है।

अलंकार—संदेह।

दो०—पियके-ध्यान गही गही, रही वही ह्वै नारि।
आपु आपुही आरसी, लखि रीझति रिझवारि ॥२०२॥

शब्दार्थ—गही=गृहीता। गही=ली। आपु आपुही=अपने ही आप को देखकर। पियके ध्यान गही=नायक के ध्यान से ग्रसित अर्थात् नायक के ध्यान में निमग्न होकर।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—प्रीतम के ध्यान में निमग्न होकर जब उसने (नायिका ने) दर्पण लिया (दर्पण में मुख देखने लगी) तब वह स्वयं नायक ही हो रही (अर्थात् अपने को नायक समझ कर और आरसी में पड़े हुए बिंब को नायिका समझ कर) दर्पण देख देख कर आप अपने ही प्रतिबिंब पर रीझती है ऐसी अनोखी रिझवार है।

[विशेष]—इसमें जड़ता संचारी भाव है।

अलंकार—सामान्य।

दो०—ह्याँ ते ह्वाँ ह्वाँ ते इहाँ, नेकौ धरति न धीर।
निसि दिन ढाढ़ी सी फिरति, बाढ़ी गाढ़ी पीर ॥२०३॥

शब्दार्थ—ढाढ़ी = एक जाति, जिसके व्यक्ति बधाई इत्यादि गाने का व्यवसाय करते हैं। इस जाति के व्यक्ति प्रायः इतस्ततः घूमा ही करते हैं।

भावार्थ—सरल है (चपलता संचारी भाव है)

अलंकार—पूर्णोपमा और छेकानुप्रास।

(मध्या)

दो०—समरस समर सकोच बस, बिबस न ठिकु ठहराय।
फिरि फिरि उझकति फिरि दुरति, दुरि दुरि झकति जाय ॥२०४॥

शब्दार्थ—समरस = समान। समर = (स्मर) काम। सकोच = लज्जा। बिबस = अपने संभार में नहीं। उझकति=सिर उठा-उठा कर देखती हुई। दुरति = छिपती है।

[विशेष]— मध्या नायिका। आवेग, अवहित्था, व्रीड़ा, चपलता चार संचारी है। विलास हाव है। (सखी का कथन सखी-प्रति)।

भावार्थ—काम और लज्जा दोनों बराबर है। इनके वश में विवश हुई है, अतः कोई ठीक नहीं पड़ता (एक दशा में स्थित नहीं रहती) बार-बार मुँह उठा-उठा कर (नायक को) देखती है, फिर छिप जाती है, और छिप-छिप कर उठ-उठकर देखती ही जाती है।

अलंकार—यमक, अनुप्रास, कारक दीपक।

दो०—उर उरभयो चितचोर सों, गुरु गुरुजन की लाज।
चढ़े हिंडोरे से हिये, किये बनै गृह-काज ॥२०५॥

शब्दार्थ—गुरु=भारी। गुरुजन=जेठे लोग (सास, जेठानी इत्यादि)।

(वचन)—सखी का वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—चित तो नायक से उलझा हुआ है और इधर गुरुजनों की भारी लज्जा है। अतः हिंडोले के समान डोलते हुए हृदय से कैसे घर का काम ठीक करते बने!

अलंकार—उपमा। काकुवक्रोक्ति।

दो०—सखी सिखावति मान-बिधि, सैनन बरजति बाल।
हरे कहै मो हीय मों, बसत बिहारीलाल ॥२०६॥

शब्दार्थ—मान-विधि=मान करने का ढंग। हरे=धीरे-धीरे।

भावार्थ=सखी मान करने का ढंग सिखाती है, तब वह नायिका इशारे से मना करती है कि यह बात धीरे से कह, क्योंकि मेरे हृदय में विहारीलाल (नायक) बसते हैं, ऐसा न हो कि वे सुन लें।

अलंकार—काव्यलिंग।

दो०—उर लीने अति चटपटी, सुनि मुरली-धुनि धाय।
हौं हुलसी निकसी सु तौ, गयो हूल सी लाय ॥२०७॥

शब्दार्थ—चटपटी=आतुरता। हुलसी=हुलास-सहित। सु तौ=(सो तो) वह तो। हूल=तलवार वा बरछी की घोंप।

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—हे सखी, मुरली-ध्वनि सुनकर, हृदय में अत्यन्त आतुरता लिये हुए, मैं बड़े हुलास से उसके देखने को घर से बाहर निकली (कि ऐसी मधुर मुरली बजानेवाला बड़ा आनन्द-दायक होगा) परन्तु उसने तो हूल सी मार दी (उसको देख कर कलेजे में हूल सी लगी अर्थात् देखते ही आसक्त होकर व्याकुल हो गई)।

अलंकार—यमक (हुलसी, हूल सी), विषम (तीसरा)।

दो०—जो तब होत दिखादिखी, भई अमी इक आँक।
लगै तिरीछी डीठि अब, ह्वै बीछी को डाँक ॥२०८॥

शब्दार्थ—तब = पूर्वानुराग समय में । इक आँक = निश्चित रूप से । अब = वियोग में ।

(वचन)—नायक वा नायिका का वचन सखी-प्रति ।

भावार्थ—हे सखी, जो तिरछी दृष्टि उस समय अर्थात् अनुरागारंभ में, देखा-देखी (परस्पर अवलोकन) होते समय, निश्चय रूप से अमृततुल्य हुई थी, वही दृष्टि अब (वियोग में स्मरण करने से) बिच्छू का डंक होकर लगती है (दुःख देती है) ।

[विशेष] –वियोग शृङ्गार, स्मृति संचारी ।

अलंकार—पर्याय (एक वस्तु क्रम सों जहाँ आश्रय लेय अनेक) पहले वही दृष्टि अमृत थी, फिर वही बीछी को डंक हुई ।

दो०—लाल तिहारे रूप की, कहौ रीति यह कौन ।
जासों लागैं पलक दृग, लागै पलक पलौ न ॥२०९॥

शब्दार्थ—पलक = एक पल मात्र के लिये । लागै पलक न = नींद नहीं आती । पलौ = एक पल मात्र के लिये ।

(वचन)—दूती-वचन नायक-प्रति । नायिका-विरह-निवेदन ।

भावार्थ—हे लाल ! तुम्हारे रूप की यह कौन सी रीति है कि जिससे एक क्षणमात्र के लिये भी किसी के नेत्र लगते हैं (एक दृष्टि देखने मात्र से) फिर उन नेत्रों में एक क्षण के लिये भी नींद नहीं आती ।

अलंकार—व्याजस्तुति । विरोधाभास । यमक ।

दो०—अपनी गरजनि बोलियत, कहा निहोरो तोहिं ।
तू प्यारो मो जीव को, मो जिय प्यारो मोंहि ॥२१०॥

शब्दार्थ—गरज = चाह, मतलब । निहोरो = एहसान, बड़ाई ।

(वचन)—कलहांतरिता नायिका का वचन नायक-प्रति ।

भावार्थ—अपनी गरज से तुमसे बोलती हूँ, तुम पर मेरा कोई एहसान नहीं है, क्योंकि तुम मेरे जीव को प्यारे हो और अपना जीव मुझे प्यारा है ।

अलंकार—एकावली ।

(स्वप्न)

दो०—सुख सों बीती सब निसा, मनु सोये मिलि साथ।
मूका मेलि गहे जु छन, हाथ न छोड़े हाथ ॥२११॥

शब्दार्थ—मूका=मोखा (दीवार का छेद)।

[विशेष]—स्वप्न की बात का वर्णन। नायिका परकीया। नायिका का वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—हे सखी, मैंने आज स्वप्न में देखा कि प्रियतम ने मोखे में हाथ डालकर जो मेरा हाथ पकड़ा, तो फिर छोड़ा नहीं। इसी धरा-पकड़ी के स्वप्न में सारी रात्रि ऐसे सुख से व्यतीत हुई कि मानो हम दोनों साथ ही सोये रहे।

अलंकार—अनुक्तविपया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—देखौं जागि त वैसिये, साँकर लगी कपाट।
कित ह्वै आवति जाति भजि, को जानै केहि बाट ॥२१२॥

शब्दार्थ—साँकर=जंजीर। कपाट=किवाड़। बाट=रास्ता।

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति। स्वप्न-दशा-वर्णन।

भावार्थ—(हे सखी, मैं रात को रोज कृष्ण को स्वप्न में देखती हूँ कि वे मेरे पास आये हैं) और जब मैं जगकर देखती हूँ तो देखती हूँ कि किवाड़ों में वैसी ही जंजीर लगी है, जैसी मैंने सोने से पहले लगाई (बन्द की) थी, न जाने उनकी वह मूर्ति किस रास्ते से आती है और जगने पर किस रास्ते से भाग जाती है।

[विशेष]—स्वप्न अनुभाव। वितर्क संचारी भाव।

अलंकार—तीसरी विभावना।

(गुड्डी)

दो०—गुड़ी उड़ी लखि लाल की, अँगना अँगना माँह।
बौरी लौं दौरी फिरति, छुवति छबीली छाँह ॥२१३।

शब्दार्थ—गुड़ी = पतंग। अँगना = नायिका। अँगना = आँगन।

[विशेष]—चपलता संचारी भाव। (नायक के पतंग की छाया को छूकर नायिका मिलन का-सा सुख मानती है)।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति। नायिका की उन्माद दशा का वर्णन।

भावार्थ—नायक की पतंग उड़ी हुई देखकर और उसकी छाया अपने आँगन में पड़ती हुई जानकर वह नायिका अपने आँगन में बौरी सी दौड़ती है और पतंग की छाया को छूती फिरती है।

अलंकार—गुड़ी उड़ी में छेकानुप्रास। अँगना अँगना में यमक। बौरी लौं बौरी फिरति में पूर्णोपमा। छुवति छबीली छाँह में वृत्यनुप्रास।

(प्रेम दृढ़ता)

दो०—उनको हित उनहीं बनै, कोऊ करौ अनेक।
फिरत काग-गोलक भयो, दुहूँ देह ज्यौ एक ॥२१४॥

शब्दार्थ—हित = प्रेम। बनै = करते बनता है। काग-गोलक = कौवा के नेत्रों के गड्ढे। ज्यौ = जीव।

[विशेष]—ऐसा कहा जाता है कि कौवा के नेत्र-गोलक तो दो होते हैं, परन्तु आँख एक ही होती है। बारी-बारी से दोनों गोलकों में फिरा करती है।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—हे सखी, दम्पति का प्रेम ऐसा है कि उन्हीं से करते बनता है, अन्य कोई अनेक उपाय करे तो भी वैसा प्रेम न बनेगा। दोनों के शरीर तो दो हैं, पर जीव एक ही है और दोनों शरीर में इस प्रकार संचरण करता है जैसे कौवा के दोनों गोलकों में एक नेत्र।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में विशेषोक्ति। उत्तरार्द्ध में उपमा।

दो०—करत जात जेती कटनि, बढ़ि रस सरिता सोत।
आलबाल उर प्रेम तरु, तितो तितो दृढ़ होत ॥२१५॥

शब्दार्थ—कटनि = कटाव । रस = (१) शृङ्गार रस (प्रेम) (२) पानी । आलबाल = थाल्हा । तितो तितो = उतना ही अधिक ।

(वचन) नायक किंवा नायिका की उक्ति ।

भावार्थ—शृङ्गार रस (प्रेम) की नदी का स्रोत बढ़कर जितना ही अधिक कटाव करता जाता है, हृदय के थाल्हे में लगा हुआ प्रेमरूपी पेड़ उतना ही अधिक मजबूत होता जाता है ।

अलंकार—रूपक ।

दो०—खल बढ़ई बल करि थके, कटै न कुबत-कुठार ।
आलबाल उर झालरी, खरी प्रेम-तरु-डार ॥२१६॥

शब्दार्थ—कुबत-कुठार = कुवार्ता-रूपी कुठार (निंदारूपी कुल्हाड़ी) । आलबाल = थाल्हा । झालरी = फैलती है, पत्र-पुष्प-युक्त होती है । खरी = और अधिक ।

(वचन)—नायक किंवा नायिका का वचन सखी-प्रति ।

भावार्थ—निंदक रूपी बढ़ई बल करके थक गये, किन्तु निंदारूपी कुल्हाड़ी से कटी नहीं, बल्कि (उसके विपरीत) हृदय-रूपी थाल्हे में प्रेम-रूपी पेड़ की शाखा और भी बढ़ती ही गई ।

अलंकार—रूपक ।

दो०—छुटत न पैयत छिनकु बसि, नेह-नगर यह चाल ।
मार्यौ फिरि फिरि मारिये, खूनी फिरत खुस्याल ॥२१७॥

शब्दार्थ—खूनी = घातक । खुस्याल = आनन्द युक्त ।

(वचन)—नायक अथवा नायिका की उक्ति ।

भावार्थ—नेह-नगर की यह विलक्षण रीति है कि यहाँ एक क्षण-मात्र भी बस कर फिर कोई यहाँ से छुटकारा नहीं पाता । मारा हुआ ही बार-बार मारा जाता है और घातक आनन्दयुक्त घूमता फिरता है (उसे कोई दण्ड नहीं देता) ।

[विशेष]—मार्यौ (आशिक) और खूनी (माशूक) में साध्यवसाना लक्षणा है (जहाँ उपमान से ही उपमेय का बोध होता है) ।

अलंकार—रूपक—(नेहनगर)। रूपकातिशयोक्ति—(उपमान से उपमेय का ज्ञान)।

(प्रेमानुभव)

दो०—निरदय ! नेह नयो निरखि, भयो जगत भयभीत।
यह अबलौं न कहूँ सुनी, मरि मारिये जु मीत ॥२१८॥

[विशेष]—मानी नायक-प्रति नायिका की सखी का वचन।

भावार्थ—हे लाल, यह तुम्हारा नवीन प्रकार का दयारहित प्रेम देखकर संसार डर गया है। अब तक यह बात कभी न सुनी थी कि संसार में ऐसे भी प्रेमी होते हैं, जो स्वयं कष्ट उठाकर मित्र को भी कष्ट देते हैं (अर्थात् स्वयं कष्ट उठाकर मित्र को सुख पहुँचाना यह प्रेम का खास लक्षण है, परन्तु तुम मान कर बैठे हो, इससे तुम्हें भी कष्ट है और हमारी सखी को भी कष्ट हो रहा है, अतः मान त्यागो)

अलंकार—काव्यलिंग—("निर्दय नयी नेह" को युक्ति से प्रमाणित किया है)।

[विशेष]—शृङ्गार रस में 'मरण' का वर्णन रस-विरुद्ध है। किसी कवि ने कहा नहीं। यह बिहारी की ही विलक्षण प्रतिभा का काम है जो "मरना, मारना" शब्द का पर्यायवाची अर्थ में प्रयोग करके, इस दशा का भी दिग्दर्शन कराया है। ऊपर लिखे दोनों दोहों में यही विशेष खूबी है।

दो०—क्यौं बसिये क्यौं निबहियै, नीति नेह-पुर नाहिं।
लगालगी लोयन करैं, नाहक मन बँधि जाहिं ॥२१९॥

शब्दार्थ—लगालगी = परस्पर लागडाँट। लोयन = (लोचन) नेत्र। नाहक = बेकसूर, बिना अपराध।

(वचन)—नायक किंवा नायिका-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—नेह-पुर में कैसे बसें और कैसे निर्वाह करें, यहाँ तो कोई नीति ही (कानून) नहीं है। देखो न, लाग-डाँट तो नेत्र करते हैं और बेचारे मन बेक़सूर क़ैद किये जाते हैं।

अलंकार—असंगति (प्रथम)।

दो०—देह लग्यो ढिग गेहपति, तऊ नेह निरबाहि।
ढीली अँखियन ही इतै, गई कनखियन चाहि ॥२२०॥

शब्दार्थ—देह लग्यौ = शरीर से सटा हुआ, अति निकट। गेहपति = खाविन्द। इत = मेरी ओर। कनखियन = आँख के कोने से। चाहि गई = देख गई।

(वचन)—उपपति नायक का वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—अत्यन्त निकट उसका पति मौजूद था, तब भी प्रेम के निर्वाह के लिये, वह नायिका ढीली आँखों के कोनों से मेरी ओर देख ही गई।

अलंकार—तीसरी विभावना।

दो०—हौं हिय रहति हई छई, नई जुगुति जग जोय।
आँखनि आँखि लगे खरी, देह दूबरी होय ॥२२१॥

शब्दार्थ—हौं = मैं। हई = आश्चर्य। जोय = देखकर।

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति, पूर्वानुराग दशा।

भावार्थ—हे सखी, (संसार की यह नई युक्ति देखकर), मैं तो हृदय में आश्चर्य से छाई रहती हूँ (मुझे बड़ा आश्चर्य मालूम होता है) कि आँख से आँख लगने से (अर्थात् भिड़ती तो है आँख से आँख, परन्तु) देह अति दुर्बल होती है (लगती है आँख, दुर्बल होती है देह)।

[विशेष]—वितर्क संचारी भाव है।

अलंकर—असंगति।

दो०—प्रेम अडोल डुलै नहीं, मुख बोलै अनखाय।
चित उन [illegible] ति बसी, चितवन-माँहि [illegible] ॥२२[illegible]॥

शब्दार्थ—अडोल=अचल। अनखाय=क्रुद्ध होकर।

(वचन)—नायिका का पक्का पूर्वानुराग देखकर सखी का वचन नायिका-प्रति।

भावार्थ—हे सखी, तेरा प्रेम अचल है, वह चलायमान नहीं होता, परन्तु (छिपाने की गरज से) उनकी वार्ता करने से तू क्रुद्ध होकर बोलती है। तेरे चित में उनकी मूर्ति बसती है—यह तेरी चितवन में ही दिखलाई पड़ती है।

अलंकार—प्रमाणान्तर्गत अनुमान अलंकार (चिन्हहिं लखि अनुमान वल, वस्तुहिं लीजै जानि)।

दो०—चित तरसत मिलत न वनत, बसि परोस के बास।
छाती फाटी जाति सुनि, टाटी ओट उसास ॥२२३॥

शब्दार्थ—बास=घर। उसास=ऊँची साँस, निश्वास।

(वचन)—परोसिन दूती का वचन नायक-प्रति। निकट-निवासिनी पूर्वानुरागिनी नायिका का विरह निवेदन करती है।

भावार्थ—हे लाल, उसका चित्त तुमसे मिलने को तरसता है। पड़ोस के घर में रहकर भी (अति निकट होनेपर भी) मिलते नहीं बनता। टट्टी की ओट में (अर्थात् उसके और मेरे वास-स्थान के बीच में केवल एक टट्टी मात्र है) जो वह विरह के कारण निश्वास लेती है उसे सुन-सुन कर मेरी तो छाती फटती है अर्थात् बड़ा दुःख होता है।

अलंकार—विशेषोक्ति—(निकट रहकर भी मिलते नहीं बनता)।

दो०—जालरंध्र-मग अगनि को, कछु उजास सो पाय।
पीठि दिये जग त्यों रहै, डीठि झरोखनि लाय ॥२२४॥

शब्दार्थ—जालरंध्र=जाली के छेद। अगनि=अग्नि (नायिका के शरीर की दीप्ति)। उजास=प्रकाश। जग त्यों=(जग तन) संसार की तरफ। त्यों=(तन) तरफ।

(वचन)—नायक की दशा नायिका से दूती कहती है। नायक और नायिका के निवास-स्थान के बीच में एक जाली है।

भावार्थ—जाली के छेदों के रास्ते से कुछ अग्नि का सा उजाला देखकर (तुम्हारी अंगदीप्ति देखकर), उन्हीं झरोखों में दृष्टि लगा कर संसार को पीठ दे दी है, अर्थात् अन्य सब सांसारिक वस्तुओं को छोड़ कर तुम्हारी ही देहदीप्ति को झरोखे से देखा करता है।

अलंकार—परिसंख्या (दृष्टि को जगत से रोक केवल झरोखे में रक्खी)।

दो०—जद्यपि सुन्दर सुघट पुनि, सगुनो दीपक देह।
तऊ प्रकास करै तितौ, भरिये जितौ सनेह ॥२२५॥

शब्दार्थ—सुघट=अच्छी तरह से बनाया हुआ। सगुनो=(१) गुण-युक्त (२) डोरा अर्थात् बत्ती-सहित। सनेह=(१) प्रेम (२) तैल।

(वचन)—दूती-वचन नायिका-प्रति (अनुराग-दृढ़ीकरण)।

भावार्थ—यद्यपि तुम्हारा दीपकरूपी शरीर (दीप-शिखावत् देह) सुन्दर, अच्छा बना हुआ है, और गुणयुक्त (बत्ती-सहित) है, तो भी दीपक उतना ही प्रकाश करता है जितना उसमें तैल (प्रेम) भरा जाता है।

अलंकार—श्लेष से परिपुष्ट रूपक।

दो०—दुचिते चित चलति न हलति, हँसति न झुकति बिचारि।
लिखत चित्र पिय लखि चितै, रही चित्र सी नारि ॥२२६॥

शब्दार्थ—दुचिते चित=संदिग्ध चित्त से। झुकति=क्रुद्ध होती है, खीझती है।

[विशेष]—नायक किसी स्त्री का चित्र बना रहा है। नायिका छिप कर देख रही है कि देखें किसका चित्र बना रहा है, मेरा चित्र बनाता है या किसी अन्य स्त्री का, इस लिये दुचित्ती है। इसमें स्तंभ सात्विक भाव और वितर्क संचारी है। (पूर्ण सामग्री है)।

(वचन)—सखी का सखी-प्रति। नायिका की उपर्युक्त दशा का वर्णन।

भावार्थ—दुचित्ती होकर रह गई, न हिलती है न वहाँ से टलती है और कुछ सोच-विचार कर न हँसती है, न क्रुद्ध होती है। इस प्रकार नायक को चित्र बनाते हुए देख कर तसवीर सी (अचल) होकर उस चित्र को देख रही है। (नायिका स्वकीया)।

अलंकार—उपमा (पूर्ण) अथवा उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—नैन लगे तिहिं लगनि सौं, छुटैं न छुटे प्रान।
काम न आवत एकहू, तेरे सौक सयान ॥२२७॥

शब्दार्थ—लगनि=प्रीति। सौक=(सौ+एक) एक सौ (अनेक)। सयान=चतुराई वा सुन्दर शिक्षा।

(वचन)—प्रौढ़ा परकीया-वचन शिक्षा देने वाली सखी-प्रति।

भावार्थ—हे सखी, मेरे नेत्र ऐसी दृढ़ प्रीति के साथ उस नायक से लग गये हैं कि वे प्राण छूटने पर भी अब नहीं छूट सकते। अब तेरी सौ चतुराइयाँ (अथवा सौ प्रकार का समझाना बुझाना) एक भी काम न आवेंगी (अर्थात् अब समझाना व्यर्थ है, अब मैं उस नायक से प्रीति न छोड़ूँगी)।

[विशेष]—इसमें धृति संचारी भाव है।

अलंकार—अत्युक्ति (प्रेमात्युक्ति)। देखो अलंकार-मंजूषा।

(प्रेम पीड़ा)

दो०—साजे मोहन मोह को, मोहीं करत कुचैन।
कहा करौं उलटे परे, टोने लोने नैन ॥२२८॥

शब्दार्थ—मोहन=श्रीकृष्ण (नायक)। मोह को=मोहित करने के लिये। कुचैन=दुखित। टोना=टोटका (यंत्र, मंत्र, जादू इत्यादि)। लोने=सुन्दर।

(वचन)—परकीया नायिका का वचन सखी-प्रति।

[विशेष]—इसमें विषाद संचारी भाव है।

भावार्थ—हे सखी, मैंने तो अपने ये नेत्र काजल इत्यादि लगा कर श्रीकृष्ण (नायक) को मोहित करने के लिये सजाये थे, पर जब से उसे (नायक को) देखा है, तब से मेरे नेत्र मुझे ही बेचैन कर रहे हैं (अर्थात् अब उसको देखे, बिना चैन नहीं पड़ती)। हे सखी, क्या करूँ, मेरे सुन्दर नेत्रों का टोना उलट कर मेरे ही ऊपर पड़ा।

अलंकार—'मोहन' शब्द में परिकरांकुर। मोहन, मोह में यमक, टोने लोने में छेकानुप्रास। और समस्त दोहे में तीसरा विषम।

दो०—अलि इन लोयन सरनि को, खरो बिषम संचार।
लगे लगाये एक से, दुहु अनि करत सुमार ॥२२९॥

शब्दार्थ—खरो विषम = बड़ा अद्भुत। संचार = गति। दुहु अनि = दोनों अनी से। सुमार = अच्छी मार।

[अन्वय]—लगे दुहु अनि मार करत, लगाये दुहु अनि मार करत, अतः लगे लगाये दुहु एक से।

[विशेष]—तीर में दो अनी होती हैं। एक में गाँसी लगी होती है, जो निशाने पर लगती है। दूसरी अनी (अर्थात् दूसरा छोर) प्रत्यंचा से सटती है। कवि का तात्पर्य है कि नैन-बाण दोनों ओर से अच्छी मार करते हैं अर्थात् जिसके लगते हैं वह भी घायल होता है और जो लगाता है अर्थात् घालता है वह भी।

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—हे सखी, इन नैन-बाणों की बड़ी अद्भुत गति (मार) है। दूसरे के नेत्र मुझसे लगे अथवा मैंने अपने नेत्र दूसरे से लगाये (दोनों दशाओं में) फल एक ही सा होता है अर्थात् जिसके लगते हैं और जो लगाता है दोनों घायल होते हैं (अर्थात् नैन-बाण दोनों अनी से मार करते हैं)।

[विशेष]—अन्य हथियार चलाने वाले को नहीं घायल करता। नैन-बाण चलाने वाले को भी घायल करता है, यह अद्भुतता है।

अलंकार—रूपक।

दो०—चख-रुचि-चूरन डारिकै, ठग लगाय निज साथ ।
रह्यौ राखि हठ, लै गयो, हथाहथी मन हाथ ॥२३०॥

शब्दार्थ—चखरुचि=नेत्रों की सुन्दरता । चूरन=मंत्रित भभूत । ठग=(नायक) । रह्यौ राखि=रोकता रहा । हथाहथी=हाथों हाथ (अति शीघ्र) ।

(वचन)—नायिका का वचन सखी-प्रति ।

भावार्थ—आँखों के सौन्दर्य का चूरन ऊपर डाल कर (सुन्दर नेत्र दिखला कर) वह ठग (अर्थात् नायक) अति शीघ्र मेरे मन को अपने काबू में करके अपने साथ लगा ले गया, मेरा हठ (धैर्य) रोकता ही रह गया (परन्तु उसका किया कुछ न हो सका) ।

[विशेष]—"जिस पर वशीकरण की मंत्रित भभूत डाली जाती है वह स्वयं डालने वाले के साथ चल देता है," यह तांत्रिक सिद्धान्त है । इसी सिद्धान्त के अनुसार यहाँ रूपक बाँधा गया है ।

अलंकार—रूपक ।

दो०—जौलौं लखौ न कुल-कथा, तौलौं ठिक ठहराय ।
देखे आवत देखिबो, क्योंहू रह्यो न जाय ॥२३१॥

शब्दार्थ—कुलकथा=कुलवती ललनाओं के आचार (लज्जा, सुशील इत्यादि) । ठिक ठहराय = ठीक जान पड़ती है । देखे आवत देखिबो=देखने पर देखना ही अच्छा लगता है ।

(वचन)—सखी ने शिक्षा दी है कि नायक की ओर टकटकी लगाकर न देखा कर । इस पर नायिका सखी से कहती है ।

भावार्थ—हे सखी, जब तक मैं उसको (नायक को) देखती नहीं, तब तक तो लज्जा शीलादि की बातें मुझे ठीक जान पड़ती हैं, पर जब देख लेती हूँ (सामने आ जाता है) तब एक टक देखना ही सोहाता है, फिर किसी तरह रहा नहीं जाता ।

अलंकार—अत्युक्ति (सुन्दरता की) ।

दो०—बन तनको निकसत लसत, हँसत हँसत इत आय।
  दृग खंजन गहि लै गयो, चितवनि चेंपु लगाय ॥२३२॥

शब्दार्थ—बन तन को = बन की ओर को। चेंपु = लासा।

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—वन की ओर को निकलते समय (गोचारन हेतु जाते समय) उस कृष्ण का गोपाल-वेष बहुत शोभा देता है। हँसते-हँसते यहाँ (मेरे द्वार पर) आकर मेरे नेत्र-खंजनों को चितवन-रूपी लासा लगाकर (अपनी चितवन पर मेरे नेत्रों को आसक्त करके) पकड़ ले गया।

अलंकार—रूपक।

दो०—चित-वित बचत न, हरत हठि, लालन दृग बरजोर।
  सावधान के बटपरा, ये जागत के चोर ॥२३३॥

शब्दार्थ—चितवित = मन रूपी धन। बरजोर = जबरदस्त। सावधान = सजग, सचेत, होशियार। बटपरा = (बट = वाट + परा = पारने वाला) बटमार, राहजन डाँकू।

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—हे सखी, कृष्ण के जबरदस्त नेत्रों से मन रूपी धन बचने नहीं पाता, हठपूर्वक छीन लेते हैं। ये नेत्र होशियार के लिये डाकू हैं और जागते हुए (दिन दहाड़े) भी चोरी कर ले जाते हैं।

अलंकार—तीसरी विभावना।

दो०—सुरति न ताल रु तान की, उठ्यो न सुर ठहराय।
  येरी राग बिगारि गो, बैरी बोल सुनाय ॥२३४॥

शब्दार्थ—सुरति = सुधि। रु = और। उठ्यो = अलापा हुआ।

[विशेष —बैरी में 'साध्यवसाना' लक्षणा। नायिका को स्वर-भंग सात्विक भाव हुआ है।

(वचन)—गान में रत परकीया नायिका का वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—हे सखी, अब मुझे ताल और तान की सुध नहीं रही,

आलाप हुआ स्वर भी ठहरता नहीं। वह वैरी (नायक) अपना बोल सुनाकर मेरा राग (गान) बिगाड़ गया।

अलंकार—काव्य लिंग।

दो०—*इए काँटे मो पाँय गड़ि, लीन्हो मरत जिवाय।
प्रीति जतावति नीति सों, मीत जु काढ्यो आय ॥२३५॥

[विशेष]—नायिका के पैर में काँटा गड़ा, नायक ने उसे दुखित देख निकट आ अपने हाथ से काँटा निकाला। इस प्रकार नायक के हाथों का प्रथम कर-स्पर्श पाकर नायिका प्रसन्न हुई और उस काँटे को प्रथम मिलन का कारण समझ कर, नीतिपूर्वक उससे प्रीति जताती हुई, वह नायिका बार-बार उस काँटे से दोहे का पूर्वार्द्ध वाक्य कहती है। नायिका की यह दशा कोई सखी अन्य सखी-प्रति कहती है।

भावार्थ—हे सखी उसकी तो यह दशा है कि—प्रथम बार निकट आकर जिस काँटे को नायक ने निकाला है, उस काँटे से नीतिपूर्वक (अपने उपकारी से प्रीति करना नीति की बात है) प्रीति जताती है और बार-बार उस काँटे से यह कहती है कि—हे काँटे, तूने मेरे पैर में गड़ कर मुझे जिला लिया, क्योंकि बहुत दिनों में नायक के कर-स्पर्श को तरस रही थी।

अलंकार—अनुज्ञा।

(प्रेमानन्द)

दो०—जात सयान अयान है, वै ठग काहि ठगैं न।
को ललचाय न लाल के, लख ललचौहैं नैन ॥२३६॥

---

*नोट—इस दोहे के अनेक पाठान्तर और अर्थान्तर हैं। हमने यह पाठ लिया है, क्योंकि इससे अर्थ में कुछ भी क्लिष्ट-कल्पना नहीं करनी पड़ती। पाठान्तर और क्लिष्ट अर्थान्तर देना हम अच्छा नहीं समझते।

शब्दार्थ—सयान =(सयानपना) चतुराई । अयान = अज्ञान, मूर्खता । ललचौहैं = लालच भरे (प्रेम भरे) ।

(वचन)—नायिका का वचन सखी-प्रति ।

भावार्थ—हे सखी, उन नेत्रों के सामने सब चतुराई मूर्खता हो जाती है। वे ऐसे ठग है कि किसे नही ठग लेते ! लाल के प्रेमपूर्ण नेत्रों को देख कर कौन नहीं ललचाता ।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति ।

दो०—जस अपजस देखत नहिं, देखत साँवल गात ।
कहा करौं लालच भरे, चपल नैन चलि जात ॥२३७॥

शब्दार्थ—साँवल गात = श्याम शरीर । चपल = चंचल ।

भावार्थ—सरल है।

[विशेष]—वितर्क संचारी भाव (कहा करौं) ।

अलंकार—अत्युक्ति (सुन्दरता की) ।

(प्रेम विवशता)

दो०—नख सिख रूप भरे खरे, तउ माँगत मुसुकानि ।
तजत न लोचन लालची, ये ललचौंही बानि ॥२३८॥

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति ।

भावार्थ—हे सखी, मेरे नेत्र यद्यपि श्रीकृष्ण की नख-सिख-शोभा से परिपूर्ण हैं (सब अंगों की शोभा पूर्णतया देख चूके हैं), तो भी उनकी मुसुकान को चाहते हैं (उनका हास्ययुक्त मुख देखना चाहते हैं) । ये मेरे लालची लोचन अपनी लोभी आदत नही छोड़ते ।

अलंकार—विशेषोक्ति । (नख-शिख की शोभा से परिपूर्ण हैं, तब भी भिक्षुक ही बने हैं) ।

दो०—छ्वै छिगुनी पहुँचो गिलत, अति दीनता दिखाय ।
बलि बामन को ब्योंत सुनि, को बलि तुम्हैं पत्याय ॥२३९॥

शब्दार्थ—ब्यौंत = छलमय ढंग। बलि = बलिहारी जाऊँ। पत्याय = प्रतीति करे।

[विशेष]—नायक फूल वगैरा तोड़वा देने के बहाने से नायिका से कुंज में चलने का अनुरोध करता है। इस पर नायिका परिहास करती है।

भावार्थ—बलि और वामन की कथा (वामन रूप से बलि के साथ जो छल तुमने किया है कि थोड़ा माँगकर सर्वस्व हरण किया) सुनकर मैं तुम पर बलिहार होती हूँ, तुम्हारा विश्वास कौन कर सकता है ! तुम्हारी बानि है कि पहले खुशामद करके केवल छिगुनी छूने की प्रार्थना करते हो, पुनः छिगुनी छूपाते ही पहुँचा पकड़ लेते हो।

अलंकार—लोकोक्ति ('अंगुलिदाने भुजं गिलसि')।

दो०—नैना नेकु न मानहीं, कितौ कहौं समझाय।
तन मन हारे हू हँसैं, तिनसों कहा बसाय ॥२४०॥

(वचन)—पूर्वानुराग में सखी की शिक्षा सुनकर नायिका कहती है।

भावार्थ—मैंने बहुत-कुछ समझा कर कहा, मगर मेरे नेत्र कुछ भी सीख नहीं मानते। तन और मन हारने पर भी ये नेत्र हँसते ही हैं (आनन्दित हैं, कुछ परवाह नहीं है) तो इन पर क्या जोर चल सकता है ?

अलंकार—विशेषोक्ति (कितना समझाया पर मानते नहीं)।

—लटकि लटकि लटकत चलत, डटत मुकुट की छाँह।
चटक भरयो नट मिलि गयो, अटक-भटक-वन माँह ॥२४१॥

शब्दार्थ—लटकना = झूम-झूमकर चलना। डटना = देखना। चटक भरयो = (१) फुर्तीला, (२) कान्तिवान। नट = नटवर वेषधारी कृष्ण। अटक-भटक वन = व्रज के चौरासी वनों में से एक वन विशेष।

(वचन)—अनुरागिनी नायिका, प्रथम प्रत्यक्ष दर्शन का हाल, सखी से कहती है।

भावार्थ—झूम झूमकर चलता हुआ और अपने मुकुट की छाया

देखता हुआ, वह फुर्तीला नट मुझको आज अटकमटक बन में मिल हो गया।

[विशेष]—उपनागरिका वृत्ति में 'ट' का प्रयोग यहाँ सराहनीय है।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

दो०—फिरि फिरि बूझति कहि कहा, कह्यौ साँवरे गात।
कहा करत देखे कहा, अली चली क्यौं बात ॥२४२॥

(वचन)—"दूती-प्रति नायिका का उत्सुकतापूर्वक पूछना"। इस उत्सुकता की दशा का वर्णन सखी का सखी-प्रति।

भावार्थ—बार-बार पूछती है कि बतला तो, उस साँवले शरीर-वाले नायक ने क्या कहा है? कौन काम करते हुए तूने उन्हें देखा, कहाँ देखा और मेरे बारे की वार्ता कैसे चली?

[विशेष]—उत्सुकता संचारी भाव है। विरह की प्रलाप दशा।

अलंकार—अत्युक्ति (प्रेम की)।

दो०—तो ही निरमोही लग्यो, मो ही यहै सुभाउ।
अनआये आवै नहीं, आये आवत आउ ॥२४३॥

शब्दार्थ—ही=मन। निरमोही=निर्दय।

(वचन)—नायिका की पत्री नायक-प्रति।

भावार्थ—तेरा मन निर्दय है, (संगति से) मेरे मन का भी यही स्वभाव हो गया है (मेरा मन सदा तुम्हारे पास रहता है)। बिना तेरे आये वह (मेरा मन) आता नहीं, तेरे आने के साथ ही आता है, अतः अवश्य आओ।

अलंकार—यमक (निरमोही और मोही में), लाटानुप्रास—(आवै, आये में)। पर्यायोक्ति (मन के बहाने नायक को बुलाना)।

दो०—दुखहाइनि चरचा नहीं, आनन आनन आन।
लगी फिरति ढूँका दिये, कानन कानन कान ॥२४४॥

शब्दार्थ— दुखहाइनि=दुख देनेवाली। आनन=मुख। आनन=

अन्यजनों की। आन=शपथ करके कहती हूँ। टूका दिये फिरना=छिपकर सुनते रहना।

(वचन)—सखी-प्रति नायिका का वचन।

भावार्थ—हे सखी, मैं शपथपूर्वक कहती हूँ कि इन दुख देनेवाली चवाइनों के मुख में अन्य जनों की चरचा ही नहीं आती (सदैव मेरे ही प्रेम की चर्चा किया करती हैं) और हमारे विहार करने के बनों में छिप-छिपकर कान लगाकर हमारी गोप्य वार्ता सुनने की चाह में लगी फिरती हैं।

अलंकार—यमक।

दो०—बहके सब जिय की कहत, ठौर कुठौर लखैं न।
छिन औरै छिन और हैं, ये छबिछाके नैन॥२४५॥

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—हे सखी, मेरे ये, छवि का नशा पिये हुए, नेत्र ऐसे बहक गये हैं (भ्रम में पड़ गये हैं) कि ठौर-कुठौर नहीं देखते, मन की बात प्रकट कर देते हैं। इनकी दशा क्षण में कुछ और, क्षण में कुछ और हो रही है।

अलंकार—भेदकातिशयोक्ति।

दो०—कहत सबै कवि कमल से, मो मति नैन पपानु।
नतरकु इन बिय लगत कत, उपजत बिरह-कृसानु॥२४६॥

शब्दार्थ—नतरकु=नहीं तो। बिय=(सं० द्वि) दोनों। कत=क्यों। कृसानु=अग्नि।

(वचन)—विरह में नायिका का वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—हे सखी, सब कवि लोग नेत्रों को कमल की समता देते हैं, परन्तु मेरे मत से तो ये पत्थर हैं; नहीं तो दो व्यक्तियों के नेत्र परस्पर टकराने से विरह-रूपी अग्नि क्यों पैदा होती है।

अलंकार—हेत्वपह्नुति।

दो०---लाज लगाम न मानही, नैना मो बस नाहिं ।
ये मुँहजोर तुरंग लौं, ऐंचत हू चलि जाहिं ॥२४७॥

भावार्थ—हे सखी, ये मेरे नेत्र लाज-रूपी लगाम को नहीं मानते, ये मेरे वश में नहीं हैं। ये मुँह जोर घोड़े की तरह, लगाम खींचते रहने पर भी, जिधर चाहते हैं चले जाते हैं।

अलंकार—रूपक और तीसरी विभावना से परिपुष्ट पूर्णोपमा।

दो०---इन दुखिया अँखियान को, सुख सिरजोई नाहिं ।
देखत बनै न देखते, बिन देखे अकुलाहिं ॥२४८॥

(वचन)—मध्या परकीया नायिका। विरह की उद्वेग-दशा।

भावार्थ—हे सखी, इन मेरी दुखिया आँखों के लिये सुख बनाया ही नहीं गया। क्योंकि, जब नायक सामने मौजूद होता है और देखने का मौका होता है तब इन आँखों से इच्छा भर देखते नहीं बनता (लज्जावश) और जब वह ओट में हो जाता है तब बिना देखे व्याकुल होती हैं (प्रेम के आधिक्य से)।

अलंकार—काव्यलिंग।

दो०---लरिका लैबेके मिसहिं, लंगर मो ढिग आय ।
गयो अचानक आँगुरी, छाती छैल छुवाय ॥२४९॥

शब्दार्थ—लंगर = ढीठ।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—पर्यायोक्ति (मिस कर कारज साधना)।

दो०—डगकु डगति-सी चलि ठटकि, चितई चली सँभारि ।
लिये जाति चित चोरटी, वहै गोरटी नारि ॥२५०॥

शब्दार्थ—डगकु = (डग + एक) एक डग, एक फाल। डगति-सी = डगमगाती-सी। ठटकि = कुछ डरती-सी। चोरटी = चोट्टी, चुराने वाली। गोरटी = गौरांगी।

भावार्थ—(नायक-वचन सखी-प्रति) एक फाल डगमगाती हुई सी चलकर मेरी ओर कुछ ठिठक कर देखा और फिर सँभल कर चल दी। देखो वही गोरांगी चोट्टी नायिका मेरा चित्त चुराये लिये जाती है।

अलंकार—छेकानुप्रास (चोरटी, गोरटी में) सम्पूर्ण दोहा में स्वभावोक्ति।

दो०—चिलक चिकनई चटक स्यों, लफति सटक लौं आय।
नारि सलोनी साँवरी, नागिन लौं डसि जाय ॥२५१॥

शब्दार्थ—चिलक=चमक। चिकनई=चिकनापन। चटक=तेजी, फुर्ती, चंचलता। स्यों=सहित। लफति=नवती है। सटक=बेंत वा बाँस की मुलायम छड़ी।

[विशेष]—चिलक, चिकनाई, चटक और लफना ये गुण नागिन और नायिका दोनों में होते हैं। साँवरी शब्द इस कारण लिखा कि नागिन काली ही अच्छी होती है। गोरांगी नायिका की समता नागिन से न बनती।

भावार्थ—चमक, स्निग्धता और फुर्तीलेपन सहित बेंत की तरह लफती हुई निकट आकर वह सलोनी और साँवली नायिका मेरे मन को नागिन की तरह डस जाती है।

अलंकार—पूर्णोपमा (समुच्चयोपमा—देखो अलंकार-मंजूषा)।

दो०—रह्यौ मोह मिलनो रह्यो, यों कहि गहो मरोर।
उत दै सखिहिं उराहनो, इत चितई मो ओर ॥२५२॥

शब्दार्थ—मोह=छोह, प्रेम। मरोर गही=मानसूचक मुद्रा बनाई। उराहनो=उपालंभ।

[विशेष]—नायक के वचन-विदग्धा और क्रिया-विदग्धा नायिका की जिस चेष्टा को देखा है उसे स्मरण करके सखा से वह कह रहा है।

भावार्थ—हे सखो, उधर तो ये शब्द कहके कि "मोह छोह भी गया और मिलना भी एक ओर रहा" सखी को ओलहना दिया और इधर

मानसूचक मुद्रा से मेरी ओर नज़र फेंको, (बस, वह चेष्टा मुझे नहीं भूलती)।

[विशेष]—यहाँ स्मृति संचारी भाव है।

अलंकार—गूढ़ोक्ति (औरै प्रति उद्देश्य कै, कहै और सों बैन)।

दो०—नहिं नचाय चितवति चखन, नहिं बोलत मुसुकाय।
ज्यों ज्यों रूखो रुख करति, त्यों त्यों चित चिकनाय॥२५३॥

(वचन)—सखी का कथन नायिका-प्रति।

भावार्थ—हे लाड़िली, आज तू चंचल नेत्रों से नहीं देखती, न मुस्कुरा कर बोलती है (जैसे अन्य समय देखती बोलती थी), ज्यों ज्यों तू मेरे-प्रति रुखाई प्रकट करती है, त्यों त्यों तेरा चित्त किसी के प्रेम से चिकना होता जाता है।

अलंकार—पाँचवीं विभावना (विरुद्ध कारण से कार्य, रुखाई से चिकनाहट)।

दो०—सहित सनेह सकोच सुख, स्वेद कंप मुसुकानि।
प्रान पानि करि आपने, पान धरे मो पानि॥२५४॥

शब्दार्थ—सुख=हर्ष। पानि=हाथ।

(वचन)—नायक-वचन सखी-प्रति। (पान देते समय की नायिका की दशा)।

भावार्थ—हे सखी, प्रेम और संकोच सहित, हर्ष तथा स्वेद, कंप इत्यादि सात्विक भावों सहित, मुसका कर, मेरे प्राण अपने हाथ में करके, उस (नायिका) ने मेरे हाथ में पान दिये।

[विशेष]—इसमें शृङ्गार रस की पूर्ण सामग्री देखने योग्य है। 'स्नेह' स्थायी भाव, 'नायक नायिका' विभाव, 'मुसकानि' कायिक अनुभाव, स्वेद, कंप' सात्विक अनुभाव, 'हर्ष' और व्रीड़ा संचारी भाव।

अलंकार—परिवृत (विनिमय—जहाँ अधिक औ न्यून को लीबो दीबो होय)।

दो०—चितवनि भोरे भाय की, गोरे मुख मुसकानि।
लगनि लटकि आली गरे, चित खटकति नित आनि ॥२५५॥

शब्दार्थ—भोरे भाय की = भोलेपन की। खटकति = सालती है, दुख देती है।

(वचन)—नायक-वचन सखी-प्रति (स्मरण दशा)।

भावार्थ—(उस नायिका की) वह भोलेपन की चितवन, वह गोरे मुख की हँसी और वह लटक-लटक कर सखी के गले से लगना, ये चेष्टाएँ नित्य मेरे चित में खटका करती हैं।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

दो०—छिन छिन में खटकति हिय, सुखरी भीर में जात।
कहि जु चली अनही चितै, ओठनि ही बिच बात ॥२५६॥

शब्दार्थ—अनही चितै=बिना देखे ही (मेरी ओर न देख कर)।

भावार्थ—हे सखी, उस दिन जो बड़ी भीड़ में जाते समय बिना मेरी ओर देखे हुए ही अपने ओठों में ही कुछ बात कह कर चली गई थी, वह बात प्रति क्षण मेरे हृदय में खटकती है (कि वह कौन सी बात थी, जो ओठों में ही कह कर चली गई)।

अलंकार—स्मरण।

दो०—चुनरी स्याम सतार नभ, मुख ससि की अनुहारि।
नेह दबावत नींद लौं, निरखि निसा सी नारि ॥२५७॥

शब्दार्थ—सतार = तारों सहित। अनुहारि = समान।

भावार्थ—स्याम चूनरी तारों से भरा आकाश है और मुख चन्द्रमा के समान है ही; रात्रि के समान इस नायिका को देख कर प्रेम नींद की तरह मुझे दबाता है (इसे देख कर इस पर आसक्ति पैदा होती है)।

अलंकार—पहले चरण में रूपक, दूसरे में धर्मलुप्ता, तीसरे में पूर्णोपमा, चौथे में धर्मलुप्ता (अलंकारों की इतनी भरमार करना बिहारी का ही काम है)।

दो०—मैं लै दयो लयो सु कर, छुवत छनकि गौ नीर।
लाल तिहारो अरगजा, उर ह्वै लग्यौ अबीर ॥२५८॥

शब्दार्थ—छनकि गो=भाफ बनकर उड़ गया (सुख गया)। अरगजा=कपूर, चन्दन, कस्तूरी इत्यादि से बना हुआ लेप।

(वचन)—सखी-वचन नायक-प्रति, नायिका-विरह-वर्णन।

भावार्थ—हे लाला, तुम्हारा भेजा हुआ अरगजा मैं लेकर उसके पास गई और उसे दिया। उसने ज्यों ही उसे हाथ से छुवा कि तुरन्त ही उसका पानी सूख गया और वह अरगजा उसके शरीर से अबीर होकर लगा (विरह से इतनी गर्मी उसके शरीर में है।

अलंकर—अत्युक्ति—(विरह की)।

दो०—तोपर वारों उरबसी, सुनि राधिके सुजान।
तू मोहन के उर बसी, ह्वै उरबसी-समान ॥२५९॥

शब्दार्थ—उरबसी=(१) अप्सरा विशेप (२) धुकधुकी।

(वचन)—सखी वचन। नायक की ओर से मानमनावन।

भावार्थ—हे राधिका, तू ऐसी चतुरा है कि जी चाहता है कि तुझपर उरबसी को निछावर कर दूँ, क्योंकि तू श्रीकृष्ण के हृदय में धुकधुकी के समान बसती है।

अलंकार—यमक (वहै शब्द फिरि फिरि परै, अर्थ औरई और)।

दो०—हँसि उतारि हिय तें दई, तुम जु वाहि दिन लाल।
राखति प्रान कपूर ज्यों, वहै चुहटनी माल ॥२६०॥

शब्दार्थ—चुहटनी=गुञ्जा, घुंघची।

(वचन)—दूती-वचन नायक-प्रति। नायिका की ओर से विरह-निवेदन।

भावार्थ—हे लाल ··· दिन जो तुमने हँसकर गुंजा की माला अपने ··· से उता··· उसे दी थी, वही गुंजमाला उसके कपूर-

रूपी प्राणों की रक्षा कर रही है (अर्थात् उसका सहारा न होता तो उसके प्राण कपूर की तरह उड़ गये होते)।

[विशेष]—कपूर को जब किसी अन्य वस्तु यथा लौंग, मिर्च गुञ्जा इत्यादि का संग मिल जाता है तब वह नहीं उड़ता, अन्यथा शीघ्र ही उड़ जाता है।

अलंकार—काव्यलिंग (गुञ्जमाल में प्राण रखने की सामर्थ्य प्राणों को 'कपूर' कहकर आरोपित की, यही युक्ति से अर्थ-समर्थन है)।

दो०—रही लट्टू ह्वै लाल हौं, लखि वह बाल अनूप।
कितो मिठास दयो दई, इते सलोने रूप ॥२६१॥

शब्दार्थ—लट्टू होना=आसक्त होना। मिठास=माधुर्य। सलोना=सुन्दर (नमकीन)।

(वचन)—दूती-वचन नायक-प्रति। नायिका के रूप की प्रशंसा करके प्रेम उत्पन्न कराती है।

भावार्थ—हे लाल, मैं तो उस अनुपम बाला को देख लट्टू हो रही हूँ। ईश्वर ने न जाने इतने सलोने रूप में कितना माधुर्य दिया है। (तात्पर्य यह है कि जब मैं स्त्री होकर उसके रूप पर लट्टू हो गई, तो आप तो पुरुष हैं, न जाने देखने पर आप उसे कितना चाहेंगे!)

अलंकार—पूर्वार्द्ध में संबंधातिशयोक्ति। उत्तरार्ध में विरोधाभास।

दो०—सोहति धोती सेत में, कनक बरन तन बाल।
सारद-बारद-बीजुरी,-भा रद कीजत लाल ॥२६२॥

शब्दार्थ—सारद-बारद=शरद ऋतु का बादल। बीजुरी-भा=बिजली की आभा। रद कीजत=बेकाम कर देती है, मात कर देती है।

(वचन)—दूती-वचन नायक-प्रति। नायिका का सौन्दर्य वर्णन।

भावार्थ—हे लाल, वह सोने के से रंगवाली बाला जब सफेद धोती पहनती है, तब शरद ऋतु के बादल की बिजली की आभा को मात कर देती है।

अलंकार—प्रतीप और वृत्यनुप्रास ।

दो०—वारौं बलि तो दृगनि पै, अलि खंजन मृग मीन ।
आधी डीठि चितौनी जिन, किये लाल आधीन ॥२६३॥

शब्दार्थ—वारौं = निछावर कर दूँ । आधीन = वशीभूत ।

भावार्थ—मैं बलिजाऊँ, तेरे इन नेत्रों पर भ्रमर, खंजन, मृग और मछली निछावर कर दूँ, जिन नेत्रों को आधी दृष्टि से तूने नायक को अपने वश में कर लिया है ।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में दूसरी तुल्ययोगिता । उत्तरार्द्ध में दूसरी विभावना (आधी दृष्टि से पूर्ण कार्य) ।

दो०—देखत चूर कपूर ज्यौं, उपै जाय जनि लाल ।
छिन छिन जाति परी खरी, छीन छबीली बाल ॥२६४॥

शब्दार्थ—चूर = चूर्ण । उपैजाय = उड़जाय, बिलाय जाय ।

(वचन)—दूती-वचन नायक-प्रति । विरह-निवेदन ।

भावार्थ—हे लाल, ऐसा न हो कि देखते-ही-देखते कपूर के चूर्ण के समान विलीन हो जाय । वह छबीली बाल, तुम्हारे विरह में, प्रतिक्षण अति दुर्बल होती जाती है ।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में पूर्णोपमा । उत्तरार्द्ध में वीप्सा और छेकानुप्रास ।

दो०—छिनकु छबीले लाल वह, जौ लगि नहिं बतराय ।
ऊख महूख पियूष की, तौ लगि भूख न जाय ॥२६५॥

शब्दार्थ—महूख=शहद । पियूष=अमृत ।

(वचन)—दूती नायिका की बोली की मिठास का वर्णन करके नायक का प्रेम उत्तेजित करती है ।

भावार्थ—हे लाल, जब तक वह नायिका एक क्षणमात्र बात नहीं कर लेती, तब तक ऊख, मधु और अमृत को भूख ही नहीं जाती

(अर्थात् ऊख, मधु और अमृत भी उससे वार्ता करने के भूखे रहते हैं और वार्ता करते समय उसीके वचनों से मिठास ग्रहण करते हैं)।

[विशेष]—जब ऊख, पियूष इत्यादि उससे वार्ता करने के भूखे रहते हैं और उसी की वाणी से मधुरता पाते हैं। तब उसकी वाणी कितनी मीठी होगी अनुमान करने की बात है।

अलंकार—सम्बन्धातिशयोक्ति। (ऊख, महूख, पियूष के संबंध से वाणी में अतिशय माधुर्य जताया गया है। उत्तरार्द्ध में वृत्यनुप्रास।

दो०—नागरि विविध विलास तजि, बसी गँवेलिन माहिं।
मूढ़नि में गनिबी की तौ, हूठ्यौ दै अठिलाहि ॥२६६॥

शब्दार्थ—नागरि = कोई नगर-निवासिनी चतुरा नायिका। गँवैली = (जैसे वन से वनैली, वैसे ही गाँव से गँवैली) ग्राम-निवासिनी स्त्रियाँ, गँवारिनें। मूढ़नि में गनिबी = गाँववाली स्त्रियाँ तुझे मूर्खा ही समझेंगी। हूठ्यौ दै = गँवारपना करके। अठिलाहि = इठलाओ (विधि क्रिया)।

[नोट]—देखो नोट दोहा नं० ६६३।

[विशेष]—कवि एक सच्चा अनुभव वर्णन करता है। (जिस समाज में रहो वैसा ही आचरण रक्खो)।

भावार्थ—कोई चतुरा नागरी स्त्री नगर के अनेक प्रकार के भोग-विलास छोड़कर किसी देहात में गँवारिनों में जा बसी है। (वे गँवारिनें उसे मूर्खा ही समझती हैं और गँवारपन से अठिलाती हैं अर्थात् उसकी हँसी उड़ाती हैं, अतः कवि कहता है) कि तू मूर्खाओं में गिनी जायगी, नहीं तो तू भी इन्हीं की तरह गँवारपन से अठिलाया कर।

अलंकार—विकल्प।

दो०—पियमन रुचि ह्वैबो कठिन, तनरुचि होत सिंगार।
लाख करौ आँखि न बढ़ैं, बढ़ैं बढ़ाये बार ॥२६७॥

शब्दार्थ—तनरुचि = शरीर की शोभा।

[विशेष]—सवति को शृंगार करते देख नायिका घबराई है कि

कहीं ऐसा न हो कि नायक की रुचि इसकी ओर हो जाय। इस पर सखी समाधान करती है।

भावार्थ—नायक के मन में रुचि पैदा होना कठिन है; क्योंकि नायक तो प्रेम से वशीभूत होता है (शृंगार से नहीं)। हाँ, शृंगार से तन की शोभा बढ़ जाती हैं। लाख उपाय करे, आँख तो बढ़ेगी नहीं, बढ़ाने से बाल बढ़ सकते हैं (अर्थात् स्वाभाविक सौन्दर्य और नेत्र द्वारा प्रकट किया जानेवाला प्रेम तो बढ़ेगा नहीं और केवल सिंगार से नायक मोहित हो नहीं सकता, तू क्यों घबराती है)।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास।

दो०—नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं बिकास इहिकाल।
अली कली ही सों बँध्यो, आगे कौन हवाल ॥२६८॥

शब्दार्थ—पराग = पुष्परज। मधु = मकरंद। बिकास = प्रफुल्लता। अली = भौंरा। हवाल = दशा।

भावार्थ—न पराग है, न मधुर मकरन्द है, न इस समय पूर्ण विकास ही है, तब भी हे भ्रमर, तू कली ही से बँध रहा है तो आगे (जब इस कली में पराग, मकरन्द और पूर्ण विकास होगा तब) तेरी क्या दशा होगी।

अलंकार—अन्योक्ति।

[नोट]—यही दोहा इस ग्रन्थ का मूल कारण माना जाता है।

दो०—टुनहाई सब टोल में, रही जु सौति कहाय।
सु तैं ऐंचि प्यो आपु त्यों, करी अदोखिल आय ॥२६९॥

शब्दार्थ—टुनहाई = टोना करनेवाली। टोल = टोला, मोहल्ला। त्यों = तरफ। अदोखिल = दोषरहित, निष्कलंक।

(वचन)—नव-वधू-प्रति सखी-वचन। रूप की प्रशंसा। (स्वाधीनपति का नायिका)।

भावार्थ—तेरी सवत समस्त मोहल्ला में जादूगरनी कहला रही थी

(सबको अपने रूप पर मोहित कर लेती थी), सो तूने आकर और अपने पति को अपनी ओर खींच कर (अपने रूप-गुण पर आसक्त करके) उसे कलंक-रहित कर दिया।

अलंकार—उल्लास (अपने रूप गुण से सवति को कलंक रहित कर दिया)।

दो०—देखत कछु कौतुक इतै, देखौ नेकु निहारि।
कब की इकटक डटि रही, टटिया अँगुरिन फारि ॥२७०॥

शब्दार्थ—कौतुक=तमाशा। डटि रही = देख रही है।

[विशेष]—पूर्वानुराग में परकीया नायिका नायक को देख रही है। यह दशा सखी नायक को दिखला रही है।

भावार्थ—हे लाल, यदि कुछ तमाशा देखना चाहते हो तो इधर नजर फैलाकर देख लो। अँगुलियों से टट्टी को फाड़कर बड़ी देर से वह नायिका तुमको टकटकी लगाकर देख रही है।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

दो०—लखि लोयन लोयननि को, को इन होइ न आज।
कौन गरीब निवाजियो, कित तूठ्यौ रतिराज ॥२७१॥

शब्दार्थ—लोयन=(लावण्यमय) सुन्दर। लोयननि=नेत्रों। को इन होइ न=कौन इनका न हो जायगा। तूठ्यौ=तुष्ट हुआ है। रतिराज=कामदेव।

[विशेष]—नायिका ने आँखों में काजल लगाया है।

भावार्थ—तेरे इन नेत्रों का लावण्य देखकर आज कौन इनके वशीभूत न होगा! कहिये आज किस गरीब पर कृपा होने वाली है और किस ओर कामदेव प्रसन्न हुआ है?

[नोट]—कोई-कोई इस दोहा में कुलटा वा गणिका नायिका मानते हैं, पर हमारी सम्मति में यहाँ केवल सखी का परिहास है। नायिका स्वकीया ही है।

अलंकार—प्रथम चरण में यमक, द्वितीय में काकु और उत्तरार्द्ध में पर्यायोक्ति—("कछु रचना सों बात"—यहाँ वचन-रचना से अति सौंदर्य लक्षित है)।

दो०—मन न धरति मेरो कह्यो, तू आपने सयान।
अहै परनि पर प्रेम की, परहथ पारनि प्रान ॥२७२॥

शब्दार्थ—सयान = चतुराई। परनि=पड़ना। परहथ = पराये हाथ में। पारनि = डालना, देना।

[अन्वय]—पर प्रेम की परनि, परहथ प्रान पारनि अहै।

(वचन)—सखी की शिक्षा नवल वधू-प्रति।

भावार्थ—अपनी चतुराई के बल पर तू मेरा कहना नहीं मानती (मैं मना करती हूँ कि पर-पुरुष पर प्रेम न कर, क्योंकि) पर-पुरुष के प्रेम में पड़ना, अपने प्राण पराये हाथ में देना ही है।

अलंकार—हेतु (द्वितीय)।

दो०—वहकि न इहि बहिनापने, जब तब बीर बिनासु।
बचै न बड़ी सबील हू, चील्ह-घोंसुआ माँसु ॥२७३॥

शब्दार्थ—बीर = मित्र (सखी)। सबील = यत्न, युक्ति। घोंसुआ = घोंसला।

[विशेष]—किसी परकीया नायिका ने नायक की विवाहिता स्त्री से बहिनापा जोड़ा। इस सम्बन्ध पर विश्वास करके विवाहिता स्त्री नायक को उस परकीया के घर आने-जाने से नहीं रोकती। इस पर विवाहिता की सखी कहती है।

भावार्थ—इस बहिनापा से धोखा मत खा, हे सखी, इससे कभी-न-कभी हानि हो जायगी। बहुत यत्न से भी चील्ह के घोंसले में मांस रक्षित नहीं रह सकता।

अलंकार - दृष्टान्त।

दो०—मैं तोसों कै बा कह्यो, तू जिनि इन्हैं पत्याय।
लगालगी करि लोयननि, उर में लाई लाय ॥२७४॥

शब्दार्थ—के बा = कितने बार। पत्याय = विश्वास कर। लगा-लगी = रगड़, मिलन (यहाँ प्रेम की लगन)। लाई = लगाई। लाय = अग्नि।

(वचन)—पूर्वानुराग में परकीया नायिका-प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—मैंने तुझसे के बार कहा कि तू इन (नेत्रों) का विश्वास न करना। तूने माना नहीं। देख, आज वही नतीजा हुआ कि रगड़ तो खाई लोचनों ने (देखा-देखी हुई आँखों से) और आग लगी हृदय में।

अलंकार—असंगति (प्रथम)।

दो०—सन सूको बीत्यो बनौ, ऊखौ लई उखारि।
अरी हरी अरहरि अजौं, धर धरहरि हिय नारि ॥२७५॥

शब्दार्थ—सूको = सूख गया। बीत्यो = हो चुका, नष्ट हो चुका। बन = कपास के पेड़। धरहरि = धैर्य।

(वचन)—अनुशयाना नायिका-प्रति सखी-वचन (नायिका ग्रामीण) सन, कपास और ऊख के खेतों को कटते हुए देख संकेत नष्ट होने का सोच करनेवाली नायिका का समाधान करती है।

भावार्थ—सन का खेत सूख गया, कपास का खेत भी नष्ट हो चुका और ऊख भी काट ली गई तो क्या हुआ, अरहर तो अब भी हरी है, अतः जी में धीरज धर (घबरा मत)।

अलंकार—काव्यलिंग (धीरज धरने का कारण युक्ति से बतलाती है)।

दो०—जौ वाके तन की दशा, देख्यौ चाहत आप।
तौ बलि नेकु विलोकिये, चलि अचकाँ चुपचाप ॥२७६॥

शब्दार्थ—अचकाँ = अचानक।

(वचन)—दूती-वचन नायक-प्रति। विरह-निवेदन।

भावार्थ—सरल ही है।

[विशेष]—चुपचाप से तात्पर्य यह कि वह तुम्हारा आगमन न

जानने पावे, नहीं तो हर्ष से फूल उठेगी और उसकी दुर्बलता का तुमको अनुभव न होगा।

अलंकार—संभावना (जौ, तौ शब्दों से स्पष्ट है)।

दो०—कहा कहौं वाकी दसा, हरि प्रानन के ईस।
बिरह ज्वाल जरिबो लखे, मरिबो भयो असीस ॥२७७॥

भावार्थ—हे प्राणेश कृष्ण, उसकी दशा मैं क्या कहूँ। उसे विरह की ज्वाला से जलते हुए देख मुझे तो ऐसा भान होता है कि उसका मर जाना ही उसके लिए असीस-सम सुखदाई होगा।

अलंकार—लेश (बुराई को भलाई जानती है, मरने को असीस मानती है)।

दो०—नेकु न जानी परत यों, पर्यो बिरह तन छाम।
उठति दिया लौं नादि हरि, लिये तिहारो नाम ॥२७८॥

शब्दार्थ—छाम=दुबला। नादि उठति=चैतन्य हो जाती है।

भावार्थ—हे कृष्ण, राधिका का शरीर विरह में इतना दुर्बल हो गया है कि बिछौने पर पड़ी हुई मालूम ही नहीं होती कि वह है। केवल तुम्हारा नाम लेने से बुझते दिया की तरह चैतन्य हो उठती है।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—दियो सो सीस चढ़ाय लै, आछी भाँति अएरि।
जापै सुख चाहत लियो, ताके दुखहिं न फेरि ॥२७९॥

शब्दार्थ—अएरना=अंगीकार करना।

भावार्थ—जो कुछ ईश्वर ने दिया है (कष्ट वा विपद) उसे अच्छी तरह से अंगीकार करके अपने शीश पर चढ़ाले, जिससे सुख चाहते हो उसके दिये हुए दुःख को लौटा मत।

[विशेष]—इसका अर्थ शृंगार रस में भी लग सकता है। सखी-वचन विरहिनी नायिका प्रति।

अलंकार—विचित्र ('जहाँ करत उद्यम कछू, फल चाहत विपरीत'—सुख चाहते हो तो पहले दुःख सहो)।

दो०—कहा लड़ैते दृग करे, परे लाल बेहाल।
कहुँ मुरली कहुँ पीतपट, कहूँ मुकुट बनमाल ॥२८०॥

शब्दार्थ—लड़ैते=लाड़िले। लाल=कृष्ण। बेहाल=व्याकुल।

(वचन)—दूती-वचन नायिका-प्रति। नायक का विरह-निवेदन।

[विशेष]—दम्पति आलंबन। सखी उद्दीपन। मूर्च्छा-दशा जड़ता संचारी। बेहाल पड़े अनुभाव। रति स्थायी। वियोग शृंगार की पूर्ण सामग्री।

भावार्थ—तूने अपने नेत्रों को कैसा लाड़िला कर दिया है। तेरे नेत्रों के मारे (नेत्रों की सुन्दरता देख) कृष्ण बेहाल पड़े हैं। मुरली, पीताम्बर, मुकुट और वनमाल किसी की सुध नहीं कि कहाँ है।

अलंकार—व्याजस्तुति।

दो०—तू मोहन मन गड़ि रही, गाढ़ी गड़नि गुवालि।
उठै सदा नटसाल लौं, सौतिन के उर सालि ॥२८१॥

शब्दार्थ—मोहन=जो सबको मोहता है अर्थात् श्रीकृष्ण। गड़ि रही=बसती है। गाढ़ी गड़नि=सुदृढ़ता से। गुवालि=ग्वालिन। नटसाल=तीर की नोक का वह भाग, जो टूटकर घाव के भीतर रह जाता है। सालि उठै=पीड़ा देती है।

(वचन)—सखी नायिका की प्रशंसा करती है।

भावार्थ—हे ग्वालिन, तू कृष्ण के मन में ऐसी गाढ़ी गड़नि से गड़ी है, कि सौतियों के हृदय में टूटी गाँसी की तरह पीड़ा दे उठती है।

अलंकार—पूर्णोपमा से पुष्ट की गई असंगति (गड़ी तो है कृष्ण के मन में, पर खटकती है सौतिन के हृदय में)।

दो०—बड़े कहावत आप को, गरुवै गोपीनाथ।
तौ बदिहौं जौ राखिहौ, हाथन लखि मन हाथ ॥२८२॥

शब्दार्थ—बढ़िहौं=तुम्हारा बड़प्पन मान लूगी।

(वचन)—दूती नायिका के हाथों की प्रशंसा करके नायक को प्रेम के लिए उत्तेजित करती है।

भावार्थ—हे गोपीनाथ, आप अपने को सबसे बड़े और भारी वजन वाले (प्रतिष्ठित) कहलवाते हो। पर जब उसके हाथों को देखकर तुम अपना मन अपने हाथ में रख लोगे तब मैं तुम्हारा बड़प्पन मानूँगी ?

अलंकार—संभावना।

दो०—रही दहेड़ी ढिग धरी, भरी मथनिया बारि।
फेरति करि उलटी रई, नई बिलोवनिहारि ॥२८३॥

शब्दार्थ- मथनिया=वह मटकी जिसमें दही डालकर मथते हैं। रई=मथानी, जिससे दही मथा जाता है।

[विशेष]—नवीन अनुराग में नायिका को 'विभ्रम' हाव हुआ है। नायक कहीं निकट ही है। उसे देखकर नायिका की जो दशा हुई है, वही दशा कोई सखी अन्य सखी-प्रति कहती है। दम्पति आलंबन भाव, विभ्रम हाव अनुभाव, मोह संचारी भाव, रति-स्थायी। वियोग शृंगार की पूर्ण सामग्री। (अथवा नायिका-प्रति ही किसी सखी का वचन हो सकता है)।

भावार्थ—हे सखी, उस अनोखी दही मथनेवाली का हाल सुन। दही की भरी मटकी तो निकट ही रक्खी रही। मथनी में पानी भरा और उलटी मथानी से उसी को मथती रही (नायक को देख-देख कर उसे ऐसा विभ्रम हुआ)।

अलंकार—भ्रान्ति।

दो०—कोरि जतन करिये तऊ, नागरि नेहु दुरै न।
कहे देत चित चीकनो, नई रुखाई नैन ॥२८४॥

शब्दार्थ—कोरि=करोड़। चीकनो=स्नेह युक्त। रुखाई=अनखान, क्रुद्ध होना।

(वचन)—सखी-वचन नायिका-प्रति।

भावार्थ—हे नागरी (चतुरा), करोड़ यत्न करो तो भी प्रेम छिपता नहीं। यह नई अर्थात् बनावटी रुखाई ही कहे देती है कि तुम्हारा चित्त स्नेह से स्निग्ध है।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में तीसरी विभावना, उत्तरार्द्ध में पाँचवीं विभावना।

दो०—पूछे क्यों रूखी परति, सगिबगि रही सनेह।
मनमोहन छबि पर कटी, कहै कँट्यानी देह ॥२८५॥

शब्दार्थ—रूखी परति=क्रुद्ध होती है। सगिबगि रही=शराबोर हो रही है। कटी=रीझी है। कंट्यानी देह=कंटकित (रोमांचित) शरीर।

(वचन)—सखी का वचन नायिका-प्रति।

भावार्थ—पूछने पर क्रुद्ध क्यों होती है, प्रेम में तो शराबोर हो रही है। तू कृष्ण की छवि पर रीझी है, यह बात तो तेरा रोमांचित शरीर ही कहे देता है।

अलंकार—अनुमान प्रमाण।

दो०—तू मति मानै मुकुतई, किये कपट बत कोटि।
जौ गुनही तौ राखिये, आँखिन माहि अँगोटि ॥२८६॥

शब्दार्थ—मुकुतई = छुटकारा, जुदाई। बत=बात। गुनही= गुनहगार, दोषी। अँगोटि राखिये=बंद कर रखिये, क़ैद कर रखिये।

(वचन)—शठ नायक का वचन मानिनी नायिका-प्रति।

भावार्थ—हे प्रिया, तू ऐसा मत जान कि मैंने तुझसे प्रेम छोड़ दिया है, लोगों ने तुझसे अनेक कपट की बातें की हैं (लोगों की कपटमय बातों से मेरी ओर से तुझे शंका पैदा हो गई है), इतने पर भी यदि तू मुझे गुनहगार ही समझती है तो अपनी आँखों में मुझे बंद कर रख (नजरबंद रक्खो)।

अलंकार—पर्यायोक्ति (कछु रचना सों बात)।

[नोट]—इस दोहे का अर्थ "ज्यौं गुनही त्यौं" पाठान्तर करने से शान्त रस में भी लग सकता है। कोई सगुण ब्रह्म का उपासक हेतुवादी विद्वान् से कहता है कि :—

भावार्थ—चातुर्यमय (कपटमय) करोड़ बातों के करने से भी मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती (तुम ऐसा मत मानो कि चतुराई की बातों से मुक्ति हो जायगी)। ईश्वर के सगुण रूप को गुनहगार की तरह आँखों में कैद करना चाहिये, तब मुक्ति होगी (अर्थात् सगुण रूप परमेश्वर—राम कृष्ण इत्यादि—की छवि को, सदा आँखों में रखना चाहिये)।

अलंकार—उपमेय लुप्ता।

दो०—बाल बेलि सूखी सुखद, यहि रूखे रुख घाम।
फेरि डहडही कीजिये, सुरस सींचि घनश्याम ॥२८७॥

शब्दार्थ—डहडही=हरी। सुरस=(१) प्रेम (२) सुष्ठु जल। घनश्याम=(१) कृष्ण (२) काला मेघ।

(वचन)—मानी नायक प्रति-नायिका की दूती का वचन।

भावार्थ—हे सुखद (सुखदायक नायक), वह बेलि-रूपी बाला तुम्हारे इस मान-रुपी घाम से सूख रही है। सो हे घनश्याम, अपने प्रेमरूपी जल से सींच कर उसे फिर हरी (सरसब्ज) कीजिये।

अलंकार—'बाल बेलि और रूखे रुख घाम' में रुपक। 'सुरस और घनश्याम' में श्लेष। 'घनश्याम' को मुख्यता देने से यहाँ परिकरांकुर मानना चाहिये।

दो०—हरि हरि बरिबरि करि उठति, करि करि थकी उपाय।
वाको जुर बलि बैद जू, तो रस जाय तु जाय ॥२८८॥

शब्दार्थ—बरिबरि करि उठति=बड़बड़ा उठती है। जुर=ज्वर, बुखार। रस=(१) औषध (२) प्रेम (संयोग)। तु=तो।

(वचन)—विरह की व्याधिदशा का वर्णन, दूती-वचन नायक-प्रति।

भावार्थ—हरि हरि शब्द कहकर बड़बड़ा उठती है, मैं तो उपाय कर कर हार गई। मैं बलिजाऊँ, हे वैद्यजी, उसका ज्वर तुम्हारे रस (प्रेम) से शायद ... हो जाय (अतः चलिये)।

वीप्सा और अनुप्रास, उ

दो०—तू रहि सखि हौं ही लखौं, चढ़ि न अटा बलि बाल।
सब ही बिनु ससि ही उदै, दैहैं अरघु अकाल ॥२८९॥

शब्दार्थ—अरघु = अर्घ्यपाद। अकाल—बेवक्त, समय से पहले।

(वचन)—सखी-वचन नायिका-प्रति। रूप की प्रशंसा। व्यंग्य।

भावार्थ—मैं बलि जाऊँ, हे बाला! तू अटारी पर मत चढ़, तू यहीं रह। हे सखी, मैं ही चढ़कर देखती हूँ (कि चंद्रमा उदय हुआ कि नहीं। तेरे चढ़ने से सब स्त्रियाँ यही जानेंगी कि चंद्रमा उदय हो आया और) बिना चन्द्रोदय हुए ही असमय सब अर्घ देने लगेंगी (अतः उनका व्रत भंग हो जायगा)।

[विशेष]—माघ बदी ४ को संकष्ट चौथ का व्रत स्त्रियाँ करती हैं और चंद्रोदय होनेपर अर्घ देकर गणेश का पूजन करके फलाहार करती हैं।

अलंकार—पर्यायोक्ति (कछु रचना सों बात—व्यंग से रूप की अधिकाई)।

दो०—दियो अरघ नीचे चलौ, संकट भानैं जाय।
सुचिती ह्वै औरो सबै, ससिहिं बिलोकैं आय ॥२९०॥

शब्दार्थ—संकट भानैं जाय = जाकर संकष्ट चौथ का व्रत तोड़ें अर्थात् जाकर फलाहार करें (भूख से सब व्याकुल होंगी)। भानना = भंग करना, (तोड़ना, रोजा तोड़ना, इत्यादि)। सुचिती = सावधान। औरो सबै = अन्य स्त्रियाँ भी।

भावार्थ—हे सखी, हम अर्घ दे चुकीं, अब अटारी से नीचे चलो, चलकर फलाहार करें, और अन्य स्त्रियाँ भी सावधान होकर चंद्रमा को आकर देखें और पूजन करें (अर्थात् तुम्हारे मुखचन्द्र को देखकर सबको सन्देह होता है कि चौथ के दिन यह पूर्ण चन्द्र कहाँ से उदय हुआ, अतः सब दुचित्ती हैं)।

अलंकार—पर्यायोक्ति (कछु रचना सों बात)।

—वे ठाढ़े उमदाहु उत, जल न बुझै बड़वागि।
जाही सों लाग्यो हियो, ताही के हिय लागि ॥२९१॥

शब्दार्थ—उमदाहु=उन्मत्त की सी चेष्टा करो। लाग्यो हियो=प्रेम गा है।

भावार्थ—देख, वे (नायक) वह खड़े है, उसी ओर उन्मत्त की चेष्टा कर, (मुझसे क्यों लपटती है) जल से बड़वाग्नि नहीं बुझती मैं तेरी अभिलाषा पूर्ण न कर सकूँगी), जिससे मन लगा है, उसी ो छाती से लग (तो कामना पूर्ण हो)

अलंकार—लोकोक्ति।

दो०—अहे कहै न कहा कह्यो, तो सों नन्दकिसोर।
बड़बोली कत होत बलि, बड़े दृगनि के जोर ॥२९२॥

शब्दार्थ—बड़बोली=बड़ी बात कहनेवाली, ऐसी बात कहनेवाली जो उचित नहीं है।

[विशेष]—कोई कलहान्तरिता नायिका खेदयुक्त चुपचाप बैठी है, सखी उससे पूछती है

भावार्थ—हे सखी, बतलाती क्यों नहीं, तुझसे कृष्ण ने क्या कहा है, जिससे तू खेदित हो रही है। अपने बड़े-बड़े नेत्रों के बल पर मैं बलिहारी जाऊँ, तू क्यों इतनी बड़बोली होती जाती है कि कृष्ण को अनुचित बात कहकर रुठा देती है और फिर पछताती है।

अलंकार—लोकोक्ति।

दो०—मैं यह तो ही में लखी, भगति अपूरब बाल।
लहि प्रसादमाला जु भौ, तन कदम्ब की माल ॥२९३॥

शब्दार्थ—भगति=भक्ति। अपूरब=(अपूर्व) जो पहले देखी न गई हो। तन कदम्ब की माल भो=शरीर रोमांचित हो उठा।

[विशेष]—किसी अन्तरङ्गा सखी ने नायक की भेजी हुई माला बहिरंगा सखियों के सामने ठाकुरजी की प्रसाद-माला कहकर नायिका

को दी है। नायक की माला पाकर नायिका को रोमांच हुआ। रोमांच देख सर्प समझ कर कोई बहिरंगा सखी परिहास करती है। नायिका लज्जिता।

भावार्थ—हे बाला, मैंने ऐसी अपूर्व भक्ति तुझी में देखी कि ठाकुरजी की प्रसाद-माला पाकर तुझे रोमांच हो आया (अर्थात् कम-उम्र स्त्रियों में ठाकुरजी की ऐसी भक्ति होना अपूर्व ही है, हाँ वृद्धा स्त्रियों में हो सकती है)।

अलंकार—धर्म-वाचक-लुप्तोपमा।

दो०—ढोरी लाई सुनन की, कहि गोरी मुसुकात।
थोरी थोरी सकुच सों, भोरी भोरी बात ॥२९४॥

शब्दार्थ—ढोरी=बानि, आदत। लाई=लगाली है। सकुच=लज्जा।

[अन्वय]—सकुच सों थोरी थोरी भोरी भोरी बात कहि गोरी मुसुकात, ताहि सुनन की मैं ढोरी लाई।

(वचन)—दूती का नायक-प्रति। मुग्धा की प्रशंसा करके प्रेम कराना चाहती है।

भावार्थ—लज्जायुक्त होकर थोड़ी सी भोली बातें जो वह गोरी नायिका कहती और मुसुकाती है (उसकी इस चेष्टा में मुझे ऐसा मजा आता है कि) मैंने उसकी बातें सुनने की बानि लगा ली है (अर्थात् मैं स्त्री होकर जब उसकी इस चेष्टा से इतनी आनन्दित होती हूँ, तो आप तो पुरुष हैं, आप न जाने कितना मज़ा पा सकते हैं)।

अलंकार—छेकानुप्रास और वीप्सा।

दो०—चित दै चितै चकोर त्यों, तीजे भजै न भूख।
चिनगी चुगै अँगार की, चुगै कि चन्द-मयूख ॥२९५॥

शब्दार्थ—चितै=देख। त्यों=तरफ। तीजे भजै न भूख=भूख में भी तीसरी वस्तु पर मन नहीं चलाता। मयूख=किरण।

(वचन)—मानिनी नायिका-प्रति नायक की सखी का वचन। मान-मोचन उद्देश।

भावार्थ--हे लाड़िली ! चित्त देकर चकोर की ओर देखो (तुम्हारे मुखचन्द्र का चकोर तुम्हारे सामने खड़ा है और उसकी दशा ठीक चकोर की सी ही है) कि वह भूख के समय भी तीसरे को नहीं भजता। या तो अंगार की चिनगी ही चुगता है या चन्द्र की किरणों को ही चूसता है (अर्थात् या तो तुम्हारी विरहाग्नि से दग्ध ही हो जायगा या तुम्हारे मुखचन्द्र के दर्शन से परितृप्ति ही प्राप्त करेगा)।

अलंकार - अनुप्रास, पदार्थावृत्त दीपक और विकल्प।

[विशेष]—अन्योक्ति अलंकार मान कर भी इसका अर्थ हो सकता है।

दो०—कब को ध्यान लगी लखौ, यह घर लगिहै काहि।
डरियत भृङ्गी कीट लौं, जिन वहई ह्वै जाहि ॥२९६॥

शब्दार्थ—यह घर लगिहै काहि=इस घर की सँभार कौन करेगा, इस तरह की चाल से तो यह घर ही बरबाद हो जायगा। भृङ्गी=एक पंखदार कीड़ा जो अन्य छोटे-छोटे कीड़ों को पकड़ कर अपनी गुफा में रखता है और उसपर इतना भनभनाता है कि उसके भय से वह छोटा कीड़ा उसीके ध्यान में तल्लीन होकर वही रूप धारण कर भृङ्गी ही हो जाता है। इसका वर्णन योग और साहित्य में बहुधा आया है ('भइ गति कीट भृङ्ग की नाँईं। जहँ तहँ मैं देखे रघुराई'—तुलसी)।

(वचन)—पूर्वानुराग में नायिका की दशा का वर्णन, सखी-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—देख सखी, यह नायिका कब से नायक के ध्यान में निमग्न है और घर के काम-काज का कुछ ध्यान ही नहीं है। यदि ऐसी ही दशा रही तो इसके घर की सँभार कौन करेगा। मुझे तो डर है कि कीट-भृङ्गी-न्याय से यह नायिका कहीं नायक ही न हो जाय।

अलंकार—लोकोक्ति।

दो०—रही अचल-सी ह्वै मनो, लिखी चित्र की आहि।
तजे लाज डर लोक को, कहौ बिलोकति काहि ॥२९७॥

शब्दार्थ—अचल = जड़वत् । चित्र = तसवीर । लोक = घर के लोग ।

(वचन)—सखी-वचन पूर्वानुरागिनी नायिका-प्रति, चित्र-दर्शन के समय ।

भावार्थ—हे सखी, तू जड़वत हो रही है (न हिलती है, न डोलती है) लोगों का डर और संसार की लज्जा छोड़कर कहो तो किसको देख रही हो (किसका चित्र देख रही हो) ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

दो०—ठाढ़ी मन्दिर पै लखै, मोहन दुति सुकुमारि ।
तन थाके हू ना थकै, चख चित चतुरि निहारि ॥२९८॥

शब्दार्थ—दुति = छवि । सुकुमारि = नायिका । चख = नेत्र ।

(वचन)—पूर्वानुराग में नायिका की दशा का वर्णन । सखी-वचन सखी-प्रति ।

भावार्थ—हे चतुर सखी, देख, यह सुकुमारी नायिका (जो नज़ाकत के कारण बहुत देर तक खड़ी नहीं रह सकती) आज मकान की अटारी पर खड़ी अपने मनमोहन की छवि देख रही है और शरीर के थक जाने पर भी उसके नेत्र और मन नहीं थकते ।

[नोट]—इस दोहे में शृङ्गार की पूर्ण सामग्री मौजूद है और रूप-छवि की सच्ची परिभाषा भी है । रूप-छवि वही है । जिसको देखते हुए नेत्रों और मन की कभी भी तृप्ति न हो ।

अलंकार—विशेषोक्ति ।

दो०—पल न चलैं जकि सी रही, थकि सी रही उसास ।
अबही तन रितयो कहा, मन पठयो केहि पास ॥२९९॥

शब्दार्थ—पल न चलै = पलक नहीं हिलती, अनिमेष हो रही है । जकिसी रही = भयभीत-सी हो गई है । उसास = प्रश्वास । रितयो = खाली कर दिया ।

(वचन)—परकीया नायिका नायक को टकटकी लगाकर देख रही है, इस पर सखी मज़ाक करती है ।

भावार्थ—तेरी पलकें नहीं चलतीं, तू अनिमेष हो रही है, और साँस भी थक सी गई है। (प्रश्वास नहीं चलती)। अभी इतने ही में (देखने मात्र से) शरीर को चेतनता से खाली कर दिया (धीरज और सावधानी छोड़ दी)। कहो मन को किसके पास भेज दिया है ?

अलंकार—अनुक्तास्पद वस्तूत्प्रेक्षा (जकीसी, थकीसी इत्यादि में)

दो०—नाक मोरि सीबी करै, जितै छबीली छैल।
फिरि फिरि भूलि वहै गहै, पिय कँकरीली गैल ॥३००॥

शब्दार्थ—नाकमोरि=नाक मोड़-मोड़ कर, नाक सिकोड़ कर। सीबी=सीत्कार, सी-सी का शब्द। जितै=जितना ही। छबीली छैल=(छैल छबीली) बनी ठनी, सजी-बजी स्त्री। पिय=नायक।

[विशेष]—स्वकीया नायिका का अपने पति पर इतना अधिक प्रेम है कि नायक के पैर में कंकड़ी गड़ने से उसे पीड़ा का अनुभव होता है और वह नाक मरोड़ कर सी-सी करती है, पर उसकी यह चेष्टा (नाक मरोड़ना और सीत्कार) नायक को अति प्रिय लगती है। इसी भाव का प्रदर्शन इस दोहे में है।

[नोट]—नायिका और नायक सजे-बजे, परन्तु नंगे पैर देव-पूजन-हेतु जा रहे हैं। रास्ते का कुछ हिस्सा कंकरीला है, कुछ अच्छा। प्रेमवश नायक नायिका को अच्छे भाग से चला कर आप कंकरीले रास्ते से चलता है। कंकड़ी गड़ने से नायक अच्छी तरह चल नहीं सकता, कष्ट के अनुभव से डगमगाता है। इससे प्रेमपूर्णा नायिका को कष्ट होता है और वह नाक सिकोड़-सिकोड़ कर सीत्कार करती है। नायक को नायिका की यह चेष्टा पसन्द आती है और वह उस चेष्टा पर विमुग्ध होकर भूल-भूल कर कंकरीली ही गैल से चलता है।

भावार्थ—नाक मरोड़कर वह सजी-बजी बाँकी छैल-छबीली नायिका जितना ही सीत्कार शब्द करती है, उतना ही नायक विमुग्ध होकर रास्ता भूल-भूल कर बार-बार कंकरीला रास्ता ही ग्रहण करता है (क्योंकि वह चेष्टा उसे अच्छी लगती है)।

अलंकार—असंगति (चोट लगे नायक के पैर में, कष्ट का अनुभव हो नायिका के हृदय में)।

चतुर्थ शतक

दो०—हित करि तुम पठयो लगे, वा बिजना की बाय।
टरी तपनि तन की तऊ, चली पसीने न्हाय ॥२०१॥

शब्दार्थ—हित = प्रेम। बिजना = पंखा। बाय=हवा।

भावार्थ—प्रेमपूर्वक जो पंखा तुमने भेजा था, उसकी हवा लगने से उसके तन की विरह-जनित ताप तो मिट गई, वह पसीने से शराबोर हो गई।

[विशेष]-प्यारे का पंखा है, इससे हर्ष संचारी, स्वेद सात्विक भाव।

अलंकार—पंचम विभावना।

दो०—नाम सुनत ही ह्वै गयो, तन औरै मन और।
दबै नहीं चित चढ़ि रह्यो, अबै चढ़ाये त्यौर ॥२०२॥

शब्दार्थ—दबै नहीं = छिपता नहीं है। त्यौर चढ़ाना = भौंह चढ़ाना, क्रुद्ध होना।

(वचन)—सखी-वचन नायिका-प्रति।

भावार्थ—हे लाड़िली, नायक का नाम सुनते ही तेरा तन पुलकित और मन हर्षित हो उठा, इससे मैं जान गई कि वह तेरे चित्त में चढ़ा है, अब त्योरी चढ़ाने से यह बात छिपेगी नहीं।

अलंकार—भेदकातिशयोक्ति।

दो०—नेकौ उहि न जुदी करी, हरषि, जु दी तुम माल।
उर तें बास छुटयो नहीं, बास छुटे हू लाल ॥२०३॥

शब्दार्थ—जुदी = अलग, पृथक्। बास = निवास, बसेरा। बास= सुगन्ध।

(वचन)—सखी-वचन नायक-प्रति।

भावार्थ—हे लाल, तुमने प्रसन्न होकर जो माला उसको दी थी, उसको उसने अपने गले से थोड़ी देर के लिए भी अलग नहीं की। सुगन्ध जाते रहने पर भी अब तक उस सूखी और गन्ध-रहित माला का स्थान हृदय से नहीं छूटा (अब तक पहने है)।

अलंकार—यमक और विरोधाभास।

दो०—परसत पोंछत लखि रहत, लगि कपोल के ध्यान।
कर लै प्यौ पाटल विमल, प्यारिहिं पठये पान ॥२०४॥

शब्दार्थ—परसत=छूता है। लगि कपोल के ध्यान=गालों के ध्यान में लगकर (गालों का स्मरण करके)। पाटल विमल=सुन्दर गुलाब-पुष्प।

(वचन)—सखी का वचन सखी-प्रति, नायक की दशा का वर्णन।

भावार्थ—हे सखी, प्यारी जो सुन्दर गुलाब का फूल भेजती है उसे नायक हाथ में लेकर कभी छूता है, कभी पोंछता है, और कभी गालों का ध्यान करके उसे देखता है (फूल को देखकर कपोलों का स्मरण करता है)। ऐसा करके बदले में प्यारी के पास पान भेज देता है।

[विशेष]—नायिका गुलाब का फूल भेजकर जताती है कि मैं तुम्हारे अनुराग में गुलाब की तरह रँगी हूँ। नायक जवाब में जताता है कि मैं भी पान की तरह तुम्हारा अनुराग हृदय के अन्दर रखता हूँ।

दो०—मन मोहन सों मोह करि, तू घनस्याम निहारि।
कुंजबिहारी सों बिहरि, गिरधारी उर धारि ॥२०५॥

(वचन)—निज मन-प्रति किसी भक्त का वचन।

भावार्थ—हे मन, तू मोहन (कृष्ण) से प्रेम कर, उनकी सुन्दर घनवत् श्याम शरीर की छवि को (ध्यान में) देखा कर। (यदि तू चंचलता ही करना चाहता है तो) वे कुंजों में विहार करनेवाले हैं, उन्हींके साथ-साथ विचरा कर, (तू यदि अपने को बड़ा बली समझता

है और भारी बोझ उठाने का साहसी है तो) वे गिरिधारी हैं, उन्हीं को हृदय में धारण कर।

[विशेष]—कोई-कोई इसका अर्थ शृङ्गार रस में भी लगाते हैं। इस अर्थ में दूती का वचन मानवती नायिका-प्रति होगा। अर्थ यह होगा :- हे लाड़िली, तू काले बादलों को देख (अर्थात् वर्षा ऋतु आ गई, अब काम अधिक सतावेगा, अतः) अब तो मनमोहन (नायक) से प्रेम कर (मान छोड़कर)। कुंजविहारी के साथ कुंजों में विहार कर और उनको अपने गिरिवत उन्नत कुच धारण करने वाले उर (छाती) पर धारण कर अर्थात् छाती से लगाले।

अलंकार—परिकरांकुर।

दो०—मोहि भरोसो रीझिहै, उझकि झाँकि इकबार।
रूप रिझावनहार वह, ये नैना रिझवार ॥२०६॥

शब्दार्थ—उझकि = उचक कर, जरा उठकर।

(वचन)- दूती-वचन परकीया-प्रति।

भावार्थ—मुझे भरोसा है कि तू नायक का रूप देखकर रीझेगी, एक बार जरा खिड़की से झाँककर देख तो ले, क्योंकि तेरे नेत्र रिझवार हैं (अर्थात् रूप के क़द्रदाँ हैं) और वह रूप रिझानेवाला है अत्यन्त सुन्दर है)।

अलंकार—सम, और प्रमाणान्तर्गत 'आत्मतुष्टि'।

दो०—कालबूत दूती बिना, जुरै न आन उपाय।
फिरि ताके टारे बनै, पाके प्रेम लदाय ॥२०७॥

शब्दार्थ - कालबूत = (फा० कालबुद) मेहराब का भराव।

(वचन)—दूती-माहात्म्य, कवि की उक्ति।

भावार्थ—कालबूत-रूपी दूती बिना प्रेम की लदाऊ छत किसी उपाय से जुड़ नहीं सकती। परन्तु, जब प्रेम का लदाव पक्का हो जाय तब उसे टाल देने से ही बात बनती है (अन्यथा नहीं)।

अलंकार—रूपक (सम अभेद)।

(अभिसारिका-वर्णन)

दो०—गोप अथाइन तें उठे, गोरज छाई गैल।
चलि बलि अलि अभिसारिके, भली सँझौखी सैल ॥३०८॥

शब्दार्थ—अथाई = बैठक। सँझौखी = संध्या समय की। सैल = सैर, गश्त।

(वचन)—सखी-वचन परकीया नायिका-प्रति। अभिसार-हेतु प्रार्थना।

भावार्थ—गोपलोग बैठकों से उठकर अपने-अपने संध्या-कृत्य में लग गये, गोधूलि से रास्ते आच्छादित हैं. हे सखी अभिसारिके ! मैं बलिहारी हूँ, तू नायक से मिलने के लिये चल, क्योंकि संध्याटन की अच्छी वेला है।

अलंकार—काव्यलिंग।

दो०—सघन कुञ्ज, घन घनतिमिर, अधिक अँधेरी रात।
तऊ न दुरिहै श्याम यह, दीप-सिखा-सी जात ॥३०९॥

[विशेष]—नायक नायिका को अपने साथ ले जाना चाहता है, सखी बरज कर रुचि बढ़ाती है।

भावार्थ—कुञ्ज सघन हैं, बादलों का अँधेरा घना है, इसीसे रात भी अधिक अँधेरी है, यह सब कुछ है, पर हे श्याम, यह नायिका तो चलने में दीप-शिखा के समान छिपेगी नहीं।

अलंकार—धर्म लुप्तोपमा से परिपुष्ट विशेषोक्ति।

दो०—फूलो फाली फूल सी, फिरति जु बिमल बिकास।
भोर तरैयाँ होंहिगीं, चलत तोहिं पिय पास ॥३१०॥

(वचन)—सखी-वचन नायिका-प्रति। अभिसार उद्देश्य।

भावार्थ—हे लाड़िली, तेरी सवतें जो अभी निर्मल प्रकाशयुक्त होकर फूल-सी विकसित और प्रफुल्लित फिरती है, वे सब जिस समय

तू प्रियतम के पास चलेगी, प्रातःकाल की तारकाओं के समान, प्रभा-हीन हो जायेंगी।

अलंकार—उपमा।

दो०--उग्यो सरद राका-ससी, करति न क्यों चित चेत।
मनो मदन छितिपाल को, छाँहगीर छवि देत ॥३११॥

शब्दार्थ—राका-ससी=पूर्णमासी का चन्द्रमा। छितिपाल=राजा। छाँहगीर=छत्र।

(वचन)—सखी-वचन नायिका प्रति। अभिसार उद्देश्य।

भावार्थ—हे सखी, शरद पूर्णिमा का चंद्रमा उदय हो आया, मन में स्मरण क्यों नहीं करती (नायक से आज की रात्रि में मिलने का वादा किया था)। यह चन्द्रमा ऐसा जान पड़ता है, मानो कामदेव पृथ्वीपति का छत्र शोभा दे रहा है (अर्थात् कामोद्दीपक हो रहा है)।

[विशेष]—यह दोहा मानिनी नायिका पर भी लग सकता है।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—निसि अँधियारी नील पट, पहिरि चली पिय गेह।
कहौ दुराई क्यों दुरै, दीप-सिखा-सी देह ॥३१२॥

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—पूर्णोपमा से पुष्ट विशेषोक्ति।

दो०—छप्यो छपाकर छिति छयो, तम ससिहरि न सँभारि।
हँसति हँसति चलि ससिमुखी, मुखते घूँघट टारि ॥३१३॥

शब्दार्थ—छपाकर=चन्द्रमा। ससिहरि न=डर मत, भय मत कर। सँभारि=अपने चित्त को सँभाल।

[विशेष]—शुक्लाभिसारिका नायिका नायक के पास जा रही है। मार्ग में चन्द्रास्त हो गया। नायिका कुछ डरी। इसपर सखी का वचन है।

भावार्थ—चन्द्रमा छिप गया, पृथ्वी पर अन्धकार छा गया, तो क्या

हुआ, तू डर मत, सँभल जा। हे चन्द्रमुखी, मुख से घूँघट हटाकर हँसते हँसते चल (ऐसा करने से चाँदनी का सा प्रकाश हो जायगा)।

नोट—किसी प्रति में 'घूँघट' की जगह 'आँचर' पाठ है, परन्तु हमें 'घूँघट' पाठ अच्छा जँचता है।

अलंकार—'शशिमुखी' में वाचक धर्मलुप्ता। सम्पूर्ण दोहा में काव्यलिंग।

दो०—अरी खरी सटपट परी, बिधु आधे मग हेरि।
संग लगे मधुपनि लई, भागन गली अँधेरि ॥३१४॥

शब्दार्थ—खरी सटपट परी=बड़ी घबराहट हुई। भागन=भाग्य से। गली अँधेरि लई=गली अँधेरी कर दी।

[विशेष]—कोई कृष्णाभिसारिका नायिका किसी पूर्व रात्रि के अभिसार का हाल निज सखी से कहती है, कि नायक के पास से लौटते समय ऐसी घटना हुई थी।

भावार्थ—हे सखी, आधे मार्ग में चन्द्रोदय देखकर मुझे बड़ी घबराहट हुई। परन्तु सौभाग्य से साथ में लगे हुए भौंरों ने गली अँधेरी कर दी (अर्थात् मेरे अंग के गंध के कारण जो भौंरे मेरे साथ लगे थे, उनकी अधिकता से गली अँधेरी हो गई)।

[शंका]—रात्रि में भौंरे कहाँ से आये ?

[समाधान]—नायिका पद्मिनी है। पद्मिनी के साथ रात्रि में भी भौंरों का रहना कवियों ने कहा है। माघ तथा कादम्बरी में एवं मतिराम और देव की कविता में भी ऐसे वर्णन हैं।

अलंकार—समाधि। प्रहर्षण।

दो०—जुवति जोन्ह में मिलि गई, नेकु न परति लखाय।
सोंधे के डोरन लगी, अली चली सँग जाय ॥३१५॥

शब्दार्थ—जोन्ह=(सं० ज्योत्स्ना) चाँदनी। सोंधा=सुगन्ध। सोंधे के डोरन= सुगन्ध के आश्रय से

(वचन) शंसा। सखी का

भावार्थ—वह युवती (नायिका) तो चाँदनी में ऐसी मिल गई कि ज़रा भी देख न पड़ती थी। उसके अंग की सुगन्ध के आश्रय से सखी उसके साथ चली जाती थी।

अलंकार—उन्मीलित।

(पिय मिलन-उछाह-वर्णन)

दो०—ज्यौं ज्यौं आवति निकट निसि, त्यौं त्यौं खरी उताल।
झमकि झमकि टहलैं करै, लगी रहँचटे बाल॥३१६॥

शब्दार्थ—उताल=उकताई हुई। झमकि झमकि=शीघ्रता से। टहल=गृहकार्य। रहँचटा=प्रबल अभिलाषा।

(वचन)—सखी-प्रति सखी-वचन। नायक परदेश से आया है। स्वकीया नायिका।

भावार्थ—ज्यों ज्यों रात्रि निकट आती जाती है, त्यों त्यों उसकी उतावली बढ़ती जाती है। प्रियतम से मिलने की प्रबल अभिलाषा से जल्दी जल्दी घर का काम-धन्धा कर रही है।

अलंकार—स्वभावोक्ति (सहज)।

दो०—झुकि झुकि झपकौहैं पलनि, फिरि फिरि मुरि जमुहाय।
बीदि पियागम नींद मिस, दी सब सखी उठाय॥३१७॥

शब्दार्थ—झपकौहैं=मुँदती हुई। मुरि=मुँह फेर कर। बीदि=(सं० विद्=जानना) जानकर।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—झुकझुक कर, मुँदती हुई पलकों से बार-बार मुँह मोर कर, जमुहाई ले-लेकर, उसने प्रियतम के आगमन का समय जान, निद्रा आने के बहाने से सब सखियों को उठा दिया।

अलंकार—पर्यायोक्ति।

दो०— अँगुरिन उचि भरु भीति दै, उलमि चितै चख लोल।
रुचि सों दुहूँ दुहून के, चूमे चारु कपोल ॥२१८॥

शब्दार्थ—उचि = उठकर। भरु = भार। भीति = दीवार। उलमि = दूसरी ओर लटक कर। लोल = चंचल।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति। नायक-नायिका का परस्पर चुम्बन-वर्णन।

[विशेष]—दोनों की अटारियों के बीच में डेढ़वारे की दीवार है। नायक उस ओर, नायिका इस ओर। दोनों ने पैर की उँगलियों के बल उठकर, दूसरी ओर झुककर चुम्बन लिया दिया है। उसीका वर्णन है।

भावार्थ—पैर की उँगलियों पर उठकर, शरीर का भार दीवार पर डाल कर, दूसरी ओर झुककर, और चंचल नेत्रों से यह देखकर कि कोई देखता तो नहीं, दोनों ने दोनों के सुन्दर कपोल बड़े प्रेम से चूमे।

अलंकार—अन्योन्य (जो जासों जैसो करै, सो तासों तस कीन्ह)।

दो०—चाले की बातें चली, सुनत सखिन के टोल।
गोयेऊ लोयन हँसत, बिकसत जात कपोल ॥२१९॥

शब्दार्थ—चाला = चलौवा, द्विरागमन (गौना)। टोल = टुकड़ी, समूह।

भावार्थ—गौने की बातचीत हो रही है, यह बात सखियों के समूह में सुनकर, नायिका के नेत्र, छिपाने पर भी हँसते हैं और कपोल विकसित होते जाते हैं (अर्थात् छिपाने की चेष्टा करने पर भी उसके नेत्रों और कपोलों से प्रसन्नता प्रकट होती है)।

[विशेष]—कोई-कोई 'चली' शब्द का अर्थ—"चलविचल हुई अर्थात् ठीक निश्चित न हुई" लेते हैं। इस अर्थ में यह मानना पड़ता है कि नायिका का प्रेम गौने से पहले ही नैहर में किसी से हो गया है। गौने की साइत अभी नहीं बनती, यह सुनकर उसे आनन्द हुआ कि

प्रेमी से बिछोह न होगा। प्रथम अर्थ में स्वकीया और दूसरे अर्थ में परकीया मुदिता नायिका होगी। इसमें पहला अर्थ अच्छा जँचता है।

अलंकार—प्रहर्षण (तीसरी विभावना से परिपुष्ट)।

दो०—मिस ही मिस आतप दुसह, दई औरि बहकाय।
चले ललन मनभावती, तन की छाँह छपाय ॥२२०॥

शब्दार्थ—आतप दुसह = धूप बड़ी कड़ी है। औरि = अन्य सखियों को। ललन = नायक।

(वचन)—सखी-प्रति सखी-वाक्य।

भावार्थ—"धूप बड़ी कड़ी है, अभी इस वक्त हम न जायँगे" इसी बहाने से अन्य नायिकाओं को तो बहका दिया, और जब सब अपने-अपने घर चली गईं तब लाल अपनी मनभावती लाड़िली को अपने शरीर की छाया में छिपाकर चले।

अलकार = पर्यायोक्ति।

दो०—ल्याई लाल बिलोकिये, जिय की जीवनमूलि।
रही भौन के कोन में, सोनजुही-सी फूलि ॥२२१॥

भावार्थ—हे लाल, आपके जी को जीवनमूल (अति प्यारी प्रेयसी) को मैं ले आई, देखो वह इस घर के कोने में सोनजुही-सी फूल रही है।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—नहिं हरि लौं हियरे धरो, नहिं हर लौं अरधंग।
एकतही करि राखिये, अङ्ग अङ्ग प्रति अङ्ग ॥२२२॥

भावार्थ—न तो इसको इस तरह केवल हृदय ही से लगाकर रक्खो, जैसे विष्णु लक्ष्मी को रखते हैं और न शिव की तरह केवल इसका आधा अङ्ग अपने आधे अङ्ग में रक्खो, वरन् इससे इस प्रकार मिलो कि इनके प्रति अङ्ग को अपने प्रति अङ्ग में पूर्णतया मिला लो।

[विशेष]—यह दूती का वचन नायक-प्रति है। "अङ्ग-अङ्ग प्रति अङ्ग" से स्पष्ट व्यंजित होता है कि दूती कहती है कि यह नायिका केवल आलिंगन चुम्बन ही नहीं चाहती, वरन् रति की भी इच्छुक है।

अलंकार—उपमा।

दो०—रही पैज कीन्ही जु मैं, दीन्ही तुमहिं मिलाय।
राखौं चम्पकमाल-ज्यौं, लाल गरे लपटाय ॥३२३॥

शब्दार्थ—पैज=प्रतिज्ञा।

(वचन)—दूती-वचन नायक-प्रति।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—उपमा।

दो०—रही फेरि मुँह हेरि इत, हित समुहें चित नारि।
डीठि परत उठि पीठि की, पुलकैं कहैं पुकारि ॥३२४॥

शब्दार्थ—पुलकैं=रोमांच।

(वचन)—दूती-वचन नायिका-प्रति। संघट्टन=उद्देश्य।

भावार्थ—हे नारि, चित्त तो तेरा मित्र की ओर है, पर मुँह फेरकर तू इधर मेरी ओर देख रही है (अर्थात् जहाँ चित्त है उधर ही देख और नायक से प्रेमालाप कर)। दृष्टि पड़ते ही पीठ में रोमांच उठकर यह बात पुकार-पुकार कर कह रहे हैं (कि तू नायक से प्रेम करती है)।

अलंकार—अनुमान।

(प्रथममिलन-वर्णन)

दो०—दोऊ चाह भरे कछू, चाहत कह्यौ कहैं न।
नहिं जाँचक सुनि सूम लौं, बाहर निकसत बैन ॥३२५॥

(वचन)—सखी-प्रति सखी-वाक्य।

भावार्थ—दोनों चाह से भरे हैं, कुछ कहना चाहते हैं, पर कहते नहीं हैं। "दरवाजे पर भिक्षुक आया हुआ है" यह सुनकर जैसे सूम घर से बाहर नहीं निकलता, उसी प्रकार उनके वचन मुख से नहीं निकलते।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—लहि सूने घर कर गह्यौ, दिखादिखी की ईठि।
गड़ी सुचित नाहीं करनि, करि ललचौंही डीठि ॥३२६॥

शब्दार्थ—ईठि = मित्रता, प्रेम।

(वचन)—नायक-वचन सखा-प्रति।

भावार्थ—हे सखा! उससे मेरी देखा देखी की प्रीति थी, सो एक दिन मैंने सूने घर में पाकर उसका हाथ पकड़ा। हाथ पकड़ते ही उसने अभिलाषाभरी दृष्टि से "नाहीं" की। वही उसकी नाहीं करने की चेष्टा उस दिन से मेरे चित्त में गड़ रही है।

अलंकार—स्मरण। वाचकोपमान लुप्ता (नाहीं करनि उपमेय, गाँसा उपमान लुप्त, वाचक लुप्त, 'गड़ी' साधारण धर्म)।

दो०—गली अँधेरी साँकरी, भो भटभेरा आनि।
परे पिछाने परसपर, दोऊ परस-पिछानि ॥३२७॥

शब्दार्थ—भटभेरा = मुठभेड़ भिड़न्त, टक्कर। परसपिछानि = स्पर्श की पहिचान से (शरीर में रोमांच हो आने से)।

(वचन)—सखी-प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—हे सखी! साँकरी और अँधेरी गली में दम्पति के शरीर परस्पर टकरा गये, तब दोनों ने एक दूसरे को स्पर्शज्ञान से पहचाना।

अलंकार उन्मीलित।

दो०—हरषि न बोली लखि ललन, निरखि अमिल सब साथ।
आँखिन ही में हँसि धर्यो, सीस हिये धरि हाथ ॥३२८॥

शब्दार्थ—अमिल = अजनबी (जिनसे मेल नहीं है)।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति।

नोट—क्रिया-विदग्धा में सर्वत्र बोधक हाव होता है।

भावार्थ—नायक को देखकर हर्षित तो हुई, परन्तु सब अजनबी सखाओं को साथ में देखकर कुछ बोली नहीं। (मिलने का संकेत इस तरह बताया कि) आँखों ही में हँसकर छाती पर हाथ रखकर फिर सीस पर रक्खा।

[विशेष]—क्रिया-विदग्धा की चतुराई के भाव :—

१—हृदय में बसते हो प्रणाम करती हूँ।

२—शिव की शपथ, अर्द्धरात्रि को मिलूँगी।

३—दोनों पर्वतों के बीच वाली कुंज में कृष्ण पक्ष की द्वितीया को मिलूँगी।

४—यमुना तट पर शिवालय में मिलूँगी।

५—प्रतिज्ञा स्मरण है, सूर्यास्त बाद मिलूँगी।

अलंकार—सूक्ष्म।

दो०—भेंटत बनत न भावतो, चित तरसत अति प्यार।
धरति लगाय लगाय उर, भूषण बसन हथ्यार ॥३२९॥

शब्दार्थ—भावतो=नायक। तरसत=उत्कंठित है।

(वचन)—आगतपतिका नायिका की दशा का वर्णन। नायिका मध्या। सखी-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—प्रत्यनीक।

दो०—कोरि जतन कोऊ करौ, तन की तपनि न जाय।
जौ लौं भीजे चीर लौं, रहै न प्यौ लपटाय ॥३३०॥

शब्दार्थ—कोरि=(कोटि) करोड़। प्यौ=नायक।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति। विरहिनी की दशा का वर्णन।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—पूर्णोपमा।

(नाहीं-वर्णन)

दो०—'तनक झूँठ निसवादिली', कौन बात पर जाय।
तिय-मुख-रति-आरम्भ की, 'नहीं' झूठियै मिठाय ॥३३१॥

शब्दार्थ—निसवादिली = स्वाद-रहित, बेमजा। जाय = व्यर्थ, झूँठ।

[विशेष]—पूर्वार्द्ध में नायिका का प्रश्न है। उत्तरार्द्ध में नायक का उत्तर है।

भावार्थ—(प्रश्न) 'थोड़ी झूठ भी बेमज़ा होती है' यह लोकोक्ति कौन-सी बात पर व्यर्थ प्रमाणित होती है ? (उत्तर) तिय के मुख से निकली हुई समागमारंभ की झूठी "नाहीं" मीठी (मधुर स्वादयुक्त) मालूम होती है। (अर्थात् यह झूठी नाहीं स्वाद-रहित नहीं होती, वरन् मीठी होती है)।

अलंकार—गूढ़ोत्तर (अभिप्राय युत ज्वाब जहँ, कहि गूढ़ोत्तर सोय)।

(सुरतारंभ-वर्णन)

दो०—भौंहनि त्रासति मुख नटति, आँखिन सों लपटाति।
ऐंचि छुड़ावति कर इँची, आगे आवति जाति ॥३३२।

शब्दार्थ—नटति = नाहीं करती है।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति। प्रथम समागम-समय की चेष्टाओं का वर्णन।

भावार्थ—भौहें तान कर डरवाती है, मुख से नाहीं करती है, और दृष्टी से लपटाती है। खींचकर हाथ छोड़ाती हुई भी आगे ही खींची आती है।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

दो०—दीप उजेरहू पतिहिं, हरत वसन रति-काज।
रही लपटि छबि की छटनि, नेकौ छुटी न लाज ॥३३३।

[विशेष]—नायिका मध्या। सखी-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—पति को रति हेतु वस्त्र हरण करते हुए जान कर वह नायिका पति से लिपट गई, अतः दीपक का उजेला रहते हुए भी छबि के चाकचक्य से लाज न गई, अर्थात् छबि की चकाचौंध से नायक ने

नायिका को नग्न न देख पाया (दीपक का उजेला रहते भी छवि की छटा के कारण नग्नता की लज्जा न उठानी पड़ी।

अलंकार—विशेषोक्ति।

दो०—लखि दौरत पिय-कर-कटक, बास छुड़ावन काज।
बरुनी बन दृग गढ़नि में, रही गुढ़ौ करि लाज ॥२३४॥

शब्दार्थ—बास=वस्त्र। गुढ़ौ करि=छिप कर।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—वस्त्र छोड़ाने के लिये जब नायिका ने पति के कर-रूपी कटक को आक्रमण करते देखा, तब उसकी लज्जा-रूपी बरुणी बन के नेत्र-रूपी किले में छिप कर रह गई (अर्थात् जब नायक रति-हेतु वस्त्र-हरण करने लगा, तब लज्जावती मध्या नायिका ने आँखें मूँद कर अपनी लज्जा रक्खी)।

अलंकार—रूपक।

दो०—सकुचि सरकि पिय निकट तें, मुलकि कछुक तन तोरि।
कर आँचर की ओट करि, जमुहानी मुख मोरि ॥२३५॥

शब्दार्थ—मुलकि=नेत्रों से मुसकुराकर। तन तोरि=अँगड़ाई लेकर।

(वचन)—प्रौढ़ा नायिका की रतीच्छा का वर्णन। सखी-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—सकुच-सहित नायक के निकट से कुछ खिसक कर, कुछ मुसकुराकर और अँगड़ाई लेकर हाथ और अंचल की ओट करके मुख फेर कर जँभाई ली।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

दो०—सकुच सुरति आरम्भ हीं, बिछुरी लाज लजाय।
ढरकि ढार ढरि ढिग भई, ढीठ ढिठाई आय।२३६॥

शब्दार्थ—सकुच=कुच-स्पर्श सहित। ढरकि ढार ढरि=राजी होने

के साधारण ढंग से राजी होकर । ढिग भई = नजदीक आ गई, शरीर से लिपट गई ।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति ।

भावार्थ—कुच-स्पर्श करके सुरति आरंभ करते ही लज्जा लजा कर चली गई (नायिका की लज्जा जाती रही) और धृष्टता आ जाने से साधारण ढंग से राजी होकर वह नायिका नायक से लिपट गई ।

अलंकार—वृत्यनुप्रास ।

दो०—पति रति की बतियाँ कही, सखी लखीं मुसुकाय ।
कै कै सब टलाटली, अलीं चलीं सुख पाय ॥२३७॥

[विशेष]—प्रौढ़ा स्वकीया नायिका ।

भावार्थ—पति ने रति की चर्चा चलाई, नायिका ने सखियों की ओर मुसकुराकर देखा । सखियाँ आनन्दित हो-होकर कुछ मिस बना-बना कर चल दीं ।

अलंकार—पर्यायोक्ति ।

(रति-वर्णन)

दो०—चमक तमक हाँसी सिसक, मसक झपट लपटानि ।
ये जिहि रति सो रति मुकुति, और मुकुति अति हानि ॥२३८॥

शब्दार्थ—चमक = चिहुँकना, चौंकना । तमक = उत्तेजित होना । सिसक = सिसकी भरना । मसक = दबाना, मर्दन करना । झपट लपटानि = झपट कर लपट जाना । मुकुति = दुःख से निवृत्ति ।

(वचन)—नायक-वचन नायिका-प्रति ।

भावार्थ—चिहुँकना, उत्तेजित होना, हँसना, सीत्कार भरना, गाढ़ालिंगन और झपट कर लिपट जाना ये षट् चेष्टायुक्त जो रति हो वह मुक्ति के समान आनन्द-दायिनी होती है (इसी मुक्ति को प्राप्त करना

अलंकार— रूपक से परिपुष्ट अनुमान अलंकार।

दो०—विनती रति विपरीत की, करी परसि पिय पाय।
हँसि अनबोले ही दियो, ऊतर दियो बुताय ॥३४१॥

शब्दार्थ—ऊतर = उत्तर, जवाब। बुताय = बुझाकर।

(वचन)—सखी वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—नायक ने नायिका के पैरों को छूकर विपरीत रति करने की प्रार्थना की (पैरों को छुना ही मानो विपरीत रति की प्रार्थना थी)। तब नायिका ने हँसकर बिना बोले ही चिराग बुझाकर उत्तर दे दिया (अर्थात् हँसना, कुछ न कहना और चिराग को भी बुझा देना, इन्हीं कामों से सूचित कर दिया कि प्रार्थना मंजूर है—मौनं सम्मति लक्षणं)।

[विशेष]—इसमें बोधक हाव अनुभाव और हर्ष संचारी भाव है। स्थायी और आलम्बन विभाव स्पष्ट ही है। शृङ्गार रस की पूर्ण सामग्री है।

अलंकार—सूक्ष्म (सूक्ष्म कृति लखि आन की, करै क्रिया कछु भाय)।

दो०—मेरे बूझत बात तूँ, कत बहरावति बाल।
जग जानी विपरीत रति, लखि बिंदुली पिय-भाल ॥३४२॥

शब्दार्थ—बिंदुली = बिंदी, टिकुली।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—अनुमान।

दो०—राधा हरि हरि राधिका, बनि आये संकेत।
दंपति रति विपरीत सुख, सहज सुरत हूँ लेत ॥३४३॥

शब्दार्थ—संकेत = मिलन-स्थान।

भावार्थ—सरल है। (इसमें लीला हाव जानना)।

अलंकार—प्रथम विभावना—(बिना विपरीत रति किये ही उसका सुख प्राप्त करते हैं)।

दो०—रमन कह्यौ हठि रमनि सों, रति बिपरीत बिलास।
चितई करि लोचन सतर, सलज सरोष सहास ॥३४४॥

शब्दार्थ—रमण = नायक। सतर = वंक, तिरछे।

[विशेष]—किलकिंचित हाव।

भावार्थ—नायक ने हठ करके नायिका से विपरीत रति करने को कहा, तब नायिका ने लज्जा, क्रोध और हँसी सहित तिरछे नेत्रों से नायक की ओर देखा (अर्थात् हँसकर प्रार्थना मंजूर की)।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

(सुरतान्त-वर्णन)

दो०—रँगी सुरत रँग पिय हिये, लगी जगी सब राति।
पैंड़ पैंड़ पर ठठकि कै, ऐंड़ भरी ऐंड़ाति ॥३४५॥

शब्दार्थ—रँगी सुरत रँग = समागम के सुख में लीन। पैंड़ पैंड़ पर = डग डग पर। ठठकि कै = रुक रुक कर। ऐंड भरी = गर्व के साथ, घमंड से (कि सौतियों को ऐसा सौभाग्य प्राप्त नहीं)।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति। सुरत लज्जिता नायिका)।

भावार्थ—हे सखी, देख, समागम के सुख में लीन हुई सारी रात यह नायिका प्रीतम के हृदय से लगी हुई जागी है, इसी कारण अब सवेरे उठने पर आलस के मारे डग-डग पर रुक-रुक कर गर्व सहित ऐंड़ाती है।

[विशेष]—इसमें आलस्य और गर्व संचारी भाव है।

अलंकार—अनुमान।

दो०—लहि रतिसुख लगियै गरें, लखो लजौहीं नीठि।
खुलत न मो मन बँधि रह्यो, वहै अधखुली डीठि ॥३४६॥

शब्दार्थ—नीठि = किसी प्रकार (मुशकिल से)।

(वचन)—नायक-वचन सखी-प्रति (सुरतांत में नायिका ने लज्जित

और श्रमित होने के कारण अधखुली दृष्टि से नायक की दृष्टि के सम्मुख देखा है। नायिका की वही चेष्टा नायक सखी से कहता है) इसमें स्मृति संचारी भाव है।

भावार्थ—रति-सुख पाकर, गले से लगी हुई ही, उस नायिका ने किसी प्रकार (बहुत कहने-सुनने से) जिस लज्जित दृष्टि से मेरी ओर देखा है, वह अधखुली दृष्टि मेरे मन में बँध रही है, खुलती नहीं है (अर्थात् भूलती नहीं)।

अलंकार-विरोधाभास (अधखुली दृष्टि बँध रही है, खुलती नहीं)।

(लोट-वर्णन)

दो०—कर उठाय घूँघट करत, उसरत पट गुझरोट।
सुख मोटैं लूटीं ललन, लखि ललना की लोट ॥३४७॥

शब्दार्थ—उसरत =(सं० उत् + सरण) हट जाने से। पट गुझरोट = शिकन पड़ा हुआ कपड़ा। मोटैं = गठड़ियाँ। लोट = पेटी, त्रिबली।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—हाथ उठाकर घूँघट करते समय शिकन पड़े हुए कपड़े के हट जाने के कारण, नायिका की त्रिवली देखकर नायक ने सुख की गठरियाँ लूटीं (अत्यन्त सुखी हुआ)।

अलंकार— हेतु (नायिका की लोट देखना ही सुख की गठरियों का लूटना है)।

(प्रेम-क्रीड़ा-वर्णन)

दो०—हँसि ओठनि बिच कर उचै, किये निचौहैं नैन।
खरे अरे पिय के प्रिया, लगी बिरी मुख दैन ॥३४८॥

शब्दार्थ— ऊँचै = उठाकर। निचौहैं = नीचे की ओर। खरे अरे= बहुत हठ किये हुए। बिरी= पान का बीड़ा।

[विशेष]—नायक ने नायिका के हाथों से पान खाने का हठ किया, नायिका ने जिस चेष्टा से बीड़ा खिलाया, उसीका वर्णन सखी से सखी करती है। (इसमें विलास हाव है)।

भावार्थ—होठों ही में हँसकर, हाथ उठाकर और आँखें नीची किये हुए, अति हठ किये हुए प्रीतम के मुख में प्रिया (नायिका) पान की बीड़ी देने लगी।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

दो०—नाक मोरि नाहीं ककै, नारि निहोरे लेय।
छुवत ओंठ पिय आँगुरिन, बिरी बदन तिय देय ॥३४९॥

शब्दार्थ—निहोरा = विनती, प्रार्थना। इसमें दम्पति का विलास हाव वर्णित है।

[विशेष]—नायक नायिका को पान खिलाते समय अपनी उँगली नायिका के ओंठ में छुला देता है। इस कृत्य को नायिका नापसन्द करती है।

भावार्थ—नाक सिकोड़कर, नाहीं कर-करके नायिका बहुत कुछ निहोरा करने से नायक के हाथ से मुख में बीड़ी लेती है, कारण कि बीड़ी मुख में देकर नायक उँगली से ओंठ छूता है।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

दो०—सरस सुमिल चित तुरँग की, करि करि अमित उठान।
गोय निबाहे जीतिये, प्रेम खेल चौगान ॥३५०॥

शब्दार्थ—सरस=रसयुक्त (यहाँ अत्यधिक 'पुष्ट')। सुमिल = सवार के मन से मिलकर चाल चलनेवाला (मिलनसार)। अमित = बहुत। उठान = दौड़, धावा। गोय निबाहे = (१) छिपाकर निर्वाह करने से (२) गेंद को निश्चित रूप से सीमा तक वहन करने से। चौगान=गेंद का वह खेल जो घोड़ों पर सवार होकर खेला जाता है।

[नोट]—इस खेल का वर्णन केशव ने 'रामचन्द्रिका' में बहुत अच्छा किया है।

(वचन)—कवि की उक्ति।

भावार्थ—प्रेम करना चौगान का खेल है। इस खेल में पुष्ट और मिलनसार चित्त-रूपी घोड़े पर चढ़कर अनेक धावे करके गुप्त प्रेम को अंत तक निर्वाह करने से (प्रेमरूपी गेंद को पाली की अन्तिम सीमा तक पहुँचाने से) ही जीत होती है।

अलंकार—श्लेष से परिपुष्ट रूपक।

(आँखमिचौली-वर्णन)

दो०—दृग मींचत मृगलोचनी, भर्‌यो उलटि भुज बाथ।
जानि गई तिय नाथ के, हाथ-परस ही हाथ॥३५१॥

शब्दार्थ—बाथ = अँकवार।

(वचन)—सखी-प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—नायक ने नायिका के नेत्र (पीछे से आकर) मूँदे। मृगलोचनी नायिका ने उलट कर नायक को अँकवार भर के पकड़ लिया। हाथ के स्पर्श से सात्विक भाव रोमांच कंपादि होते ही नायिका ने समझ लिया कि वे हाथ नायक के ही हैं।

अलंकार—अनुमान।

दो०—प्रीतम-दृग मींचत प्रिया, पानि-परस सुख पाय।
जानि-पिछानि अजान लौं, नेकु न होति लखाय॥३५२॥

भावार्थ—नायिका नायक के नेत्र मूँदती है। तब नायक प्रिया के करस्पर्श का सुख पाकर जान-पहचान कर भी अनजान की तरह कहता है कि हमें नहीं मालूम होता कि यह किसका हाथ है।

[विशेष]—आँखमिचौली का कायदा है कि जब तक आँख-मूँदा हुआ व्यक्ति आँख मूँदने वाले को अनुमान से पहचान कर उसका नाम

न बतला दे, तब तक वह आँख नहीं छोड़ता। नायक को कर-स्पर्श का सुख मिल रहा है, अतः वह पहचान कर भी नाम नहीं बतलाता—भाव यह कि थोड़ी देर और इसके कर-स्पर्श का सुख प्राप्त रहे।

अलंकार—लुप्तोपमा से परिपुष्ट पर्यायोक्ति (मिस करि कारज साधिबो)।

दो०—कर-मुँदरी की आरसी, प्रतिबिंबित प्यौ पाय।
पीठि दिये निधरक लखै, इकटक डीठि लगाय ॥३५३॥

भावार्थ—अँगूठी की आरसी में नायक का प्रतिबिंब पड़ता हुआ पाकर, पीठ दिये हुए भी बेखटके टकटकी लगा कर देख रही है।

अलंकार—तीसरी विभावना (पीठ दिये हुए भी दर्शन हो रहा है)।

दो०—मैं मिसहै सोया समुझि, मुँह चूम्यो ढिग जाय।
हस्यो खिस्यानी गल गह्यो, रही गरे लपटाय ॥३५४॥

शब्दार्थ—मिसहा=मिस करनेवाला, बहानेबाज, छली। खिस्यानी=लजा गई।

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—मैंने उस छली को सोया हुआ समझकर, पास जाकर, उसका मुख चूमा। वह हँस पड़ा, मैं लजा गई; उसने गलबाहीं दी, तब मैं भी गले से लिपट गई।

[विशेष]—नायिका प्रौढ़ा। ऐसे प्रेम-खेल बहुधा हुआ करते हैं। नायक ने रति के लिये प्रार्थना की होगी, नायिका ने नाहीं की होगी, तब नायक बहाने से सो गया। तब नायिका ने यह सब खेल किया होगा।

अलंकार—पर्यायोक्ति।

दो०—मुँह उघारि प्यौ लखि रह्यौ, रह्यौ न गो मिस सैन।
फरके ओठ उठे पुलक, गये उघरि जुरि नैन ॥३५५॥

शब्दार्थ—मिस=बहाना। पुलक=रोमांच।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति ।

भावार्थ—(नायिका सोने का बहाना करके मुँह ढककर लेट रही थी) मुँह उघार कर नायक देख रहा है, ऐसा जानकर सोने का बहाना किये हुए रहा न गया । ओंठ फरक उठे, रोएँ खड़े हो गये और नेत्र खुलकर नायक के नेत्रों से जुड़ गये ।

अलंकार—स्वभावोक्ति ।

दो०—बतरस-लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय ।
सौंह करै, भौंहन हँसै, देन कहै, नटि जाय ॥३५६॥

शब्दार्थ—बतरस = बात करने का मजा । लालच = अभिलाषा । नटिजाय = नाहीं कर देती है ।

भावार्थ—सरल है ।

अलंकार—कारक दीपक ।

दो०—नेकु उतै उठि बैठिये, कहा रहे गहि गेहु ।
छुटी जाति नहँदी छिनकु, महँदी सूखन देहु ॥३५७॥

शब्दार्थ—नहँदी = (नहँ + दी) नाखून में दी हुई, लगाई हुई ।

(वचन)—स्वाधीनपतिका-वचन नायक-प्रति ।

[विशेष]—इसमें विव्वोक हाव है । नायक निकट है, अतः नायिका को स्वेद सात्विक हो रहा है ।

भावार्थ—जरा वहाँ उठकर बैठो, क्या घर में घुस रहे हो, नाखून में लगाई हुई मेहँदी छूटी जाती है, जरा एक क्षण मात्र इसे सूखने तो दो ।

अलंकार—पर्यायोक्ति (कछु रचना सों बात) ।

(मद्यपान-वर्णन)

दो०—बाम तमासो करि रही, बिवस बारुनी सेय ।
झुकति हँसति हँसि हँसि झुकति, झुकि झुकि हँसि हँसि देय ॥३५८॥

शब्दार्थ—बारुनी = शराब । झुकना = खिजलाना ।

भावार्थ—सरल है ।

अलंकार—स्वभावोक्ति किंवा कारक दीपक ।

दो०—हँसि हँसि हेरति नवल तिय, मद के मद उमदाति ।
बलकि बलकि बोलति बचन, ललकि ललकि लपटाति ॥३५९॥

शब्दार्थ—उमदाति = मस्ती की चेष्टा करती है । बलकि बलकि = बक बक करके ।

भावार्थ—सरल है ।

अलंकार—समुच्चय ।

दो०—खलित बचन अधखुलित दृग, ललित स्वेद-कन-जोति ।
अरुन बदन छबि मद छकी, खरी छबीली होति ॥३६०॥

शब्दार्थ—खलित = (स्खलित) चल-विचल, अर्द्धस्पष्ट । अरुन = लाल ।

(वचन)—नायक-प्रति सखी-वचन ।

भावार्थ—अर्द्धस्पष्ट बातें, अधखुले नेत्र और सुन्दर पसीने की बूँदों की झलक सहित लाल मुख की छबि से मद में छकने से यह नायिका और भी अधिक छबीली हो जाती है ।

अलंकार—स्वभावोक्ति ।

दो०—निपट लजीली नवल तिय, बहकि बारुनी सेय ।
त्यों त्यों अति मीठी लगै, ज्यों ज्यों ढीठ्यो देय ॥३६१॥

शब्दार्थ—बारुनी=शराब । मीठी = अच्छी । ढीठ्यो देय = ढिठाई करती है ।

भावार्थ—अत्यन्त लजीली नवलवधू मदिरा पीकर बहँक गई है । ज्यों-ज्यों ढिठाई करती है, त्यों-त्यों और भी अच्छी लगती है ।

अलंकार—विभावना—(ढिठाई से भी अच्छी लगती है) ।

(वन विहार-वर्णन)

दो०—बढ़ति निकसि कुचकोर-रुचि, कढ़त गौर भुजमूल।
मन लुटिगौ लोटनि चढ़त, चूँटत ऊँचे फूल ॥३६२॥

शब्दार्थ—कुचकोर-रुचि=कुच के घेरे के किनारे की कान्ति। भुजमूल=पखौरा, खय। लोटनि=त्रिवली। चूँटत=(चूनत) तोड़ते हुए (सं० चयन)।

[विशेष]—वन-विहार में नायिका कुछ ऊँचे स्थान में लगे हुए फूलों को तोड़ने लगी। ऐसा करने में आँचल के उठजाने से कुचकोर, पखौरा और त्रिवली नायक ने देखी। उसी स्थिति की छवि नायक सखी से कहता है।

भावार्थ—जिस समय नायिका ऊँचे पर के फूल तोड़ने लगी, उस समय कंचुकी के चढ़ जाने से निकल कर बढ़ती हुई कुचकोर की शोभा और खुले हुए गोरे-गोरे खयों (पखौरे) को देखकर और त्रिवली की तीनों सीढ़ियों पर चढ़ते हुए मेरा मन लुट गया (इनको देखकर मैं मुग्ध हो गया)।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

दो०—घाम घरीक निवारिये, कलित ललित-अलिपुञ्ज।
जमुना तीर तमाल तरु, मिलत मालती कुञ्ज ॥३६३॥

शब्दार्थ—कलित=मढ़े हुए, युक्त। ललित=सुन्दर।

[अन्वय]—ललित अलिपुञ्ज कलित मालती-कुंज।

[विशेष]—वनविहार में नायिका स्वयं दूतत्व करती है। नायिका वचन नायक-प्रति।

भावार्थ—हे प्रिय ! धूप बहुत कड़ी है, एक घड़ी घाम निवार लो (कड़ी धूप की वेला बिता लो) जमुना के तट पर, जहाँ वह तमाल का वृक्ष दिखाई पड़ता है वहीं, सुन्दर भौंरों से युक्त मालती की कुंज मिलती है (वहीं हमारे साथ विहार करो)।

अलंकार—गूढ़ोत्तर। कोई-कोई इसमें पर्यायोक्ति मानते हैं।

दो०—चलित ललित श्रम स्वेदकन, कलित अरुन मुख ऐन।
बनविहार थाकी तरुनि, खरे थकाये नैन ॥३६४॥

शब्दार्थ—चलित=चलते हुए, गिरते हुए, टपकते हुए। कलित=सुन्दर। ऐन=अत्यन्त। थकाये=आसक्त किये।

(वचन)—सखी-प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—टपकती हुई सुन्दर पसीने की बूँदों से नायिका का मुख अत्यन्त सुन्दर हो उठा था। वनविहार से थकी हुई तरुणी नायिका ने नायक के नेत्रों को भली भाँति स्थगित कर दिया (अपने ऊपर आसक्त कर लिया)।

अलंकार—पाँचवी विभावना—(थकी हुई ने थकाये)।

दो०—अपने कर गुहि आपु उठि, हिय पहिराई लाल।
नौलसिरी औरै चढ़ी, मौलसिरी की माल ॥३६५॥

शब्दार्थ—नौलसिरी=(नवल+श्री) नवीन शोभा।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—भेदकातिशयोक्ति।

(जलविहार-वर्णन)

दो०—लै चुभकी चलि जाति जित, जित जल-केलि अधीर।
कीजत केसर नीर से, तित तित के सर-नीर ॥३६६॥

शब्दार्थ—चुभकी=डुबकी, गोता। अधीर=चंचलता से, शीघ्रता से।

(वचन)—सखी-वचन नायिका-प्रति, अंग-कान्ति की प्रशंसा।

भावार्थ—तुम जल-केलि के समय गोता लगाकर शीघ्रतापूर्वक जहाँ-जहाँ जाती हो, वहीं-वहीं तालाब के पानी को केसर-जल के समान कर देती हो।

अलंकार—यमक, उपमा, तद्गुण।

दो०—छिरकै नाह नवोढ़ दृग, कर-पिचकी जल जोर।
रोचन रँग लाली भई, बिय-तिय लोचन-कोर ॥२६७॥

शब्दार्थ—बिय-तिय = दूसरी स्त्री अर्थात् सवति।

भावार्थ—नायक ने नवोढ़ा के नेत्रों में हाथ की पिचकी से जोर-जोर से जल छिड़का, और दूसरी स्त्री (सवति) के लोचन-कोर में रोचना की-सी लाली आई (ईर्षा से सवती कोपित हुई) अथवा दोनों के नेत्रों में लाली आई। एक के नेत्रों में जल के छींटों के कारण, दूसरी के नेत्रों में ईर्षा के कारण।

अलंकार—असंगति।

(हिंडोरा-वर्णन)

दो०—हेरि हिंडोरे गगन तें, परी परी-सी टूटि।
धरी धाय पिय बीच ही, करी खरी रस लूटि ॥२६८॥

शब्दार्थ—परी = (फा०) अप्सरा।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—यह देखकर कि हिंडोरे-रूपी आकाश से वह नायिका अप्सरा-सी नीचे गिरी, नायक ने दौड़ कर बीचही में लोक लिया और आलिंगन करके खूब रस लूटा, (तब उसको पृथ्वी पर खड़ी किया)।

अलंकार—उपमा (परी परी-सी टूटी)।

दो०—बरजे दूनी हठ चढ़ै, ना सकुचै न सकाय।
टूटति कटि दुमची मचक, लचकि लचकि बचि जाय ॥२६९॥

शब्दार्थ—दुमची = पतली टहनी (छोटी नवीन और पतली शाखा)।

(वचन)—सखी-प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—नायक के बरजने से नायिका को दूनी हठ चढ़ती है और वह हिंडोरे पर संकोच और शंका-रहित होकर खूब धूम मचाती है।

उसके झूलने की मचक से कमर-रूपी पतली शाखा टूटती-सी जान पड़ती है, परन्तु लचक-लचक कर बच जाती है।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में तीसरी विभावना, उत्तरार्द्ध में गम्योत्प्रेक्षा।

(चोर-मिहीचनी-वर्णन)

दो०—दोऊ चोर मिहीचनी, खेल न खेलि अघात।
दुरत हिये लपटाय कै, छुवत हिये लपटाय ॥३७०॥

शब्दार्थ—चोर-मिहीचनी = लुकौवल।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—पर्यायोक्ति (मिस से आलिंगन-कार्य साधन करते हैं)। विशेषोक्ति (खेलते हैं, पर अघाते नहीं)।

(सेज से उठाना)

दो०—लखि-लखि अँखियन अधखुलिन, आँग मोरि अँगराय।
आधिक उठि लेटत लटकि, आलस भरी जँभाय ॥३७१॥

भावार्थ—अधखुली आँखों से (प्रभातागमन-सूचक चिह्नों को) देख-देख कर, अंग मरोर-मरोर कर अँगड़ाता है। आधा उठकर फिर झुककर लेट जाती है और आलस से जँभाई लेती है।

अलंकार—कारकदीपक से परिपुष्ट स्वभावोक्ति।

दो०—नीठि नीठि उठि बैठि कै, प्यौ प्यारी परभात।
दोऊ नींद भरे खरे, गरे लागि गिरजात ॥३७२॥

शब्दार्थ—परभात = प्रभात, प्रातःकाल।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

दो०—लाज गरब आलस उमँग, भरे नैन मुसकात।
　　राति रमी रति देत कहि, औरै प्रभा प्रभात ॥२७३॥

शब्दार्थ—राति रमी रति = रात को रति की है। प्रभा = कान्ति।

भावार्थ—लज्जा, गर्व, आलस और उमंग से भरे हुए नेत्र मुसकुरा रहे हैं 'रात में रति की है' यह बात प्रभात की विलक्षण प्रभा ही कह रही है।

अलंकार—भेदकातिशयोक्ति से परिपुष्ट अनुमान प्रमाण।

दो०—कुञ्जभवन तजि भवन कौ, चलिये नन्दकिसोर।
　　फूलति कली गुलाब की, चटकाहट चहुँ ओर ॥२७४॥

[विशेष]—रात्रि में नायक परकीया नायिका के साथ कुंज-भवन में रहा है, प्रभात होते ही सखी जगाकर दोनों को निज-निज घर भेजना चाहती है।

भावार्थ—हे नन्दकिशोर, अब कुञ्जभवन को छोड़कर घर को चलिये। गुलाब की कलियाँ फूलने लगीं और उनकी चटचटाहट का शोर चारो ओर होने लगा है।

अलंकार—काव्यलिंग।

(रतिसाक्षिता)

दो०—नटि न सीस साबित भई, लुटी सुखनि की मोट।
　　चुप करिए, चारी करत, सारी परी सरोट ॥२७५॥

शब्दार्थ—नटि न = नाहीं मत कर। सीस साबित भई = तेरे सिर यह बात प्रमाणित हुई। मोट = गठरी। चारी = चुगली। सरोट = सलवट, शिकन।

भावार्थ—हे लाड़िली, इन्कार मत कर, तूने सुख की गठरी लूटी है, यह बात तेरे शिर प्रमाणित हो गई। बातें न बनाओ, चुप रहो साड़ी की शिकने ही इस बात की चुगली कर रही हैं।

अलंकार—अनुमान।

दो०—मोसो मिलवति चातुरी, तूँ नहिं भानति भेव।
कहे देत यह प्रगट ही, प्रगट्यो पूस-पसेव ॥३७६॥

शब्दार्थ—मिलवति चातुरी = चतुराई करती है। भेव नहीं भानति=भेद नहीं खोलती। पसेव = पसीना।

(वचन)—सखी-वचन नायिका-प्रति।

भावार्थ—मुझसे चतुराई कर रही है, तू इस बात का भेद क्यों नहीं खोलती। तू नायक के साथ रमी है, यह बात तो प्रत्यक्ष यह पूसमास का पसीना ही प्रकट होकर कह रहा है।

[विशेष]—इस दोहे का अर्थ अन्यसुरत-दुःखिता में भी लग सकता है।

अलंकार—चौथी विभावना (पूसमास में पसीना !) से परिपुष्ट अनुमान प्रमाण।

दो०—सही रँगीली रतिजगे, जगी पगी सुख चैन।
अलसौंहैं सौंहैं किये, कहैं हँसौंहैं नैन ॥३७७॥

शब्दार्थ—रतिजगा = किसी उत्सव में वा व्रत में रात्रि भर का जागरण। सौंहैं किये = कसम खाकर। हँसौंहैं = हँसते हुए।

भावार्थ—हे रँगीली ! ठीक है, तू सत्य कहती है, बेशक तू रतिजगे ही में जगी है, इसीसे सुख और चैन में पगी है। तेरे ये अलसाये हुए और हँसते-से नेत्र कसम खाकर यही बात तो कह रहे हैं। (व्यंग से यह तात्पर्य निकला कि तू रतिजगे का बहाना करती है, रातभर किसी नायक के साथ रति करते जगी है)।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति।

दो०—यों दलिमलियत निरदई, दई कुसुम से गात।
कर धर देखो धरधरा, अजौं न उर ते जात ॥३७८॥

शब्दार्थ—दलमलना = मसलना। धरधरा = धड़कन।

भावार्थ—अरे दैया, हे निर्दई नायक, ऐसी फूल-सरीखी सुकुमारी नायिका को कोई इस तरह मसलता है (जैसा तुमने मसला है)। इसकी छाती पर हाथ धरकर देखलो कि धड़धड़ाहट अभी तक नहीं जाती।

अलंकार—भाविक।

दो०—छनक उघारति छन छुवति, राखति छनक छिपाय।
सब दिन पिय-खंडित अधर, दरपन देखत जाय ॥३७९॥

(वचन)—सखी-प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—हे सखी, उसकी तो यह दशा है कि पिय-खंडित अधर को दर्पण में देखते ही देखते सारा दिन बिताती है। कभी खोलती है, कभी टटोलती है, और कभी छिपा लेती है।

अलंकार—कारक दीपक।

दो०—औरै ओप कनीनिकनि, गनी घनी सिरताज।
मनी धनी के नेह की, बनी छनी पट लाज ॥३८०॥

शब्दार्थ—ओप=कान्ति। कनीनिका=पुतली (आँख की) गनी=गणना की, समझी। मनी=मणि। धनी=पति (नायक)।

(वचन)—सखी-वचन नायिका-प्रति।

भावार्थ—हे लाड़िली! तेरी आँख की पुतलियों की आज कुछ और ही कान्ति है, इसीसे मैं तुझको बहुतों की सरदार समझती हूँ। तू नायक के प्रेम की मणि बन रही है, यह बात लज्जा-रूपी पट से छनी है। (अर्थात् लज्जा से छिपाती है तो भी प्रकट होती है)।

[विशेष]—यह वचन अन्य-संभोगदुःखिता नायिका का भी हो सकता है।

अलंकार—वृत्यनुप्रास। भेदकातिशयोक्ति से परिपुष्ट अनुमान प्रमाण।

दो०—कियो जो चिबुक उठाय कै, कंपित कर भरतार।
टेढ़ीयै टेढ़ी फिरत, टेढ़े तिलक लिलार ॥३८१॥

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति (रूपगर्विता)।

भावार्थ—काँपते हुए हाथ से नायक ने जो चिबुक उठाकर टेढ़ा

तिलक किया है, उसी टेढ़े तिलक के घमंड में टेढ़ी हो टेढ़ी फिरती है।
अलंकार—चौथी विभावना।

(खंडिता-वर्णन)

दो०—बेई गड़ि गाड़ैं परीं, उपट्यो हारु हिये न।
आन्यो मोरि मतंग मनु, मारि गुरेरन मैन ॥३८२॥

शब्दार्थ—गाड़ैं = गड्ढे। उपट्यो = उछर्यो। मैन = काम।

(वचन)—खंडिता नायिका का वचन नायक-प्रति।

भावार्थ—तुम्हारे हृदय पर यह अन्य नायिका का हार नहीं उपटा, वरन् कामदेव तुम्हारे मन-रूपी मस्त हाथी को गुलेल के गुल्लों से मार-मार कर इधर फेर लाया है, उसीकी चोट के ये गड्ढे पड़ गये हैं।

अलंकार—रूपक से परिपुष्ट शुद्धापह्नुति।

दो०—पलनि पीक अञ्जन अधर, धरे महावर भाल।
आजु मिले सु भली करी, भले बने हौ लाल ॥३८३॥

भावार्थ—पलकों में पीक (जगने के कारण आँखों में सुर्खी) ओठों में काजल (अन्य नायिका के नेत्र-चुंबन से ओठों में काजल) और भाल में महावर (अन्य नायिका के पैरों पड़ने से भाल में महावर) धारण किये हुए, हे लाल, जो आज आप मिले सो अच्छा किया, बहुत सुन्दर बने हो।

अलंकार—असंगति (दूसरी)।

दो०—गहकि गाँस औरै गहे, रहे अधकहे बैन।
देखि खिसौहैं प्रिय-नयन, किये रिसौहैं नैन ॥३८४॥

शब्दार्थ—गहकि = घमंड से, गर्व से। गाँस = अनख, वैमनस्य।

[विशेष]—नायक रात भर बाहर रहकर प्रातःकाल घर आया है। परस्त्री-प्रसंग के सब चिन्ह छिपा के नायिका से रात भर बाहर

रहने का कुछ और ही कारण बताया है (नाटक वा तमाशा देखना इत्यादि)। नायिका पहले इस प्रकार बाहर न रहने के लिये प्रेम का निहोरा देकर उपालंभ सा देने लगी, पर वार्ता के बीच ही में नायक की आँखें कुछ लज्जित सी देख पड़ीं। इस चिह्न से नायिका ने तुरन्त असली बात जान ली और नेत्रों से क्रोध प्रकट किया। सखी का वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—गर्व-सहित किसी और ही प्रकार के वैमनस्य की बातें कर रही थी कि वे बातें अधूरी ही छोड़ीं और नायक के नेत्रों को लज्जित देखकर (असली बातें समझ कर) नायिका ने अपने नेत्रों को क्रोधयुक्त किया।

अलंकार—अनुमान।

दो०—तेह तरेरे त्यौर करि, कत करियत दृग लोल।
लीक नहीं यह पीक की, श्रुतिमनि-झलक कपोल ॥३८५॥

शब्दार्थ—तेह = क्रोध (से)। तरेरे त्यौर करि = भौंहें तान कर। लोल = चंचल। लीक = लकीर। श्रुतिमणि = कुंडल की मणि।

[विशेष]—नायक के गाल पर कुंडल के माणिक की छाया पड़ती है। उसे देख नायिका नायक पर क्रुद्ध होकर आँखें तानती है। वह समझी है कि किसी अन्य नायिका ने नायक के गाल का चुम्बन लिया है। सखी उसका भ्रम निवारण करती है।

भावार्थ—हे सखी, क्रोध से भौंहें तान कर क्यों नेत्र चंचल करती है। यह पीक की लकीर नहीं है, कुंडल की मणि की झलक है, जो कपोल पर पड़ रही है।

अलंकार—भ्रान्त्यपह्नुति।

दो०—बाल कहा लाली भई, लोयन कोयन माँह।
लाल तिहारे दृगन की, परी दृगन में छाँह ॥३८६॥

शब्दार्थ—लोयन कोयन = लोचन के कोयों में।

(वचन)—नायक और नायिका का प्रश्नोत्तर।

भावार्थ—हे बाला ! तेरे लोचनों के कोयों में लाली क्यों आई ? हे लाल, मेरे नेत्रों में तुम्हारे नेत्रों की छाया पड़ी है।

अलंकार—गूढ़ोत्तर।

दो०—तरुन कोकनद बरन वर, भये अरुन निसि जागि।
बाही के अनुराग दृग, रहे मनो अनुरागि ॥३८७॥

शब्दार्थ—तरुन कोकनद=अच्छी प्रकार खिला हुआ लाल कमल। अरुन=लाल। अनुराग=प्रेम।

भावार्थ—हे लाल! रात भर जगने के कारण आपने नेत्र अच्छी प्रकार खिले हुए लाल कमल के रंग के हो रहे हैं, मानो उसीके प्रेम से (जिसके पास रात भर रहे हो) रङ्ग गये हैं।

अलंकार—सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा।

दो०—केसर केसरि-कुसुम के, रहें अंग लपटाय।
लगे जानि नख अनखुली, कत बोलत अनखाय ॥३८८॥

शब्दार्थ—केसर=किंजल्क। अनखुली=अनख माननेवाली, क्रुद्ध। अनखाय=क्रुद्ध होकर।

(वचन)—खंडिता नायिका-प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—नायक के शरीर में केसर के फूल के किंजल्क लपटे हुए हैं। हे अनखीली, तू इन्हें अन्य नायिका-कृत नखक्षत समझकर क्यों क्रुद्ध हो-होकर बातें करती है।

अलंकार—भ्रान्त्यपह्नुति (काकु से पुष्ट)।

दो०—सदन सदन के फिरन को, सद न फिर हरिराय।
रुचै तितै बिहरत फिरौ, कत बिहरत उर आय ॥३८९॥

शब्दार्थ—सदन=घर। सद=स्वभाव। न फिरै=नहीं पलटती है, नहीं छूटती है। बिहरत=फाड़ते हो, विदीर्ण करते हो।

(वचन)—खंडिता नायिका-वचन नायक-प्रति।

भावार्थ—हे हरिराय (कृष्ण), तुम्हारी घर-घर फिरने की आदत नहीं छूटती। अच्छा, जहाँ जी चाहे वहाँ विहार करो, यहाँ आकर मेरा हृदय क्यों विदीर्ण करते हो।

अलंकार—आक्षेप (व्यक्ताक्षेप)। यमक।

दो०—पट कै ढिग कत ढाँपियत, सोभित सुभग सुबेख।
हद रदछद छबि देत यह, सद रदछद की रेख।।२६०।।

शब्दार्थ—हद=हदभर, बहुत। रदछद=ओंठ। सद=ताजी, हाल की। रदछद=(रद+क्षत) दाँत का घाव। रेख=लकीर।

[विशेष]—नायक ने अन्य नायिका के साथ विपरीत रति की है। नायक के ओंठ पर नायिका-कृत दंताघात का चिह्न मौजूद है। उसे नायक रूमाल से छिपाता है। इस पर खंडिता का वचन नायक-प्रति। यह दोहा लक्षिता नायिका पर भी लगता है।

भावार्थ—हे लाल, कपड़ा (रूमाल) निकट ला-लाकर उसे क्यों छिपाते हो, वह तो अत्यन्त सुन्दर रूप से शोभा दे रही है। इस ताजी दंताघात की रेखा से आपका ओंठ भारी छबि दे रहा है।

अलंकार—वृत्यनुप्रास।

दो०—मोहू सों बातनि लगै, लगि जीह जिहि नायँ।
सोई लै उर लाइये, लाल लागियत पायँ।।२९१।।

[विशेष]—नायिका से बातें करते हुए अकस्मात् नायक के मुख से किसी अन्य नायिका का नाम निकला। इस पर क्रुद्ध होकर नायिका नायक से कहती है। धीराधीरा नायिका।

भावार्थ—मुझसे बातें करते हुए भी आपकी जीभ जिसके नाम से लगी हुई है (जिसका नाम अनायास आपके ज़बान से निकल जाता है) हे लाल, आपके पैरों पड़ती हूँ, उसीको लेकर हृदय से लगाइये।

अलंकार—आक्षेप।

दो०—लालन लहि पाये दुरै, चोरी सौंह करै न।
सीस चढ़े पनहाँ प्रगट, कहैं पुकारे नैन।।२९२।।

शब्दार्थ=लहिपाये=जानलिया। दुरै चोरी सौंह करै न=शपथ से चोरी नही छिपती। पनहाँ=चोरी का पता बताने वाले लोग।

(वचन)—खंडिता-वचन नायक-प्रति।

भावार्थ—हे लालन, आज तुम्हारी चोरी पकड़ ली गई, शपथ करने से चोरी नहीं छिपती। पनहाँ-रूप ये तुम्हारे नेत्र ही तुम्हारे सिर चढ़े हुए प्रकट ही पुकार-पुकार कर कह रहे हैं (कि तुम रात भर कहीं जगे हो)।

अलंकार—रूपक (नेत्र पनहा)।

दो०—तुरत सुरत कैसे दुरत, मुरत नैन जुरि नीठि।
डौंड़ी दै गुन रावरे, कहत कनौड़ी डीठि ॥२९३॥

शब्दार्थ—सुरत=मैथुन। जुरि नीठि=मुशकिल से मिलकर। डौंड़ी दै=डुग्गी बजाकर। कनौड़ी=(कान+औंड़ो) कान की ओर झुकी हुई (अर्थात् लज्जित)।

(वचन)—खंडिता-वचन नायक-प्रति।

भावार्थ—हे लालन, भला सद्यः संभोग कैसे छिप सकता है। देखो, मुशकिल से तो तुम्हारी दृष्टि मेरी दृष्टि से जुड़ती है और जुड़ते ही फौरन मुड़ जाती है (लज्जित होकर अन्यत्र देखने लगते हो)। यही तुम्हारी कनौड़ी (लज्जित) दृष्टि तुम्हारे गुण (अवगुण) को डौंड़ी बजाकर कहती है।

अलंकार—वृत्यनुप्रास, छेकानुप्रास लोकोक्ति।

दो०—मरकत-भाजन-सलिल-गत, इन्दुकला के बेष।
झीन झँगा में झलमलत, स्यामगात नख-रेख ॥२९४॥

शब्दार्थ—मरकत=नीलमणि। सलिल=पानी। वेष=रूप। झीन =महीन। झँगा=जामा।

(वचन)—खंडिता-वचन नायक-प्रति।

भावार्थ—हे लालन, महीन जामा के भीतर आपके साँवले शरीर पर विपरीत रति में अन्य नायिका-कृत नखरेखा ऐसी शोभा देती है, मानो नीलमणि के पात्र में भरे हुए जल में द्वितीया के चन्द्रमा का प्रतिबिंब पड़ता हो।

अलंकार=गम्योत्प्रेक्षा। (उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा)।

दो०—वैसी यै जानी परति, झँगा ऊजरे माँह।
मृगनैनी लपटी जु हिय, बेनी उपटी बाँह ॥२९५॥

शब्दार्थ—वैसी यै = ज्यों की त्यों। जानी परति = देख पड़ती है। झँगा = जामा। ऊजरा = सफेद। उपटी = उछरी हुई।

(वचन)—खंडिता-वचन नायक-प्रति।

भावार्थ—हे लालन, वह मृगनैनी जो तुम्हारे हृदय से लिपटी है उसकी चोटी का चिह्न तुम्हारी बाँह पर उपटा हैं, वह ज्यों-का त्यों तुम्हारे सफेद जामा में से दिखाई देता है।

अलंकार—छेकानुप्रास।

दो०—चाही की चित चटपटी, धरत अटपटे पाय।
लपट बुझावत बिरह की, कपट भरेहू आय ॥२९६॥

शब्दार्थ—चटपटी = उत्सुकता। अटपटे = अस्तव्यस्त। लपट = ज्वाला।

(वचन)—उत्तमा खंडिता का वचन नायक-प्रति।

भावार्थ—हे प्रीतम ! तुम कपट भरे हुए भी आते हो, तब भी मेरी विरह की ज्वाला ठंढी हो जाती है। तुम अस्तव्यस्त पैर रखते हो, इसी से जान पड़ता है कि किसी अन्य नायिका से मिलने की, तुम्हारे चित्त में उत्सुकता है।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में अनुमान। उत्तरार्द्ध में पाँचवीं विभावना।

दो०—कत बेकाज चलाइयत, चतुराई की चाल।
कहे देत यह रावरे, सब गुन बिनगुन माल ॥२९७॥

शब्दार्थ—चाल = चालबाजी। गुन = (साध्यवसाना लक्षणा से) दोष। बिन गुन माल = बिना डोरी की माला (नायिका के हृदय की माला आलिंगन करने से नायक के हृदय में उपटी है)।

भावार्थ—क्यों व्यर्थ चतुराई की चालबाजी करते हो, यह बिना डोरे की माला ही आपके सब गुण (दोष) कहे देती है !

अलंकार—विरोधाभास ।

दो०—पावक सो नैननि लगै, जावक लाग्यो भाल ।
मुकुर होहुगे नेकु में, मुकुर बिलोको लाल ॥३९८॥

शब्दार्थ—मुकुर होहुगे=नाहीं कर जाओगे। नेकु में=थोड़ी देर में। मुकुर=आइना, दर्पण।

(वचन)—खंडिता-वचन नायक-प्रति ।

भावार्थ—हे लाल, यह महावर जो तुम्हारे मस्तक पर लगा है, वह मेरे नेत्रों में आग सा लगता है। थोड़ी ही देर में फिर तुम इन्कार कर जाओगे, लो दर्पण में मुख देख लो।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में उपमा, उत्तरार्द्ध में यमक।

दो०—रही पकरि पाटी सुरिस, भरे भौंह चित नैन ।
लखि सपने पिय आन रति, जगतहुँ लगति हिये न ॥३९९॥

(वचन)—सखी-प्रति सखी-वचन। नायिका की दशा का वर्णन।

भावार्थ—एक ओर की पाटी पकड़कर रह गई, भौंह चित्त और नेत्र बड़े क्रोध से भर गये। स्वप्न में अपने पति को अन्य स्त्री से रति करते देखकर, जगने पर भी, पति के हृदय से नहीं लगती।

अलंकार—भ्रम।

दो०—रह्यौ चकित चहुँधा चितै, चित मेरो मति भूलि ।
सूर उदै आये रही, दृगन साँझ सी फूलि ॥४००॥

शब्दार्थ—चहुँधा=चारो ओर। साँझ-सी फूलना=लाल हो जाना।

(वचन)—खंडिता-वचन नायक-प्रति।

भावार्थ—हे लालन, तुम्हें देखकर मेरा चित्त सब बुद्धि भुलाकर चकित होकर चारो ओर देख रहा है (अर्थात् बुद्धि चकित हो रही है)। आपका बड़ा विचित्र रूप बन रहा है। रात भर कहीं अन्यत्र बिताकर सूर्योदय के समय तो आये हो और आँखें संध्या-सी फूल रही हैं (नेत्र लाल हैं)।

अलंकार—अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

पंचम शतक

(खंडिता-वर्णन)

दो०—अनत बसे निसि की रिसनि, उर बरि रही विसेपि।
तऊ लाज आई उझकि, खरे लजौहैं देखि ।४०१।

शब्दार्थ—अनत = अन्यत्र। वरि रही = जल रही। उझकि आई = उमड़ कर आगे आ गई (जो पहले कोप से दबी हुई थी)। खरे लजौहैं = अति लज्जित।

(वचन)—मध्या-खंडिता का वचन सखी-प्रति। अपनी दशा कहती है।

भावार्थ—(नायक के) रात्रि भर अन्यत्र रहने के कारण हृदय में क्रोध तो बहुत था; परन्तु, हे सखी, क्या करूँ, उनको अत्यन्त लज्जित देखकर मेरे हृदय की दबी हुई लज्जा भी उमड़ ही आई (अर्थात् लज्जित होकर मैं क्रोध प्रदर्शित न कर सकी)।

अलंकार—तीसरी विभावना और हेतु की संसृष्टि।

दो०—सुरँग महावर सौति पग, निरखि रही अनखाय।
पिय अँगुरिन लाली लखे, खरी उठी लगि लाय ॥४०२॥

शब्दार्थ—लाय लगि उठी = आग लग उठी।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—सवत के पैर में सुन्दर लाल महावर लगा हुआ देखकर लाड़िली ने बुरा माना (कुछ क्रुद्ध हुई), फिर प्रियतम (पति) की उँगलियों में महावर की लाली देखकर तो उसके हृदय में क्रोध की अग्नि ही लग गई।

अलंकार—हेतु।

दो०—कत सकुचत निधरक फिरौ, रतियौ खोरि तुम्हैं न ।
कहा करौ जो जाय ये, लगैं लगौहैं नैन ॥४०३॥

शब्दार्थ—निधरक=निःशंक । रतियौ=रत्ती भर भी । खोरि=दोष । लगौहैं=लग्गू, लगनिया (प्रेमी) ।

(वचन)—नायिका-वचन नायक-प्रति ।

भावार्थ—क्यों सकुचाते हो, तुम जहाँ चाहो वहाँ निःशंक फिरो, तुम्हारा तो रत्ती भर भी दोष नहीं है । दोष है तुम्हारे नेत्रों का, ये लगनिया नेत्र जो जाकर किसी से लग जाय तो तुम क्या करो !

अलंकार—व्यक्ताक्षेप ('निधरक फिरो' विधि, तात्पर्य कहीं मत जाओ) ।

दो०—प्रान प्रिया हिय में बसै*, नख-रेखा-ससि भाल ।
भलो दिखायो आनि यह, हरि-हर-रूप रसाल ॥४०४॥

भावार्थ—हे लाल, प्राणप्रिया (अन्य स्त्री) तो हृदय में वसी है (जैसे विष्णु के हृदय में श्रीवत्स का चिह्न है), और नखरेखा-रूपी चंद्रमा भाल पर है (जैसे शिव के मस्तक पर द्वितीया का चन्द्रमा रहता है), सो हे महाराज, मेरे यहाँ आकर आपने इस रसीले हरि-हर-रूप का दर्शन भले कराया ! ऐसे दर्शन बड़े सौभाग्य से ही प्राप्त होते हैं ।

[विशेष]—'नखरेखा' हृदय पर होती है । (देखो दोहा नं० ४०५)। यहाँ भालपर कहने से यह तात्पर्य है कि वह नायिका, जिससे विपरीत रति करके नायक आया है इतनी गँवार है, कि रति-समय उसने भाल पर नखक्षत किये हैं ।

---

*हमारा अनुमान है कि किसी प्राचीन प्रति में लिपि-भ्रम से 'लखरेखा' के स्थान में 'नख-रेखा' लिख गया होगा । 'लखरेखा' का अर्थ होगा लाक्षारस की लकीर (महावर की लकीर) । पीछेवाले टीकाकार मक्षिका स्थाने मक्षिका करते चले आये । गलती को अपनी बुद्धिमानी से समर्थन भी करते आये । हमारी सम्मति में भाल पर नखरेखा बिहारी ने न लिखा होगा । देखो दो० नं० ४०७,४२२

अलंकार—रूपक से पुष्ट काकुवक्रोक्ति (भलो दिखायो = बुरा दिखलाया)।

दो०—ह्याँ न चलै बलि रावरी, चतुराई की चाल।
सनख हिये खिन-खिन नटत, अनख बढ़ावत लाल ॥४०५॥

शब्दार्थ—सनख = नखरेखा-युक्त। नटत = नाहीं करते हो। अनख = क्रोध।

(वचन)—खंडिता-वचन नायक-प्रति।

भावार्थ—हे लाल, मैं बलिहार होती हूँ (आपके इस रूप पर)। यहाँ आपकी चतुराई कुछ काम न करेगी। छाती पर नखरेखा होते हुए भी आप बार-बार इन्कार करके क्रोध बढ़ाते हैं।

अलंकार—हेतु।

दो०—न करु न डरु सब जग कहत, कत बेकाज लजात।
सौंहैं कीजै नैन जो, साँची सौंहैं खात ॥४०६॥

शब्दार्थ—बेकाज = व्यर्थ। सौंहैं = शपथ।

भावार्थ—सारा संसार कहता है कि "न करो, न डरो", अतः यदि आपने दोष नहीं किया, तो व्यर्थ क्यों लजाते हैं, यदि सच्ची शपथ करते हैं तो आँखें सामने कीजिये।

[विशेष]—रात के जागरण से नायक के नेत्र लाल हो रहे हैं, इसी से वह नायिका के सम्मुख नहीं हेरता।

अलंकार—लोकोक्ति और यमक।

दो०—कत कहियत दुख देन कों, रचि रचि बचन अलीक।
सबै कहाउ रहैं लखें, भाल महाउर-लीक ॥४०७॥

शब्दार्थ—अलीक = झूठे। कहाउ = कहना, बातचीत। रहैं = एक ओर पड़ जाते हैं, व्यर्थ हो जाते हैं। लीक = रेखा।

(वचन)—खंडिता-वचन नायक-प्रति।

भावार्थ—हे लाल, दुःख देने के लिए क्यों झूठी बातें बनाते हो।

तुम्हारे भाल पर महावर की रेखा देखकर तुम्हारी सब बातें व्यर्थ (झूठी) पड़ जाती हैं।

अलंकार—प्रत्यक्ष प्रमाण।

दो०—नख-रेखा सोहैं नई, अरसौहैं सब गात।
सौहैं होत न नैन ये, तुम सौहैं कत खात ॥४०८॥

शब्दार्थ—अरसौहैं = अलसाये हुए। सौहैं=(१) सामने (२) शपथ।

(वचन)—खंडिता-वचन नायक-प्रति।

भावार्थ—हे लाल, तुम कसम खाकर सफाई क्यों देते हो, तुम्हारी सब करतूत तो इन बातों से प्रत्यक्ष मालूम होती है, कि तुम्हारे सीने पर नवीन नख-रेखाएँ शोभित हैं, सारा शरीर आलस्ययुक्त है और आँखें सामने नहीं होतीं।

अलंकार—यमक (सौहैं शब्द से)।

दो०—लाल सलोने अरु रहे, अति सनेह सों पागि।
तनक कचाई देत दुख, सूरन लौं मुँह लागि ॥४०९॥

शब्दार्थ—सलोने = (१) सुन्दर (२) नमकीन। सनेह = (१) प्रेम (२) तैल। कचाई = (१) कच्चापन (२) कपट। मुँह लागि = (१) ढिठाई करके (२) मुख में काट करके (कच्चा सूरन जीभ और कंठ में कनकनाता है)।

(वचन)—खंडिता-वचन नायक-प्रति।

भावार्थ—हे लाल, आप अत्यन्त रूपवान और अत्यन्त प्रेमी तो अवश्य हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं; परन्तु तनक सा कपट और ढिठाई उसी प्रकार दुख देते हैं, जैसे कच्चा सूरन मुँह में लगकर कनकनाता है (अर्थात् तैल से भूनने और नमक डालने पर भी यदि सूरन कुछ कच्चा रह जाता है तो काटता है)।

अलंकार—श्लेष से परिपुष्ट पूर्णोपमा।

दो०—कत लपटैयत मो गरे, सो न जु ही निसि सैन।
जिहि चंपकबरनी किये, गुल्लाला रँग नैन ॥४१०॥

शब्दार्थ—ही = थी। सैन = सेज। रँग = से, समान।

(वचन)—खंडिता-वचन नायक-प्रति।

भावार्थ—मेरे गले से क्यों लिपटते हो, मैं वह नहीं हूँ जो रात को सेज पर थी, और जिस चंपकवर्णी ने तुम्हारे नेत्र गुलाला-से (सुर्ख) कर दिये हैं (रात भर जगा कर)।

अलंकार—मुद्रा और पूर्णोपमा की संसृष्टि है। मुख्य मुद्रा है।

दो०—पल सोहैं पगि पीक रँग, छल सो हैं सब बैन।
वल सौंहैं कत कीजियत, ए अलसौंहैं नैन ॥४११॥

शब्दार्थ—वल = बलपूर्वक, जबरदस्ती। सौंहैं = सामने।

भावार्थ—पीक के रंग से पगकर पलकें शोभित हैं (रात भर जगने से आँखों में सुर्खी छाई है)। बातें सब छलयुक्त हैं। अतः इन अलसाये हुए नेत्रों को जबरदस्ती मेरे सामने क्यों करते हो।

[विशेष]—यह दोहा बहुत हलका है, कोई उमदा व्यंग नहीं है, अतः कोई-कोई कहते हैं कि यह बिहारी का नहीं है।

अलंकार—अनुप्रास और यमक।

दो०—भये बटाऊ नेह तजि, बादि बकति बेकाज।
अब अलि देत उराहनो, उर उपजति अति लाज ॥४१२॥

शब्दार्थ—बटाऊ = बटोही ; मुसाफिर। बादि = व्यर्थ।

[विशेष]—नायक रात भर अन्यत्र रहकर सवेरे आया है। नायिका की सखी उलाहना देती है। इस पर नायिका मना करती है।

भावार्थ—हे सखी, अब तो ये प्रेम छोड़कर, मुसाफिर हो गये हैं (सर्वत्र घूमते-फिरते रहते हैं, मेरे पास नहीं रहते), व्यर्थ फजूल वार्ता क्यों करती है। अब तो इनको उलाहना देते भी लज्जा आती है (उलाहना तो उसे दिया जाता है, जो अपना होता है)।

अलंकार—आक्षेप।

दो०—सुभरु भर्‌यो तुव गुन-कननि, पचयो कपट कुचाल।
क्यौं धौं दार्‌यौं लौं हियौ, दरकत नाहिंन लाल ॥४१३॥

शब्दार्थ—सुभर भर्यो = खूब अच्छी तरह भर गया है। कन = दाने। पचयो = पकाया। दार्यों = (सं० दाडिम) अनार। दरकना = फटना। नाहिंन = नहीं।

(वचन)—खंडिता-वचन नायक-प्रति।

भावार्थ—तुम्हारे गुण (दोष) रूपी दोनों से (मेरा हृदय) खूब अच्छी तरह भर गया है, और तुम्हारी कपटमय कुचाल ने उसे पका भी दिया है, पर हे लाल, न जाने क्यों अनार की भाँति यह मेरा हृदय फटता नहीं।

अलंकार—रूपक से परिपुष्ट पूर्णोपमा।

दो०—मैं तपाय त्रय ताप सों, राख्यौं हियो हमाम।
सकु कबहूँ आवै इहाँ, पुलक पसीजे स्याम ॥४१४॥

शब्दार्थ—हमाम=(अ०) गुसुलखाना, स्नान करने का घर। सकु= शायद। पुलक = हर्षित हों (स्नान करके)। पसीजे = श्रम के कारण पसीने से तर।

[विशेष]—नायक रात्रि भर अन्यत्र रहकर प्रातःकाल पसीने से तर-बतर और श्रमित हुआ आया है। इसपर खंडिता नायिका का कथन है।

भावार्थ—पसीने से तर-बतर, हे कृष्ण, आइये, स्नान करके हर्षित हूजिये। मैंने अपने हृदय-हम्माम को इसीलिये त्रिताप से तपा रक्खा है कि शायद यहाँ आप कभी आ जायें।

[विशेष]—त्रिताप = मदनताप, उद्दीपनादि ताप, विरहताप। कोई-कोई इस दोहे का अर्थ शांतरस में भी लगाते हैं। कोई भक्त कृष्ण-प्रति कहता है।

अलंकार—रूपक।

दो०—आजु कछू औरै भये, ठये नये ठिकठैन।
चित के हित के चुगुल ये, नित के होहिं न नैन ॥४१५॥

शब्दार्थ—नये ठिकठैन ठये=नवीन ठीक-ठाक से बने हैं। हित=प्रेम।

(वचन)—इस दोहे में नायिका-वचन नायक-प्रति मानें तो खंडिता, यदि नायिका-वचन सखी-प्रति मानें तो अन्य-संभोग दुःखिता और यदि सखी-वचन नायिका-प्रति मानें तो लक्षिता नायिका होगी।

भावार्थ—आज तो कुछ और ही प्रकार के हो रहे हैं, नवीन आन-बान के बने हैं। ये तुम्हारे नेत्र दिली प्रेम की चुगुली करते हैं (चित्त का गुप्त प्रेम प्रकट करते हैं), आज ये नित्य के से नहीं जान पड़ते हैं।

अलंकार—भेदकातिशयोक्ति।

दो०—फिरत जु अटकत कटनि बिन, रसिक सुरस न खियाल।
अनत अनत नित-नित हितन, कत सकुचावत लाल ॥४१६॥

शब्दार्थ—अटकना=उलझना, प्रेम करना। कटनि=आसक्ति। सुरस=सच्चा प्रेम। खियाल=(ख्याल) बुद्धि, समझ। अनत=अन्यत्र। हित=प्रेम। सकुचावत=लज्जित करते हो।

(वचन)—नायिका-वचन नायक-प्रति।

भावार्थ—हे लाल, बिना आसक्ति के ही जो तुम उलझते फिरते हो, इससे जान पड़ता है कि तुम ऐसे रसिक हो कि प्रेम को समझते ही नहीं हो (सच्चा प्रेमी एक ही से प्रेम करता है)। नित्यप्रति अन्यत्र-अन्यत्र प्रेम करके मुझे क्यों लज्जित कराते हो (अर्थात् सखियाँ कहेंगी कि मैं प्रेम नहीं करती, इससे तुम नित्य नई नायिका ढूँढ़ते फिरते हो, अथवा यह कहेंगी कि यह ऐसे मूर्ख की स्त्री है जो प्रेम करना जानता ही नहीं। इन वचनों से मुझे लज्जा होगी)।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में प्रथम विभावना, उत्तरार्द्ध में पर्यायोक्ति।

दो०—जो तिय तुव मन भावती, राखी हिये बसाय।
मोहिं खिझावति दृगनि ह्वै, वहियै उझकति आय ॥४१७॥

शब्दार्थ—खिझावती=चिढ़ाती है, दिक करती है। वहियै=वही। उझकति आय=आ-आकर झाँकती है।

[विशेष]—नायिका नायक की आँखों में अपना प्रतिबिंब देखकर ऐसा कहती है। बिहारी ने इस दोहे में स्त्री-जाति के सच्चे-स्वभाव का अच्छा उद्घाटन किया है। स्त्री को अपनी छाया का भी सपत्नी भाव अखरता है।

भावार्थ—हे लाल, जो स्त्री आपको भाती है, उसी को आपने अपने हृदय में बसा रक्खा है। वही मुझको चिढ़ाती है। हृदय-रूपी घर के नेत्र-रूपी झरोखों से वह बार-बार झाँकती है।

अलंकार—भ्रम (प्रतिबिंब में अन्य नायिका का भ्रम)।

दो०—मोहिं करत कत बावरी, किये दुराव दुरै न।
कहे देत रँग राति के, रँग-निचुरत-से नैन ॥४१८॥

शब्दार्थ—रँग = समाचार। रँग निचुरत-से = लाल, सुर्ख।

(वचन)—खंडिता का वचन शठ नायक-प्रति।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—अनुमान। अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—पट सों पोंछि परे करो, खरो भयानक भेष।
नागिन ह्वै लागति दृगनि, नागबेलि की रेख ॥४१९॥

शब्दार्थ—परे करो = दूर करो। नागबेलि = पान (यहाँ पीक) ह्वै = सी, समान। दृगनि नागबेलि की रेख = आँखों में पीक की रेखा अर्थात् रात को जगने से आँखों की सुर्खी।

(वचन)—खंडिता-वचन नायक-प्रति।

भावार्थ—हे लाल आपके नेत्रों में जो यह पानपीक की रेखा है, वह मेरी आँखों को नागिन-सी डसती है। इसका रूप बड़ा भयानक है, कृपया इसे कपड़े से पोंछकर दूर कीजिए।

अलंकार—उपमा और देहरी दीपक ('दृगनि' शब्द दोनों ओर लगता है)।

दो०—ससि-बदनी मोकों कहत, हौं समुझी निजु बात।
नैन-नलिन प्यौ रावरे, न्याय निरखि नै जात ॥४२०॥

शब्दार्थ—निजु = निश्चयपूर्वक । नैन-नलिन=नेत्र-कमल । न्याय= न्याय ही है । नै जात=संकुचित होकर झुक जाते हैं, लज्जित हो जाते हैं।

(वचन) खंडिता-वचन नायक-प्रति ।

भावार्थ—हे प्रियतम, तुम जो मुझे चंद्रमुखी कहते हो, यह बात मैंने आज निश्चयपूर्वक समझी । यह न्याय ही है कि मेरे चन्द्रमुख को देखकर आपके नेत्र-कमल झुक जाते हैं । (लज्जित हो जाते हैं)।

अलंकार—परिकर ।

दो०—दुरै न निघरघटौ दियै, या रावरी कुचाल ।
विष-सी लागति है बुरी, हँसी खिसी की लाल ॥४२१॥

शब्दार्थ—निघरघट देना=(नि + घर + घाट) निश्चयपूर्वक अपने रहने का घर और अपने घुमने-फिरने का घाट बतला देना, लिन्नो देना, सफाई देना, घघौट देना ।

(वचन)—खंडिता नायिका का वचन धृष्ट नायक-प्रति ।

भावार्थ—साहसपूर्वक सफाई देने से यह आपकी कुचाल न छिपेगी । यह तुम्हारी खिसियानेपन की हँसी (अर्थात् बेहयाई की हँसी) मुझे विष-सी लगती है ।

अलंकार—पूर्णोपमा ।

दो०—जिहि भामिनि भूषन रच्यो, चरण महाउर भाल ।
वही मनो अँखियाँ रँगीं, ओंठनि के रँग लाल ॥४२२॥

[विशेष]—'भूषण' का अन्वय 'भाल' के साथ और 'मनो' का अन्वय रँगी क्रिया के साथ समझनी चाहिये ।

भावार्थ—जिस भामिनी ने अपने चरणों के महावर से तुम्हारे भाल का भूषण रचा है (अर्थात् जिस मानिनी नायिका के महावरयुक्त पैरों पर तुमने मस्तक रगड़ा है) उसीने तुम्हारी आँखों को मानों ओंठों के रँग से रँगा है । (रात भर अपने साथ जगाकर आँखें सुर्ख कर डाली हैं)।

अलंकार—अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा (क्रिया के साथ 'मनो' का अन्वय होने से अनुक्तविषया उत्प्रेक्षा होती है)।

(मानिनी-वर्णन)

दो०---चितवनि रूखे दृगनि की, बिन हाँसी मुसुकानि।
मान जनायो मानिनी, जानि लियो पिय जानि ॥४२३॥

शब्दार्थ—जानि = ज्ञानी, जानकर, प्रवीण।

(वचन) –सखी का वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—रूखी आँखों की चितवन और बिना हँसी की मुसकुराहट से मानिनी ने अपना मान जनाया और प्रवीण (चतुर) नायक ने जान लिया कि इसने मान किया है।

अलंकार—हेतु और अनुमान संकर।

दो०—बिलखी लखै खरी खरी, भरी अनख बैराग।
मृगनैनी सैन न भजै, लखि बेनी के दाग ॥४२४॥

शब्दार्थ—बिलखी = व्याकुल होकर। अनख=क्रोध। बैराग=उदासीन भाव। सैन न भजै = सेज पर नहीं चढ़ती। दाग = (अ०) चिह्न।

(वचन)—सखी-प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—नायक की सेज पर किसी अन्य स्त्री की वेणी का चिह्न देखकर वह मृगनैनी दूर ही खड़ी-खड़ी व्याकुल हो रही है और क्रोध तथा उदासीनता के भावों के उत्तेजित हो आने के कारण शय्या पर नहीं बैठती।

अलंकार—छेकानुप्रास।

दो०—हँसि हँसाय उर लाय उठि, कहि न रुखौहैं बैन।
जकित थकित से ह्वै रहे, तकत तिलौंछे नैन ॥४२५॥

शब्दार्थ—तिलौंछे = (तैल + औंछे) जिसमें से तैल निकाल लिया गया हो (रूखे, स्नेहहीन)।

(वचन)—मानिनी नायिका-प्रति सखी के शिक्षा-वचन, मानते हुए नायक के सामने ही।

भावार्थ--हे लाड़िली, क्यों मान किये बैठी हो ? उठ, तू स्वयं हँस और इन्हें भी हँसाकर छाती से लगाले, रूखे वचन मत कह, देख तो, वह तेरा प्यारा तेरे रूखे नेत्र देखकर कैसा भयभीत और स्थकित सा (जड़वत्) हो गया है।

[विशेष]—त्रास और जड़ता संचारी हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा से परिपुष्ट हेतु।

दो०—रस के से रुख ससिमुखी, हँसि हँसि बोलति बैन।
गूढ़ मान मन क्यों रहै, भये बूढ़ रँग नैन ॥४२६॥

शब्दार्थ—रस के से रुख=प्रेम की सी चेष्टा से। गूढ़=छिपा हुआ। बूढ़=बीरबहूटी। रँग। समान।

(वचन)—सखी-वचन मानिनी नायिका-प्रति।

भावार्थ—हे शशिमुखी, तू प्रेम की सी चेष्टा से हँस-हँसकर नायक से बातें तो करती है, परन्तु मन में जो छिपा हुआ मान है वह कैसे छिपा रह सकता है, तेरी आँखें क्रोध से बीरबहूटी सी (सुर्ख) हो गई हैं।

अलंकार—धर्मलुप्तोपमा [भये बूढ़ रँग नैन=भये बूढ़ से (लाल) नैन]।

दो०—मुँह मिठास दृग चीकने, भौंहैं सरल सुभाय।
तऊ खरे आदर खरो, खिन खिन हियो सकाय ॥४२७॥

(वचन)—नायक-वचन मानिनी नायिका-प्रति।

भावार्थ—हे प्यारी, यद्यपि तू मीठी बातें करती है, नेत्रों से स्नेह प्रकट होता है, और भौंहें भी स्वाभाविक रीति से सीधी ही हैं (टेढ़ी नहीं हुई) तो भी प्रतिक्षण अधिकाधिक (अस्वाभाविक) आदर करने से मेरा हृदय बहुत शंकित होता है (कि तूने मान किया है और मुझे लज्जित करने को यह आदर कर रही है।

अलंकार—पंचम विभावना(आदर से शंका)।

दो०—पति रितु अवगुन गुन बढ़त, मान माह को सीत।
जात कठिन ह्वै अति मृदौ, रमनीमन नवनीत ॥४२८॥

शब्दार्थ—मृदौ = मृदु भी। नवनीत = नैनू, माखन।

(वचन)—कवि की उक्ति 'मान' के सम्बन्ध में।

[विशेष]—इस दोहे में यथाक्रम अलंकार है। इस अलंकार को समझ लेने से इसका अर्थ बड़ी सरलता से समझ में आ जाता है।

भावार्थ—पति के अवगुण से मान बढ़ता है और ऋतु के गुण (अर्थात् प्रभाव) से माघ मास की सर्दी बढ़ती है। मान के कारण स्त्री का अति कोमल चित्त कठिन हो जाता है। और माघ के शीत के कारण अति मृदु नैनू भी कठोर हो जाता है। लल्लूलालजी ने एक ही दोहे में इसका अर्थ यों लिखा है।

दो०—पति अवगुन ऋतु के गुनन, बढ़त मान अरु सीत।
होत मान ते मन कठिन, सीत कठिन नवनीत ॥

अलंकार—यथाक्रम।

दो०—कपट सतर भौंहैं करी, मुख सतरौंहैं बैन।
सहज हँसौंहैं जानिकै, सौंहैं करति न नैन ॥४२९॥

शब्दार्थ—सतर = तरेरी, वंक, टेढ़ी। सतरौंहैं = क्रोधयुक्त।

(वचन)—मुग्धा नायिका सखियों के सिखाने से मान करती है। ऐसी ही किसी मुग्धा के मान की दशा कोई सखी अन्य सखी से कहती है।

भावार्थ—मेरे सिखाने से भौंहें टेढ़ी करलीं, और मुख से क्रुद्ध वचन भी कहे, परन्तु अपने नेत्रों को सहज ही हँसोड़ समझ कर नायक के सामने नहीं करती (ऐसा न हो कि उसे देखते ही मेरे नेत्र हँस पड़ें और बनावटी मान भी छूट जाय)।

अलंकार—छेकानुप्रास और यमक।

दो०—सोवत लखि मन मान धरि, ढिग सोयो प्यौ आय ।
रही सुपन की मिलन मिलि, तिय हिय सों लपटात॥४३०॥

(वचन)—नायिका की दशा-वर्णन । सखी-प्रति सखी-वचन ।

भावार्थ—मन में मान करके नायिका लेटी हुई है (सोती नहीं, केवल सोने का बहाना किये लेटी है) । यह देख कर नायक भी आकर शय्या पर लेट रहा, तब (कामोद्दीपन के कारण) नायिका का मान छूट गया, परन्तु उसे प्रकट न करके, स्वप्न की मिलन की तरह (अर्थात् मानों सोते में ऐसा कर रही है) नायिका नायक के हृदय से लिपट गई ।

अलंकार—पर्यायोक्ति ।

दो०—दोऊ अधिकाई भरे, एकै गौं गहराइ ।
कौन मनावै को मनै, मानै मति ठहराइ ॥४३१॥

शब्दार्थ—गौं = तात्पर्य । गहराना = गर्रा करना । एकै गौं = बराबर ।

[विशेष]—इसमें 'प्रणयमान' का वर्णन है । 'प्रणयमान' उस कलह को कहते हैं जो दम्पति में खेल-विनोद में साधारण वाद-विवाद हो उठता है ।

(वचन)—सखी का वचन सखी-प्रति ।

भावार्थ—हे सखी, दोनों अपने-अपने रूप गुण कौशल की अधिकता से परिपूर्ण हैं, अर्थात् प्रत्येक अपने को दूसरे से अधिक समझता है अतः परस्पर बराबर ही गर्रा करते हैं (अपने-अपने दाँव के लिये झगड़ते हैं) । परस्पर न कोई किसी को मनाता है और न (मेरे कहने सुनने से) कोई मानता है, उनकी मति में मान (प्रणयमान) ही ठहराता है । (समझते हैं कि इस तरह का मान करना ही अच्छा है) ।

अलंकार—अन्योन्य से परिपुष्ट काव्यलिंग ।

दो०—लग्यो सुमन ह्वैहै सुफल, आतप रोस निवारि ।
बौरी बारी आपनी, सींचि सुहृदता वारि ॥४३२॥

शब्दार्थ—आतप = धूप । बारी = ओसरी (पारी) ।

(वचन)—सखी-वचन मानवती नायिका-प्रति नायक के सामने।

भावार्थ—जो तेरा सुन्दर मन इनसे लगा है तो सफलता प्राप्त ही होगी। तू क्रोध-रूपी धूप को निवारण कर (मान छोड़कर)। हे मानवती, अपनी पारी में इस नायक-रूपी वृक्ष (रसाल वृक्ष) को सुहृदयता (प्रेम) के पानी से सींच।

अलंकार—श्लेष।

दो०—गह्यो अबोलो बोलि पिय, आपु पठै बसीठि।
दीठि चुराई, दुहुन की, लखि सकुचौंहीं दीठि ॥४५[illegible]॥

शब्दार्थ—अबोलो गह्यो = मौन धारण किया। बसीठि = दूती। दीठि चुराई = आँख न मिलाई, सामने नहीं देखा। दुहुन की = नायक और दूती की।

[विशेष]—नायिका ने दूती भेजकर नायक को बुलाया था। नायक ने पहिले दूती ही के साथ संभोग किया, तब साथ ही साथ दोनों नायिका के पास आये। नायिका ने यह बात दोनों की अनिवार्य दृष्टि से अनुमान कर ली। तब क्रुद्ध होकर नायक से मुँह फेर मान कर बैठी, कुछ बोली नहीं। यह दशा कोई सखी अन्य सखी से कहती है। (अन्यसंभोग-दुःखिता)।

भावार्थ—पहले आपही ने दूती भेजकर नायक को बुलवाया और आने पर मौन धारण किया। दोनों की (नायक और दूती की) संकुचित दृष्टि देखकर नायक से आँख तक न मिलाई।

अलंकार—अनुमान प्रमाण।

दो०—मान करत बरजति न हौं, उलटि दिवावति सौंह।
करी रिसौंहीं जाँहिगी, सहज हँसौंहीं भौंह ॥[illegible]॥

(वचन)—सखी [illegible] मानवती नायिका [illegible] मोचनी युक्ति)।

भावार्थ—हे [illegible] मैं कब [illegible]

मैं शपथ दिलाती हूँ कि तू खूब मान कर ; परन्तु यह तो बतला दे कि तुमसे ये सहज हँसोड़ भौंहें क्रोधयुक्त की भी जायँगी ?

[विशेष]—उलटि दिवावति सौंहँ="सौंहँ' शब्द को उलटने से जो होता हो वही मैं नायक को तुमसे दिलवाना चाहती हूँ। 'सौंहँ' को उलटने से 'हँसौं' होता है। तात्पर्य कि नायक से हँसो बोलो, मान छोड़ो।

अलंकार—प्रथम अर्थ में निषेधाक्षेप। 'विशेष' में दृष्टिकूट।

दो०—खरी पातरी कान की, कौन बहाऊ बानि।
आक-कली न रली करै, अली अली जिय जानि ॥४३५॥

शब्दार्थ—कान की पातरी=(कान की पतली) बात सुनकर झट उस पर विश्वास करनेवाली। बहाऊ बानि=हानिकारक स्वभाव। आक=मदार। रली=रँगरलियाँ, विहार। अली=(१) भौंरा (२) सखी।

(वचन)—सखी-वचन मानवती नायिका-प्रति (मानमोचनार्थ)।

भावार्थ—हे लाडिली, तू कान की बड़ी पतली है (चुगुलखोरों के कहने पर झट विश्वास कर लेती है), यह कौन-सी बुरी आदत सीखी है ! हे सखी, तू यह समझ ले कि भौंरा मदार की कली के साथ कभी विहार नहीं करता।

अलंकार—छेकानुप्रास, यमक।

दो०—रुख रूखे मिस रोष मुख, कहति रुखौंहैं बैन।
रूखे कैसे होत ये, नेह चीकने नैन ॥४३६॥

(वचन)—सखी मान छोड़ाती है।

भावार्थ—रूखे तर्ज से बनावटी क्रोध मुख पर धारण किये रूखे-से वचन बोलती है, भला ये स्नेह से चिकने-नेत्र कैसे रूखे होंगे (अर्थात् न होंगे)।

अलंकार—काकु और विरोधाभास।

दो०—सौंहैं हू चाह्यो न तैं, केती द्याई सौंहँ।
ये हो क्यों बैठी किये, ऐंठी ग्वैंठी भौंहँ ॥४३७॥

शब्दार्थ—सौंहैं=सम्मुख। चाह्यो=देखा। सौंहँ=शपथ। ऐंठी ग्वैंठी=टेढ़ी-मेढ़ी, वंक।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—विशेषोक्ति।

दो०—ए री या तेरी दई, क्यौं हूँ प्रकृति न जाय।
नेह भरे ही राखियै, तू रूखियैं लखाय ॥४३८॥

शब्दार्थ—दई=आश्चर्य है। प्रकृति=स्वभाव। ही=हिय (हृदय)।

(वचन)—सखी-वचन मानवती-प्रति।

भावार्थ—हे सखी, आश्चर्य है! तेरी यह प्रकृति किसी तरह जाती नहीं। नेह-भरे हृदय में तुझे रखती हूँ, तो भी तू रूखी ही देख पड़ती है।

[नोट]—तेल में डूबी वस्तु रूखी रहे, महान आश्चर्य है।

अलंकार—अतद्गुण, विशेषोक्ति और विरोधाभास।

दो०—विधि विधि कैन करै टरै, नहीं परेहू पानु।
चितै कितै ते लै धर्‌यो, इतो इतै तनु मानु ॥४३९॥

शब्दार्थ—कैनि=(फा० कोरनिश) कुन्नस, प्रार्थना, विनती। पानु=पाँव (पैर)। इतो=इतना। चितै=विचार कर देख।

(वचन)—सखी-वचन नायिका-प्रति।

भावार्थ—हे लाड़िली, देख, नायक विविध प्रकार से कुन्नसें करता है और तेरा मान पैरों पड़ने पर भी नहीं छूटता। विचार कर देख, कहाँ से लाकर रक्खा है। इतने छोटे से तन में इतना-सा बड़ा मान।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में विशेषोक्ति। उत्तरार्द्ध में अधिक।

दो०—तो रस राच्यो आन वस, कहैं कुटिल मति कूर।
जीभ निंवौरी क्यों लगै, वौरी चाखि अँगूर ॥४४०॥

शब्दार्थ—निबौरी=नीम का फल। लगै=अनुरक्त हो।

(वचन)—नायक के पक्ष में मानवती से सखी का वचन।

भावार्थ—हे लाड़िली, नायक तो तेरे ही प्रेम में रँगा हुआ है, व्यर्थ कुटिल-मति और क्रूर लोग कहते हैं कि वह अन्य नायिका के वश में हुआ है। अरी बावली, तू नहीं जानती कि अंगूर चखकर फिर जीभ निबौरी से कैसे अनुरक्त होगी (अर्थात् अंगूर खानेवाली जीभ को नीम के फल नहीं रुचते)।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास (सामान्य की पुष्टि विशेष से)।

दो०—हा हा बदन उघारि दृग, सुफल करैं सब कोय।
रोज सरोजनि के परै, हँसी ससी की होय ॥४४१॥

शब्दार्थ—रोज पड़े=[1] रोना पड़े।

(वचन)—उत्तमा दूती का वचन मानवती नायिका-प्रति।

भावार्थ—हे लाड़िली, मैं हा हा करती हूँ (बहुत नम्र भाव से विनती करती हूँ), तू अपना मुँह खोल दे, हम सब लोग अपने नेत्र सुफल करें और कमलों के घर रोना-पीटना पड़े और चंद्रमा की हँसी होने लगे।

अलंकार—प्रतीप।

दो०—गहिली गरब न कीजिये, समय सोहागहिं पाय।
जिय की जीवन जेठ जो, माहँ न छाहँ सोहाय ॥४४२॥

शब्दार्थ—गहिली = (सं० ग्रहिल) बौड़ही, बावली। समय = युवावस्था। सोहाग=सौभाग्य (प्रियतम का प्रेम)। छाहँ=छाया।

[विशेष]—स्त्री पति की छाया के समान है। छाया जेठ में (चढ़ी जवानी में) जैसी अच्छी और सुखद लगती है, वैसी माघ (बुढ़ापे) में नहीं।

नोट—[1] जायसी ने भी 'रोज' शब्द इसी अर्थ में लिखा है। देखो हमारी संपादित पद्मावत पृष्ठ १३। "परजापती हँसी और रोजू। लाये दूत होय नित खोजू"। और—"जहाँ गरब तहँ पीरा, जहाँ हँसी तहाँ रोज" ॥ (दो० २६४)

(वचन)—मानवती नायिका-प्रति सखी का वचन (मान-मोचनार्थ)।

भावार्थ—हे बावली, ऐसा सुन्दर समय (युवावस्था) और पति का प्रेम पाकर गर्व न करना चाहिये। जो छाया (श्री) जेठ में (युवावस्था में) जी को सुखद जान पड़ती है, वही छाया माघ में (युवावस्था ढलने पर) तनक भी नहीं सोहाती।

अलंकार—दृष्टान्त।

दो०—कहा लेहुगे खेल मैं, तजौ अटपटी बात।
नेकु हँसौंहीं हैं भई, भौंहैं सौंहैं खात ॥४४३॥

शब्दार्थ—अटपटी = अनुचित, काम बिगाड़नेवाली।

[विशेष]—खेल में नायिका ने प्रणय-मान किया है। नायक कुछ परवाह न करके दूसरी नायिकाओं के साथ खेल मचाये ही हुए है। इस पर सखी नायक-प्रति कहती है।

भावार्थ—हे लाल, ऐसे खेल से क्या पाओगे, यह अनुचित बात छोड़ो। मैंने बहुत-सी कसमें खाई हैं, तब लाड़िली की भौंहें तनक हँसौंहीं हुई हैं (यदि तुम खेल न बंद करोगे तो वह फिर रूठ जायगी)।

अलंकार—हेतु।

दो०—सकुचि न रहिये स्याम सुनि, ये सतरौंहैं बैन।
देत रचौंहैं चित कहे, नेह नचौंहैं नैन ॥४४४॥

शब्दार्थ—सतरौंहैं = क्रोधयुक्त। रचौंहैं = प्रेमयुक्त। नचौंहैं=चंचल

(वचन)—मानिनी नायिका को मनाते हुए नायक-प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—हे कृष्ण, नायिका के ये क्रोधयुक्त वचन सुनकर शरमा कर मत रह जाओ (अर्थात् कुछ और खुशामद करो)। नेह से चंचल हुए नेत्र स्पष्ट कह देते हैं कि अब उसके चित्त में अनुराग आ रहा है।

अलंकार—अनुमान।

दो०—चलो, चले छुटि जायगो, हठ रावरे सकोच।
खरे चढ़ाये ही तबै, आये लोचन लोच ॥४४५॥

शब्दार्थ—हठ = मान। संकोच = मुलाहिज़ा। ही = थी। लोच = नरमी।

[विशेष]—सखी नायक को मानवती का मान छुड़ाने को ले जाना चाहती है।

भावार्थ—हे लाल, चलो, तुम्हारे चलने से, तुम्हारे मुलाहिज़े से, उसकी हठ (मान) छूट जायेगी। जो नेत्र तब खूब चढ़ाये हुए थे, वे अब कुछ नरमी पर आ गये हैं।

अलंकार—काव्यलिंग।

दो०—अनरस हू रस पाइये, रसिक रसीली पास।
जैसे साँठे की कठिन, गाँठौ भरी मिठास ॥४४६॥

शब्दार्थ— अनरस = मान, क्रोध। रस = मज़ा। रसिक = हे रसज्ञ। साँठा = ऊख।

[विशेष]—सखी वचन नायक-प्रति। मान मनाने हेतु नायिका के पास ले जाना चाहती है।

भावार्थ—हे रसज्ञ, उस रसीली के पास मानावस्था में भी मज़ा पाओगे (चलो मान मनाओ), जैसे ऊख की कठिन गाँठ भी मिठास से भरी हुई होती है।

अलंकार—उदाहरण।

दो०—क्योंहू सह मात न लगै, थाके भेद उपाय।
हठ दृढ़ गढ़ गढ़वै सु चलि, लीजै सुरँग लगाय ॥४४७॥

शब्दार्थ - सह = चाल (शतरंज में मुहरे की वह चाल, जिससे शाह को मात होती है, यहाँ 'युक्ति')। मात न लगे = उस पर कोई चार नहीं लगती, किसी दलील से मात नहीं मानती। गढ़वै = गढ़पति, किलेदार। सुरंग = (१) प्रेम (२) वह सूराख जिसमें बारूद भर कर आग लगाने से उसके इर्द-गिर्द के बड़े मज़बूत पदार्थ भी उखड़ जाते हैं।

[विशेष]—सखी नायक को नायिका के पास मान मनाने के लिये ले जाना चाहती है।

भावार्थ—हे लाल, मैंने बहुत कुछ समझाया-बुझाया, पर किसी चाल (युक्ति) से उसपर वार ही नहीं चलती, सब प्रकार फोड़-फाड़ की युक्तियाँ व्यर्थ हो चुकीं। वह मान-रूपी मजबूत क़िले की क़िलेदार बनी बैठी है, सो आपही चलकर उसके क़िले को सुरंग लगाकर (अपना अत्यन्त प्रेम जातकर) जीतिये।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट रूपक।

दो०—वाही निसि तें ना मिटो, 'मान' कलह को मूल।
भले पधारे पाहुने, ह्वै गुड़हर को फूल ॥४४८॥

शब्दार्थ—पाहुने=मेहमान। गुड़हर=ओड्रपुष्प (अड़हुल का फूल जहाँ रहता है, वहाँ झगड़ा कराता है, ऐसा लोकविश्वास है।)

[विशेष]—दम्पति ने प्रणयमान किया है। प्रणयमान में परस्पर कोई किसी को नहीं मनाता। सखियाँ समझा-बुझाकर मेल करा देती हैं। यहाँ सखियों ने बहुत उद्योग किया, पर दम्पति में मेल न हुआ। तब कोई प्रवीणा सखी 'मान' प्रति कहती है।

भावार्थ—हे कलह के मूल कारण 'मान', तू उसी रात्रि से (जिस रात्रि को दम्पति में प्रणयमान हुआ था) अब तक नहीं मिटा। हे पाहुने, तू तो गुड़हर का फूल होकर भला आया !

[विशेष]—'मान' को पाहुन इसलिये कहा कि मान भी पाहुन की तरह कभी-कभी आता है और पाहुन की तरह निश्चित् समय तक ही रहता है। अधिक समय तक रहने से पाहुन का भी निरादर होता है, और मान का भी मज़ा नहीं रहता। सखी प्रवीणा है, अतः दम्पति को सुनाकर मान-प्रति कहती है, जिससे दोनों समझ जायें कि अधिक दिनों तक मान रखना अच्छा नहीं।

अलंकार—रूपक से पुष्ट पर्यायोक्ति।

दो०—आये आपु भली करी, मेटन मान मरोर।
दूरि करौ यह देखिहै, छला छिगुनिया-छोर ॥४४९॥

शब्दार्थ—भलीकरी=(बुंदेलखंडी) अच्छा किया। मरोर=गर्व।

[विशेष]—नायक को अन्य नायिका-प्रति प्रेम रखने का अपराधी अनुमान करके नायिका ने मान किया है। मान का हाल सुनकर नायक अपनी प्रिया को मनाने आया है, परन्तु भूल से उस अन्य नायिका का छल्ला, जो तंग होने के कारण केवल कनिष्टिका के छोर पर अट सका है, पहने हुए ही चला आया है। सखी ने देखा है, और वह छला उतार डालने को नायक से कहती है।

भावार्थ—आप मान मनाने आये सो अच्छा किया, परन्तु इस छिगुनिया-छोर के छल्ले को (जो प्रत्यक्ष तुम्हारा नहीं है, वरन् किसी अन्य नायिका का है) उतार डालो, नहीं तो वह देख लेगी तो दोषी प्रमाणित हो जाओगे।

अलंकार—वृत्यनुप्रास।

दो०—हम हारीं कै कै हहा, पायन पार्‌यौ प्यौऽरु।
लेहु कहा अजहूँ किये, तेह तरेरे त्यौरु ॥४५०॥

शब्दार्थ—तेह तरेरे त्यौरु=तेहा से त्यौरी चढ़ाये रहने से। प्यौऽरु =(प्यौ+अरु) और पिय को भी।

(वचन)—सखी-वचन मानवती नायिका-प्रति।

भावार्थ—हम लोग हा हा करके हार गईं और प्रियतम को भी तेरे पैरों पर ला डाला (तो भी तेरा मान न छूटा), तो अब तक क्रोध से त्यौरी चढ़ाये रखने से अब क्या पाओगी? (अर्थात् मान मनाने की यहीं तक हद है)।

अलंकार—विशेषोक्ति।

(क्रिया-विदग्धा)

दो०—लखि गुरुजन बिच कमल सों, सीस छुवायो स्याम ।
हरि सनमुख करि आरसी, हिये लगाई बाम ॥४५१॥

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति ।

भावार्थ—राधिका को गुरुजनों के बीच देख कृष्ण ने कमल पुष्प से अपना सिर छुवाया (यह जताया कि हम तुम्हारे कमलवत् चरणों पर मस्तक रखते हैं)। तब राधिका ने भी अपनी आरसी कृष्ण के सम्मुख करके हृदय से लगाली (यह उत्तर दिया कि मैं भी दर्पणवत् स्वच्छ चित्त में आपको बसाये हुए हूँ)।

अलंकार—सूक्ष्म ।

(मान और परिहास का सम्मिलन-वर्णन)

दो०—मन न मनावन को करै, देत रुठाइ रुठाय ।
कौतुक लागे प्रिय प्रिया, खिझहू रिझवति जाय ॥४५२॥

(वचन)—सखी-प्रति सखी का कथन ।

भावार्थ—(दम्पति ने प्रणयमान किया है), परस्पर मान मनाने की इच्छा नहीं है, वरन् उलटे एक दूसरे को अधिकाधिक रुठा देता है। प्रिया और प्रीतम दोनों खिलवाड़ की गरज से ऐसा करते हैं कि प्रीतम तो खिझाते हैं और प्रियाजी खिझती हुई भी ऐसी चेष्टा करती हैं कि उससे वे अधिक रीझते हैं (अर्थात् नायिकाकृत खीझने की चेष्टा नायक को अच्छी लगती है, इससे वह मान मनाने के बदले उलटे उसे खिझाता है)।

अलंकार—पाँचवीं विभावना (खिझहू रिझवति जाय)।

दो०—सकत न तुव ताते बचन, मो रस को रस खोय ।
खिन खिन औटे खीर लौं, खरौ सवादिल होय ॥४५३॥

शब्दार्थ—खीर = (क्षीर) दूध। सवादिल = स्वादिष्ट, मजेदार।

(वचन)—नायक-वचन नायिका-प्रति।

भावार्थ—हे प्यारी! तेरे क्रुद्ध वचनों से मेरा प्रेम नहीं बिगड़ सकता। अधिकाधिक औटाये जाने पर जैसे दूध स्वादिष्ट होता जाता है वैसे ही तेरे क्रुद्ध वचनों से मेरा प्रेम प्रतिक्षण बढ़ता जाता है।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—खरे अदब इठलाहटी, उर उपजावति त्रास।
दुसह संक विष की करै, जैसे सोंठि - मिठास ॥४५४॥

शब्दार्थ—अदब = आदर। इठलाहट = परिहास।

[विशेष]—जैसे हल्दी के खेतों में कुछ गाँठें ऐसी पैदा हो जाती हैं कि जहरीली होती हैं। उनके खाने से कै और दस्त आने लगते हैं। इसी प्रकार सोंठ के खेत में भी किसी विशेष कारण से कुछ गाँठें ऐसी पैदा हो जाती हैं जो स्वाद में तो मीठी होती हैं, पर जहरीली होती हैं। इसके खाने से भी क़ै होती है और सिर में दर्द पैदा हो जाता है, जो बड़ी मुशकिल से अच्छा होता है।

(वचन)—नायक-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—आज तो प्यारी का बड़े आदर के साथ इठलाना मेरे हृदय में भय उपजाता है, जैसे सोंठ की मिठास विष की कठिन शंका पैदा करती है। तात्पर्य यह कि इसका खाली इठलाना तो अच्छा है, पर साथ ही अदब (आदर) करना शंका दिला रहा है कि मैं सापराध हूँ और प्यारी मुझ पर क्रुद्ध है।

अलंकार—उदाहरण।

(प्रेम गर्विता)

दो०—रात दिवस हौसै रहति, मान न ठिकु ठहराय।
जेतो औगुन ढूँढ़िये, गुनै हाथ परिजाय ॥४५५॥

शब्दार्थ—हौंस=अरमान, प्रबल इच्छा। न ठिकु ठहराय=ठीक नहीं पड़ता।

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—हे सखी! मुझे रात दिन मान करने की अभिलाषा तो रहती है, परन्तु मान करने का ठीक नहीं पड़ता। जितना ही मैं नायक में अवगुण ढूँढ़ती हूँ, उतना उनके गुण ही हाथ लगते हैं (नायक मुझपर अत्यन्त प्रेम रखता है और किसी दूसरी नायिका को कदापि नहीं चाहता, अतः मान कैसे करूँ।

अलंकार—विषादन (जँह चित चाही वस्तुते, पावै वस्तु विरुद्ध)।

(पति-अनुरागिनी)

दो०—सतर भौंह रूखे वचन, करन कठिन मन नीठि।
कहा करौं ह्वै जाति हरि, हेरि हँसौंहीं डीठि ॥४५६॥

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—हे सखी, मैं भौंहों को टेढ़ी, वचनों को रूखे और मन को किसी प्रकार कठोर तो कर लेती हूँ, परन्तु क्या करूँ, कृष्ण को देखकर मेरी दृष्टि हँसी की सी हो जाती है (मान करते नहीं बनता)।

अलंकार—तीसरी विभावना।

दो०—मो ही को छुटि मान गो, देखत ही ब्रजराज।
रही घरिक लौं मान सी, मान करे की लाज ॥४५७॥

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ- हे सखी, (तेरे कहने से मैंने मान तो किया, पर) कृष्ण को देखते ही मेरे मन का मान छूट गया और। (जो तूने सिखलाया था कि एक घड़ी तक मान किये रहना सो) मान की तरह मान करने की लज्जा (कि व्यर्थ ही मान कर बैठी थी) एक घड़ी तक रही।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में चपलातिशयोक्ति। उत्तरार्द्ध में उपमा।

दो०—दहैं निगोड़े नैन ये, गहैं न चेत अचेत।
हौं कसुकै रिसहे करौं, ये निसिखे हँसि देत ॥४५८॥

शब्दार्थ—निगोड़े=जिसके पैर स्थिर न रहें अर्थात् चंचल। कसुकै=कष्ट करके। निसिके=शिक्षा न माननेवाले।

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—जरें ये मेरे चंचल नेत्र! ये बेखबर कुछ भी होश नहीं रखते। मैं तो डाँट-डाँट कर इन्हें क्रुद्ध बनाती हूँ और ये शिक्षा न मानकर नायक को देखते ही हँस देते हैं।

अलंकार—पंचम विभावना।

दो०—तुहूँ कहै हौं आपु हू, समुझति सबै सयान।
लखि मोहन जो मनु रहै, तौ राखौं मन मान ॥४५९॥

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—हे सखी, तू भी कहती है और मैं स्वयं भी सब सयानपने की बातें समझती हूँ, परन्तु करूँ क्या, मनमोहन नायक को देखकर जो मेरा मन मेरे पास रहे तब तो मैं मनमें मान रक्खूँ (अर्थात् मन ही मेरे पास नहीं रहता तो मान कहाँ रहे, क्योंकि मान का आधार तो मन ही है न)।

अलंकार—विशेषोक्ति और संभावना।

दो०—मोंहिं लजावत निलज ये, हुलसि मिलत सब गात।
भानु-उदय की ओस-लौं, मानु न जान्यौ जात ॥४६०॥

शब्दार्थ—निलज=वेशर्म। हुलसि=हर्षित होकर। सब गात=सब अंग (नेत्र, कपोल, भुज आदि)।

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—हे सखी, (तेरे कहने से मैंने मान तो किया, परन्तु) मेरे ये निर्लज्ज अंग (नेत्र, कपोल, कुच, भुज इत्यादि) मुझे लज्जित

कराते हैं, क्योंकि नायक को देखते ही ये हर्षित होकर उससे मिल जाते हैं, और फिर सूर्योदय के बाद की ओस की तरह न मालूम 'मान' किस तरह और कहाँ चला जाता है।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—खिंचे मान अपराध तें, चलिगे बढ़े अचैन।
जुरत दीठि तजि रिस खिसी, हँसे दुहुन के नैन ॥४६१॥

शब्दार्थ—खिंचे = रुके। अचैन = बेचैनी। खिसी = लज्जा।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति (दम्पति की दशा-वर्णन)।

भावार्थ—दोनों मान और अपराध से रुके (अर्थात् नायिका मानसे रुकी और नायक अपराधी होने से रुका), परन्तु जब बेचैनी बढ़ी तब दोनों परस्पर मिलने को चले, और दृष्टि जुड़ते ही रिस और लज्जा छोड़कर (अर्थात् नायिका के नेत्रों ने रिस छोड़कर और नायक के नेत्रों ने लज्जा छोड़कर) दोनों के नेत्र हँस पड़े।

अलंकार—क्रम और चपलातिशयोक्ति।

(उत्कंठिता)

दो०—नभ-लाली चाली निसा, चटकाली धुनि कीन।
रति पाली आली अनत, आये बनमाली न ॥४६२॥

शब्दार्थ—चटकाली =(चटक + आली) गौर वा गौरैया चिड़ियों का समूह (पक्षि-समूह)। अनत = अन्यत्र।

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति।

(भावार्थ)—आकाश में अरुणोदय की लाली आ गई, रात्रि व्यतीत हुई, पक्षि-समूह भी शब्द करने लगा और बनमाली (श्रीकृष्ण) न आये। जान पड़ता है उन्होंने कहीं अन्यत्र किसी अन्य स्त्री से प्रेम का पालन किया।

अलंकार—अनुप्रास और अनुमान।

दो०—दच्छिन पिय ह्वै बाम-बस, बिसराई तिय आन।
एकै बासर के बिरह, लागे बरष बिहान ॥४६३॥

शब्दार्थ—दच्छिन पिय=वह नायक जो बहुत से स्त्रियों से समान प्रेम रक्खे। आन=अन्य। बिहान लागे=बीतने लगे।

(वचन)—सखी-वचन नायक-प्रति।

भावार्थ—हे नायक, तुमने दक्षिण होकर भी एक बामा अर्थात् कुटिला स्त्री के वश होकर अन्य (सरल स्वभाव) स्त्रियों को भुला दिया (ऐसा तुम्हें न करना चाहिये)। देखो, एक ही दिन का बिछोह उन्हें एक वर्ष के समान लगता है।

[विशेष]—दक्षिण का अर्थ चतुर तथा तिय एवं आन में द्वन्द समास मानें तो यों अर्थ होगा :—

हे चतुर नायक, एक अन्य कुटिला स्त्री के वश होकर तुमने अपनी निज स्त्री और अपनी आनबान (चतुराई का दावा) अथवा विवाह में की हुई प्रतिज्ञा भुलादी। देखो उस (तुम्हारी विवाहिता) स्त्री को एक ही दिन तुम्हारे विरह में वर्ष-समान बीतने लगा है।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में विरोधाभास, उत्तरार्द्ध में अत्युक्ति।

दो०—आपु दयो मन फेरि लै, पलटै दीन्ही पीठि।
कौन चाल यह रावरी, लाल लुकावत दीठि ॥४६४॥

शब्दार्थ—पलटै=बदले में। लुकावत=चुराते हो, छिपाते हो।

(वचन)—परकीया का उलहना नायक-प्रति।

भावार्थ—आपने जो अपना मन मुझे दिया था, उसे वापस लेकर, अब उसके बदले में पीठ दी। हे लाल यह आपकी कौन सी चाल है, जो अब मुझसे आँखें चुराते हो, अर्थात् नजर तक नहीं मिलाते।

अलंकार—परिवृत।

दो०—मोहि दयो मेरो भयो, रहत जु मिलि जिय साथ।
सो मन बाँधि न सौंपिये, पिय सौतिन के हाथ ॥४६५॥

(वचन)—धीरा नायिका का उलहना नायक-प्रति।

भावार्थ—हे प्रियतम जो मन आपने मुझे दिया, वह मेरा हो चुका और वह मेरे प्राण से मिला हुआ रहता है, अब उस मन को बाँधकर (जबरदस्ती) सौतिन के हाथ मत सौंपिये (अर्थात् आप बड़ी जबरदस्ती करते हैं। एक तो प्रदत्त वस्तु पर आप का कोई अधिकार नहीं, दूसरे उसीसे मेरा जी मिल गया है, अतः उसीके साथ सटा हुआ मेरा प्राण भी जायेगा, मेरी वस्तु पर आपका क्या अधिकार है ?) (पाठक, देखिये तो कैसी कानूनदाँ नायिका है)।

अलंकार—काव्यलिंग।

(धृष्ट-नायक)

दो०—मारयौ मनुहारनि भरी, गारयो खरी मिठाहिं।
वाको अति अनखाहटौ, मुसुकयाहट बिन नाहिं ॥४६६॥

शब्दार्थ—मनुहार = आदर, प्यार। अनखाहट = क्रोध।

(वचन)—नायक-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—उसकी मार भी प्यार से भरी हुई और गाली भी बहुत मिठासयुक्त होती है। उसका क्रोध भी बिना हँसी के नहीं होता अर्थात् उसकी प्रत्येक क्रिया मुझे सुखदायिनी जान पड़ती है।

[विशेष]—स्मृति दशा है।

अलंकार—विरोधाभास (१–क्रिया का क्रिया से, २–द्रव्य का गुण से, ३–द्रव्य का द्रव्य से)।

दो०—तुम सौतिन देखत दई, अपने हिय तें लाल।
फिरत डहडही सबनि में, वही मरगजी माल ॥४६७॥

शब्दार्थ—डहडही = प्रसन्न। मरगजी = कुम्हलाई हुई।

(वचन)—प्रेम-गर्विता-नायिका की सखी का वचन नायक-प्रति।

भावार्थ—हे लाल, तुमने सब सौतों के सामने उस रोज अपने हृदय से उतार कर जो माला उसे दी थी, (यद्यपि वह माला अब कुम्हला गई है, तो भी वह उसे पहने हुए), उसी कुम्हलानी माला के घमंड से सबके मध्य अति प्रसन्न हुई फिरती है।

अलंकार—पंचम विभावना।

दो०--बालम बारी सौति कै, सुनि परनारि-बिहार।
भो रस अनरस रिस रली, रीझि खीझ इकबार ॥४६८॥

शब्दार्थ—बालम = (वल्लभ) पति। रस = सुख। अनरस = दुःख। रिस = क्रोध। रली = क्रीड़ा। रीझ = प्रसन्नता। खीझ = अप्रसन्नता। इकबार = एकही संग, एक ही समय।

(वचन)—सखी का वचन सखी-प्रति (नायिका की दशा का वर्णन)।

भावार्थ—जब उस नायिका ने सुना कि सौति की पारी में (जिस दिन नायक को सौति के यहाँ रहना चाहिये था) बालम ने पर-स्त्री के संग विहार किया, तब उसे सुख भी हुआ और दुःख भी, क्रोध भी हुआ और क्रीड़ा भी (मजाक भी सूझा) तथा एक ही साथ रीझी भी और खीझी भी।

[विशेष]—सुख ईर्ष्याजन्य, कि अच्छा हुआ सौति को दुःख हुआ। दुःख इस बात का कि एक सौत तो थी ही अब एक और हुई। रिस इस बात की कि नायक मेरे ही यहाँ क्यों न चला आया। रली (क्रीड़ा या मजाक) इस बात पर कि सौत ऐसी गुणवती नहीं है कि प्रीतम को अपने वश में करके अपने पास रख सके। रीझ इस बात की कि नायक मेरे ऊपर अधिक अनुरक्त है, क्योंकि मेरी पारी में कहीं नहीं जाता। खीझ इस बात की कि बुरी आदत पड़ी, संभव है कहीं मेरी पारी के दिन भी नायक परस्त्री के पास जाय। इसमें किलकिंचित हाव है।

अलंकार—समुच्चय से पुष्ट हेतु।

दो०—सुघर सौति बस पिय सुनत, दुलहिनि दुगुन हुलास।
लखी सखी तन दीठि करि, सगरब सलज सहास ॥४६९॥

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—"चतुर सौत के वश नायक है" यह बात सुनकर नवल वधूको दुगुना उत्साह हुआ और गर्व, लज्जा और हँसी-सहित सखी की ओर देखा (तात्पर्य यह कि मुझमें चतुराई के अलावा रूप और गुण भी सवत से अधिक है। मैं शीघ्र ही नायक को अपनी ओर आकृष्ट कर लूँगी, तुम लोग कुछ चिन्ता मत करो)।

अलंकार—पंचम विभावना (नायक को सपत्नी के वश सुनकर होना खेद चाहिये था, सो हुलास हुआ)।

दो०—हठि हित करि प्रीतम हियो, कियो जु सौति सिंगारु।
अपने कर मोतिन गुह्यो, भयो हरा हर-हारु ॥४७०॥

शब्दार्थ—हरा=हार। हर-हारु=(महादेव का हार) सर्प।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—अपने हाँथ से मोतियों का हार गूँथकर हठ और प्रेम-पूर्वक एक नायिका ने (ज्येष्ठा ने) नायक के हृदय को शृङ्गारित किया (पहनाया), वही हार दूसरी नायिका (कनिष्ठा) की दृष्टि में सर्पवत् हो गया (अर्थात् ईर्ष्या के कारण दुखदाई देख पड़ा)।

अलंकार—व्याघात (नायक के हृदय पर पड़ा हुआ मोतियों का हार सुखद होना चाहिये था, परन्तु सवति का गुहा और पहनाया हुआ होने के कारण दुखद हो गया)। चतुर्थ चरण में वाचक-धर्म लुप्तोपमा भी है।

दो०—बिथुर्‍यो जावक सौति-पग, निरखि हँसि गहि गाँस।
सलज हँसौहीं लखि लियो, आधी हँसी उसाँस ॥४७१॥

शब्दार्थ—बिथुर्‍यो=बिखरा हुआ। गाँस=ईर्ष्या। उसाँस=ऊँची साँस।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति ।

भावार्थ—सवति (ज्येष्ठा) के पैर में बिखरा हुआ महावर देखकर ईर्ष्यावश (कनिष्ठा) हँसी (यह समझकर कि ऐसी फूहड़ है, कि इसे महावर देना तक नहीं आता), परन्तु तुरन्त नायक को लज्जित और उस (सवति ज्येष्ठा) को भी हँसती हुई देखकर (और अनुमान करके कि यह महावर नायक का लगाया हुआ है) हँसी पूरी होने से पहले ही (हँसी के बीच ही में) ऊँसी साँस ली ।

अलंकार—व्याघात (विथुरा जावक जो पहले हँसी का कारण हुआ था, वही समझने पर खेद का कारण हो गया) ।

दो०—बाढ़त तो उर उरज भरु, भरि तरुनई बिकास ।
बोझन सौतिन के हिये, आवत रुँधी उसास ॥४७२॥

शब्दार्थ—उरज = कुच । भरु = भराव, भार । रुँधी = रुकी हुई ।

(वचन)—ज्येष्ठा-नायिका प्रति सखी-वचन ।

भावार्थ—तेरे वक्षस्थल पर, कुचों का भराव तथा भरी जवानी का विकास बढ़ने से, बोझ के कारण सवति के हृदय से रुक रुक कर ऊँची साँस निकलती है (भाव यह कि ज्यों ज्यों तेरी जवानी विकसती है, सवति दुखित होती है) ।

अलंकार—असंगति (प्रथम) ।

(परोसिन-प्रेम)

दो०—ढीठि परोसिन ईठि ह्वै, कहे जु गहे सयान ।
सबै सँदेसे कहि कह्यौ, मुसुकाहट में मान ॥४७३॥

शब्दार्थ—ईठि = मित्र, सखी । सयान = चतुराई ।

(वचन)—सखी-प्रति सखी-वचन ।

[विशेष]—किसी नायक की परोसिन से प्रीति थी । एक बार

नायक को परोसिन के साथ हँसते हुए नायिका ने देखा था तब मना किया था। आज ऐसा मौका आया कि नायक विदेश जाने के लिये तैयार हुआ तो नायिका व्याकुल हुई। परोसिन ने आकर नायिका से सहानुभूति जताई। तब नायिका ने कहा कि 'बहिन' तू ही मेरी व्याकुलता का हाल सुनाकर नायक को समझा दे कि विदेश न जायँ, पर ऐसी चतुराई से कहना कि मेरा कहना भी प्रकट न हो (क्योंकि नायिका मध्या है)। तब परोसिन ने नायिका का सब संदेशा बड़ी चतुराई से नायक को सुनाया और अन्त में यह कहा कि एक समय वह था कि मुसकुराने पर नायिका ने मान किया था और आज ऐसा मौका आया कि उसीने आपसे एकान्त में बातचीत करने तक की आज्ञा दे दी। अब आप मेरे कहने से रुक जाइये तो नायिका सदैव मेरी कनौड़ी रहेगी। फिर आपका मेरा प्रेम भी निर्विघ्न चलता रहेगा, और अब मुसकुराने की कौन बात, प्रत्यक्ष बातचीत करते भी देख लेगी तो कुछ न कह सकेगी।

भावार्थ—मित्र परोसिन ने ढीठ होकर (निडर होकर) नायिका के वे सब संदेसे, जो उसने बड़ी चतुराई से कहने को कहे थे, नायक से कहे और अंतमें वह समय भी नायक को स्मरण कराया जब नायिका ने केवल मुसकुराते देखकर मान किया था। (तात्पर्य यह कि अब वह डर नहीं रह गया)।

अलंकार—पर्यायोक्ति (नायिका के उपकार के मिस अपना भी कार्यसाधन किया)।

दो०—चलत देत आभार सुनि, वही परोसिहिं नाह।
लसी तमासे की दृगनि, हाँसी आँसुन माँह ॥४७४॥

शब्दार्थ—आभार = घर की सुरक्षा और प्रबंध वा देख-भाल का भार। नाह = पति। तमासे की = अद्भुत। दृगनि = आँखों में।

[विशेष]—कोई नायक विदेश जाता है। उसकी नायिका व्याकुल हो आँसू गिराती है। परन्तु जब देखा कि पति घर का

आभार उसी परोसी को देता है, जिससे उसकी गुप्त प्रीति है, तब उसके आँसू भरे नेत्रों में अद्भुत प्रकार की हँसी आई।

(वचन)—सखी-प्रति सखी वचन।

भावार्थ—जब देखा कि पति चलते समय घर की निगरानी और सँभार का भार उसी परोसी को दे रहा है (जिससे गुप्त प्रीति है) तब नायिका के आँसू भरे नेत्रों में बड़ी अद्भुत प्रकार की हँसी शोभित हुई।

अलंकार—प्रथम प्रहर्षण।

दो०—छला परोसिनि हाथ तें, छलकरि लियो पिछानि।
पियहि दिखायो लखि बिलखि, रिस-सूचक मुसुकानि॥४७५॥

[विशेष]—निशानी की तौर पर नायक ने अपनी गुप्त प्रेयसी परोसिन को छल्ला दिया है। उसे नायिका ने पहचाना।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—नायिका ने अपने नायक का छल्ला पहचान कर परोसिन के हाथ से किसी मिस से ले लिया। उसे खूब गौर से देखकर पुनः नायक को (लज्जित करने के लिये) दिखलाया और साथ ही व्याकुलता से क्रोध-सूचक रुख से मुसकाई भी।

अलंकार—सूक्ष्म।

(प्रवत्स्यतप्रेयसी)

दो०—रहिहैं चंचल प्रान ये, कहि कौन की अगोट।
ललन चलन की चित धरी, कल न पलन की ओट॥४७६॥

शब्दार्थ—अगोट=रक्षा, आड़ (अग्र+ओट)।

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—हे सखी, प्यारे ने तो विदेश जाने की इच्छा की और यहाँ एक पल मात्र भी ओट रहने से कल नहीं पड़ती। अब यह तो बतला कि ये चंचल प्राण किसकी आड़ में बच सकेंगे?

अलंकार—अनुप्रास और काकुवक्रोक्ति।

दो०—पूस मास सुनि सखिन सों, साईं चलत सवार।
गहि कर बीन प्रबीन तिय, राग्यो राग मलार ॥४७७॥

शब्दार्थ—सवार = सवेरे, प्रातःकाल। राग्यो = अलापा, गाया।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—पूस के महीने में सखियों से यह सुनकर कि नायक कल प्रातःकाल विदेश जायगा, उस गानविद्या-प्रवीणा नायिका ने वीणा उठाकर मेघ मलार राग धर अलापा (जिससे पानी बरसा और नायक का गमन रुक गया)।

[विशेष]—इसमें प्रवत्स्यतप्रेयसी क्रिया-विदग्धा नायिका है।

अलंकार—इसमें पर्यायोक्ति (मिस कर कार्य साधन) उपाया-क्षेप (केशव के मत से)।

दो०—ललन-चलन सुनि चुप रही, बोली आपु न ईठि।
राख्यो गहि गाढ़े गरे, मनो गलगली डीठि ॥४७८॥

शब्दार्थ—ईठि = मित्र, सखी। गलगली = आँसू-भरी।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—हे ईठि (हे सखी), नायक का चलना सुनकर वह नायिका चुप हो रही, कुछ बोल न सकी। उसकी वचन-शक्ति ऐसी रुक गई, मानो आँसू-भरी दृष्टि ने उसका गला दबाकर बोली को रोक दिया।

अलंकार—अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—बिलखी डबकौंहैं चखनि, तिय लखि गमन बराय।
पिय गहबर आये गरे, राखी गरे लगाय ॥४७९॥

शब्दार्थ—डबकौंहैं = आँसू से परिपूर्ण। गमन बराय = यात्रा बंद करके। पिय गहबर गरे आये = नायक का भी गला भर आया, कंठ गद्गद् हो गया।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—हे सखी, नायिका को, व्याकुल और अश्रुपूर्ण नेत्रों सहित देखकर, नायक ने अपनी यात्रा रोककर गद्‌गद् कंठ होकर उसे बड़ी देर तक गले से लगा रक्खा।

अलंकार—'गरे' शब्द की आवृत्ति से लाटानुप्रास। नायक का इष्ट था यात्रा करना। सो रुक गया अतः विषादन। नायिका की इष्ट-सिद्धि हुई, अतः प्रहर्षण। अतः संसृष्टि।

दो०—चलत चलत लौं लै चले, सब सुख संग लगाय।
ग्रीषम-बासर सिसिर-निसि, पिय मो पास बसाय ॥४८०॥

शब्दार्थ—चलत चलत लौं = अभी प्रस्थान के समय में ही (मेरी यह दशा है तो न जाने प्रवास-समय में क्या होगी)।

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति।

[विशेष]—धर्मशास्त्र की विधि है कि यात्रा करने के दिन से तीन दिन पहले स्त्री-प्रसंगादि का, त्याग करना चाहिये। इन्हीं तीन दिनों का हाल नायिका सखी से कहती है। इन्हीं तीन दिनों को प्रस्थान समय कहते हैं। प्रवत्स्यत प्रेयसी नायिका के वर्णन में इन्हीं तीन दिनों के दुःख का वर्णन हुआ करता है।

भावार्थ—चलते समय (प्रस्थान ही समय में) ही मेरे सब सुख अपने साथ लेते गये। सिसिर की रात्रियों में ग्रीष्म के दिन मेरे पास बसा दिये (अर्थात् जाड़े की रातें मुझे ग्रीष्म के दिनों के समान तप्त जान पड़ने लगीं।

अलंकार—गम्योत्प्रेक्षा (मानो शब्द छिपा हुआ है)।

दो०—अजौं न आये सहज रङ्ग, बिरह दूबरे गात।
अबहीं कहा चलाइयत, ललन चलन की बात ॥४८१॥

(वचन)—सखी-वचन नायक-प्रति। नायक परदेश से आया है और फिर जाना चाहता है।

भावार्थ—हे ललन, अभी इतनी शीघ्र चलने की बात क्या कहते

हो, अभी तो प्रथम प्रवास के विरह से दुबले हुए अंगों में सहज स्वाभाविक रंग भी नहीं आया।

अलंकार—गूढ़ोत्तर (नायक का प्रश्न कि 'हमें विदेश जाने की आज्ञा दो' छिपा हुआ है)। उपायाक्षेप (केशव के मत से)।

दो०—ललन, चलन सुनि पलन में, अँसुवा झलके आय।
भई लखाइ न सखिन हू, झूठे ही जमुहाय ॥४८२॥

(वचन)—कवि की उक्ति।

भावार्थ—नायक का चलना सुन के नायिका के पलकों में आँसू आ गये, परन्तु यह बात सखियों को भी लक्षित न होने पाई, क्योंकि नायिका झूठे ही अँगड़ाई लेकर जँभाई लेने लगी (अंगड़ाई, जँभाई में बहुधा आँसू आ जाते हैं)।

अलंकार—युक्ति (ठगै क्रिया करि आनको, मरम छिपावन हेत)।

दो०—चाह भरी अति रस भरी, बिरहभरी सब बात।
कोरि संदेसे दुहुन के, चले पौरि लौं जात ॥४८३॥

शब्दार्थ—कोरि=कोटि, असंख्य। दुहुन के=नायक नायिका के। सँदेसे चले=संदेसे भेजे गये।

(वचन)—सखी-प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—दोनों की (अर्थात् नायक तथा नायिका की) सब बातें चाह प्रेम और विरह से परिपूर्ण थीं। पौर तक जाते-जाते, दोनों की ओर से असंख्य सन्देसे आये और गये।

अलंकार—लाटानुप्रास ("भरी" शब्द की आवृत्ति से)।

दो०—मिलि मिलि चलि चलि मिलिचलत, आँगन अथयो भानु।
भयो महूरत भोर के, पौरिहि प्रथम मिलानु ॥४८४॥

शब्दार्थ—अथयो=अस्त हो गया। पौरि=बरोठा, दहलीज। मिलानु=मुकाम।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—मिल मिल चलते, पुनः चलकर मिलते चलते में भीतर से आँगन तक आने ही में सूर्यास्त का समय आ गया। भोर ही का मुहूर्त था, पर इस प्रेमाधिक्य के मिलने भेंटने की कारवाई से दिन भर में इतना ही सफर हुआ कि पहला मुकाम बरोठे ही में हुआ।

अलंकार—प्रेमात्युक्ति।

(विरह-वर्णन)

दो०—दुसह विरह दारुन दसा, रह्यो न और उपाय।
जात जात जिय राखिये, पिय की बात सुनाय ॥४८५॥

शब्दार्थ—दारुन = अति भयानक। जिय = जीव, प्राण। पिय की बात = नायक के आगमन की चर्चा।

(वचन)—सखी का वचन सखी-प्रति। विरह में नायिका की व्याधिदशा का वर्णन।

भावार्थ—असह्य विरह में नायिका की भयंकर दशा हो रही है, अब और कोई उपाय नहीं रह गया। सिर्फ प्रियतमागमन की चर्चा करके उसके प्राणों की रक्षा की जाती है।

अलंकार—पर्यायोक्ति (मिस करि कार्य-साधन)।

दो०—प्रजरयो आगि वियोग की, बह्यो बिलोचन नीर।
आठौं जाम हियो रहै, उड्यो उसास समीर ॥४८६॥

शब्दार्थ—प्रजरयो=खूब तपा हुआ। बिलोचन = दोनों नेत्र। उसास = ऊर्ध्व श्वाँस।

(वचन)—सखी-द्वारा नायक-प्रति नायिका का निवेदन।

भावार्थ—हे लाल, सुनो हमारी लाडिली का हृदय भीतर से तो विरह की अग्नि से खूब तपा हुआ है, और बाहर से आँसुओं का पानी उस पर से बहता है, और आठों पहर उसका हृदय ऊर्ध्वश्वाँस की हवा से ऊपर को उठा रहता है (अतः शीघ्र चलो, नहीं तो मर जायगी)।

अलंकार—अत्युक्ति ।

दो०—पलनि प्रगटि बरुनीनि बढ़ि, छन कपोल ठहरात ।
अँसुआ परि छतिया छनक, छनं छनाय छपिजात ॥४८७॥

शब्दार्थ—छपिजात=गायब हो जाते हैं, भाफ बनकर उड़ जाते हैं।

(वचन)—विरह-निवेदन—सखी-द्वारा नायक-प्रति ।

भावार्थ—सरल है ।

अलंकार—अत्युक्ति ।

दो०—करि राख्यो निरधार यह, मैं लखि नारी-ज्ञान ।
वहै वैद ओषध वहै, वहै जु रोग निदान ॥४८८॥

शब्दार्थ—निरधार=निश्चय, तशखीस । नारी ज्ञान=(१) इस स्त्री की चेष्टा से (२) नाड़ी की गति से । निदान=रोग का कारण ।

(वचन)—सखी-प्रति सखी-वचन ।

भावार्थ—सरल है ।

अलंकार—हेतु (दूसरा) ।

दो०—मरिवे को साहस ककै, बढ़े बिरह की पीर ।
दौरति है समुहैं ससी, सरसिज सुरभि-समीर ॥४८९॥

शब्दार्थ—समुहे=सम्मुख, सामने । सुरभिसमीर=सुगंधित वायु ।

(वचन)—सखी-वचन नायक-प्रति । विरह की उन्माद दशा ।

भावार्थ—हे लाल, तुम्हारी प्यारी की यह दशा है कि विरह की पीड़ा बढ़ने पर मरने का साहस करके चंद्रमा, कमल और सुगन्धित समीर के सम्मुख दौड़ती है ।

अलंकार—अत्यनुप्रास और विचित्र ।

दो०—ध्यान आनि ढिग प्रानपति, मुदित रहति दिनराति ।
पल कंपति पुलकति पलक, पलक पसीजति जाति ॥४९०॥

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति । स्मृति-दशा-वर्णन ।

भावार्थ—ध्यान द्वारा पति को पास लाकर रात-दिन आनन्दित रहा करती है। कभी काँपती है, कभी रोमांचित होती है, और कभी स्वेदयुक्त होती है।

अलंकार—कारक दीपक।

दो०—राकै सताय न बिरह-तम, निसिदिन सरस सनेह।
रहै वहै लागी दृगनि, दीपसिखा-सी देह ॥४९१॥

(वचन)—नायक की स्मृति दशा का वर्णन। सखीसे सखी कहती है।

भावार्थ—विरह-रूपी अँधेरा नायक को नहीं सता सकता, क्योंकि वही अति स्नेहयुक्त नायिका की दीपशिखा के समान देह नायक की आँखों से लगी रहती है (अर्थात् सदैव ध्यान किया करता है)।

अलंकार—रूपक और श्लेष से पुष्ट पूर्णोपमा।

दो०—बिरह-जरी लखि जीगननि, कही न वही कै बार।
अरी आव भजि भीतरै, बरसत आजु अँगार ॥४९२॥

शब्दार्थ—जीगन=जुगनू, खद्योत।

(वचन)—विरहिनी की प्रलाप दशा का वर्णन सखी नायक से कहती है।

भावार्थ—विरह से जली हुई उस नायिका ने जुगनुओं को देखकर मुझसे कितनी बार नहीं कहा (अर्थात् बहुत बार कहा) कि अरी सखी, भीतर भाग आ, आज वर्षाबुन्द के बदले आकाश से अंगार बरस रहे हैं।

अलंकार—भ्रम।

दो०—अरी परे न करै हियो, खरे जरे पर जार।
लावति घोरि गुलाब सों, मिलै मलै घनसार ॥४९३॥

शब्दार्थ—परे न करै=दूर क्यों नहीं करती। लावति=लगाती है। मलै=मलयागिरि चंदन। घनसार=कपूर।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति। नायिका की व्याधि-दशा का वर्णन।

भावार्थ—अरी सखी, तू इसे हटाती क्यों नहीं, यह दासी बार-बार गुलाबजल में चन्दन और कपूर घिस-घिस कर मेरे हृदय पर लगाती है, जिससे और भी अधिक जलन बढ़ती है।

अलंकार—तीसरा विषम (शीतलोपचार से अधिक जलन)।

दो०—कहे जु वचन बियोगिनी, बिरह बिकल बिललाय।
किये न केहि अँसुवा सहित, सुवा सु बोल सुनाय ॥४९४॥

शब्दार्थ—बिललाना = बेसँभार होकर प्रलाप बकना। सु = वह।

[विशेष]—नायिका विरह से व्याकुल होकर जो प्रलाप करती है, वे वचन उसका सुवा सुनकर सीख लेता है। पुनः जब सुवा वे ही वचन दूसरों के सामने (सिखे हुए पाठ की तरह) बोलता है, तब श्रोतागण रो उठते हैं। बिहारी का ही काम है कि विरह का ऐसा वर्णन करें। विरह-व्याकुलता के वर्णन की हद कर दी गई है।

(वचन)—सखी का वचन नायक-प्रति अथवा सखी-प्रति।

भावार्थ—विरह-विकलता से बेसँभार होकर जो वचन उस विरहिनी ने कहे, उन्हीं वचनों को पुनः बोलकर उसका सुवा किसको नहीं रुला देता।

अलंकार—हेतु से पुष्ट विरहात्युक्ति (अत्युक्ति)। यमक।

दो०—सीरे जतननि सिसिर रितु, सहि बिरहिनि-तन-ताप।
बसिबे को ग्रीषम दिवनु, परो परोसिन पाप ॥४९५॥

शब्दार्थ—पाप = महान् कष्ट।

भावार्थ—विरहिनी के पड़ोसियों ने उसके संतप्त शरीर के ताप का प्रभाव तो शिशिर ऋतु (जाड़े) में शीतलोपचारों से किसी प्रकार सह लिया, परन्तु ग्रीष्म ऋतु में उसके पड़ोस में बसना तो उनके लिये महान् कष्ट है।

अलंकार—अत्युक्ति।

दो०—पिय प्रानन की पाहरू, करति जतन अति आप।
जाकी दुसह दसा परचो, सौतिन हू संताप ॥४९६॥

[विशेष]—हैं तो सब विरहिनी, परन्तु ज्येष्ठा पर नायक की अति प्रीति समझ अन्य सपत्नियाँ भी उसकी दशा से व्याकुल होकर, सपत्नी-भाव की ईर्ष्या छोड़, उसके दुःख से दुखित होती हैं।

(वचन)—सखी-वचन नायक-प्रति। व्याधि-दशा वर्णन।

भावार्थ—यह ज्येष्ठा नायक के प्राणों की रक्षिका है (अर्थात् इसके मरते ही नायक भी मर जायगा), ऐसा समझकर कनिष्ठा सवतियाँ स्वयं उसके जीवित रखने का यत्न करती हैं। बस इसी से समझ लो कि उसकी दशा कैसी होगी, जिसको देखकर सवति को भी कष्ट होता है।

अलंकार—संबंधातिशयोक्ति। (सवति के करुणा भाव के सम्बन्ध से विरह की अत्यधिकता दर्शाई गई है)।

दो०—आड़े दै आले बसन, जाड़े हू की राति।
साहस कैकै नेह-बस, सखी सबै ढिग जाति ॥४९७॥

शब्दार्थ—आड़े दै=ओट करके। आले=गीले, भिगोए हुए।

(वचन)—सखी-वचन नायक-प्रति (विरह-संताप का वर्णन)।

भावार्थ—हे लाल, इस बात से तुम उसके शरीर के संताप का अनुमान करो, कि सब सखियाँ जाड़े की रात में गीले वस्त्रों की ओट करके, बड़े साहस को धारण करके, प्रेमवश होने के कारण, उसके निकट जाती हैं।

अलंकार—अत्युक्ति (बिहारी की यह अत्युक्ति बहुत ही बढ़ी चढ़ी है। फ़ारसी और उर्दूवाले देखें कि इससे बढ़कर तो क्या इसकी समता का भी कोई 'मुबालगा' उनके साहित्य में है ?)।

दो०—सुनत पथिक मुँह माह निसि, लुवैं चलत वहि गाम।
बिन बूझे बिनही कहे, जियत बिचारी बाम ॥४९८॥

शब्दार्थ—लुव=ग्रीष्म ऋतु की गर्म हवा के झकोरे। बिचारी=समझ ली, विचार ली।

(वचन)—कवि की उक्ति।

भावार्थ—नायक ने किसी मुसाफिर के मुख से यह सुनकर कि उस गाँव में (नायक के जन्मग्राम वा निवास-ग्राम में) माघ मास की रात्रियों में भी ग्रीष्म की लूक की लपटें चलती हैं, बिना पूछे और बिना कहे ही यह समझ लिया कि मेरी स्त्री जीती है (अर्थात् मेरे विरह से संतप्त है, उसी के शरीर के ताप से उस गाँव भर की वायु इतनी गर्म हो गई है कि माघ की रात में लू चलती है)।

अलंकार – अनुमान ।

दो०—इत आवति चलि जाति उत, चली छसातक हाथ ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहै, लगी उसासन साथ ॥४९९॥

[विशेष]—सखी का वचन सखी-प्रति । नायिका की दुर्बलता और उसाँस की प्रबलता दर्शाकर व्याधि-दशा का वर्णन ।

भावार्थ—हे सखी, हमारी लाड़िली सखी, नायक के विरह से इतनी दुर्बल हो गई है और ऊर्ध्वस्वाँस की इतनी प्रबलता है कि उसाँस के साथ ही मानों हिंडोरे में चढ़ी सी रहती है और छः सात हाथ इधर और उधर आती जाती है ।

अलंकार—अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा ।

सो०—विरह सुखाई देह, नेह कियो अति डहडहो ।
जैसे बरसे मेह, जरै जवासो ज्यौं जमै ॥५००॥

शब्दार्थ—डहडहो = सरसब्ज, हराभरा । जवासा = एक काँटेदार पौधा, जो नदियों के तट पर होता है । वर्षा के पानी से इसकी पत्तियाँ जल जाती हैं । ज्यौं = (जीव) जीवन-तत्व अर्थात् जड़ पौधों का जीवन जड़ ही पर निर्भर है, अतः ज्यौं (जीव) का अर्थ यहाँ पर हमारी सम्मति से जड़ ही लेना चाहिये । जमै = दृढ़ होता है, पुष्ट होता है, जमना = दृढ़ होना, पुष्ट होना, (देखो शब्दसागर) ।

[विशेष]—सखी-प्रति सखी-वाक्य (विरह और प्रेम की अधिकता)

भावार्थ—विरह ने उस नायिका की देह तो सुखा डाली है, परन्तु प्रेम को खूब हरा-भरा कर दिया है । जैसे मेह के बरसने से जवासा तो

जलता है (उसका ऊपरी भाग अर्थात् पत्ती, काँटे आदि जल जाते हैं), परन्तु जड़ (मूल) पुष्ट होता है और भूमि के भीतर ही भीतर नवीन शक्ति संचित करती है।

अलंकार— प्रतिवस्तूपमा।

पञ्चम शतक

सो०—आठौं जाम अछेह, दृग जु बरत बरसत रहत।
स्यौं बिजुरी जनु मेह, आनि यहाँ बिरहा धर्‌यो ॥५०१॥

शब्दार्थ—जाम = पहर। अछेह = (सं० अछेद्य) निरंतर। बरत = जलते हैं। स्यौं = सहित (सय)।

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—हे सखी, मेरे नेत्र जो निरंतर आठो पहर (रातदिन) जलते और बरसते हैं (आँसू गिराते हैं), इससे अनुमान होता है मानों विरह ने बिजली सहित मेघ यहाँ लाकर रख दिया है।

अलंकार—अनुमान, क्रम और उत्प्रेक्षा।

दो०—बिरह बिपति दिन परतही, तजे सुखनि सब अंग।
रहि अबलौंऽब दुखौ भये, चलाचली जिय संग ॥५०२॥

शब्दार्थ—ऽब = अब। चलाचली भये = चलने को तैयार हुए।

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—विरह की आपदा पड़ते ही सुखों ने सब प्रकार मुझे छोड़ दिया था (केवल दुःख मेरे संग रह गये थे)। दुःख भी अब तक रहकर अब प्राणों सहित चलने को तत्पर हुए हैं (तात्पर्य्य यह कि बस अब मरती हूँ)।

अलंकार-पूर्वार्द्ध में चपलातिशयोक्ति, उत्तरार्द्ध में अक्रमातिशयोक्ति।

दो०—नये बिरह बढ़ती बिथा, खरी बिकल जिय बाल।
बिलखी देखि परोसिन्यौं, हरषि हँसी तिहिकाल ॥५०३॥

शब्दार्थ—'बाल'=इस शब्द से नायिका मुग्धा जानो। बिलखो= व्याकुल।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति।

[विशेष]—मुग्धा नायिका में दुःसह-विरह-वर्णन प्राकृतिक नहीं। साधारण विरह होता है। और वह थोड़ी ही देर में भूल जाता है। यही दशा इस दोहे में बिहारी ने कही है।

भावार्थ—नवीन विरह में (क्योंकि नायक पहले ही पहल विदेश गया है) व्यथा बढ़ रही थी और वह बाला (मुग्धा) बहुत व्याकुल थी। इतने ही में देखा कि एक पड़ोसिन भी बहुत व्याकुल है। (यह पड़ोसिन प्रौढ़ा है और नायक से गुप्त प्रेम रखती है। उसके चले जाने से इसे भी विरह है)। बस ऐसा देखते ही वह उसी समय हर्षित होकर हँस पड़ी (यह अनुमान करके कि यह प्रौढ़ा सवति है, भले इसे ज्यादा दुःख होगा)।

[नोट]—इस दोहे में साहित्य के लिहाज से दो विशेष विलक्षणतायें हैं—(१) स्वकीया और परकीया प्रोषितपतिका नायिकायें दोनों एक ही साथ, (२) वियोग शृङ्गार और हास्यरस का विलक्षण मेल। एक दोहे में ऐसी कारीगरी बिहारी ही कर सके हैं।

अलंकार—चपलातिशयोक्ति से पुष्ट पंचम विभावना।

दो०—छतौं नेह कागद हिये, भई लखाइ न टाँक।
बिरह तचे उघरयो सु अब, सेंहुँड़ को सो आँक ॥५०४॥

शब्दार्थ—छतौं = प्रस्तुत होते हुए। टाँक = लिखावट, लिपि। तचे= तपाने से। सेहुँड़ को सो आँक =सेहुँड़ के दूध से लिखे हुए अक्षर के समान (सेहुँड़ के दूध से लिखे हुए अक्षर साधारणतः देख नहीं पड़ते। कागज को आँच पर सेकने से वे अक्षर स्पष्ट पढ़े जाते हैं)।

[विशेष]—परकीया नायिका का गुप्त प्रेम अब उघरा, जब नायक विदेश गया और विरह से नायिका व्याकुल वा दुबली हुई।

(वचन)—सखी का वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—हृदय-रूपी कागज पर प्रेमाक्षर लिखे थे (हृदय में गुप्त प्रेम था), पर उनकी लिखावट जान नहीं पड़ती थी। अब विरह-रूपी अग्नि से तपाये जाने पर वह प्रेम सेंहुड़ के दूध से लिखे हुए अक्षरों की तरह स्पष्ट हो पड़ा।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—कर के मीड़े कुसुम लौं, गई बिरह कुम्हिलाय।
सदा समीपनि सखिन हू, नीठि पिछानी जाय ॥५०५॥

शब्दार्थ—मीड़े = मसले हुए। समीपिनी = निकट रहनेवाली। नीठि=कठिनता से।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—लाल तिहारे बिरह की, अग्नि अनूप अपार।
सरसै बरसै नीर हू, मिटै न झर हू झार ॥५०६॥

शब्दार्थ—सरसै = बढ़ती है। झर = झड़ी। झार=ज्वाला।

(वचन)—दूती-वचन नायक-प्रति (विरह-निवेदन)।

भावार्थ—हे लाल, तुम्हारे विरह की अग्नि बड़ी अद्भुत और अपार है। यह पानी बरसने से बढ़ती है और झड़ी लगाने से भी (अर्थात् आँसुओं की झड़ी लगा देने से, बहुत रोने से) उसकी ज्वाला नहीं मिटती।

अलंकार—तीसरी विभावना (सरसै बरसै नीरहू)। विशेषोक्ति (मिटै न झरहू झार)।

दो०—याके उर औरै कछू, लगी बिरह की लाय।
पजरै नीर गुलाब के, पिय की बात बुझाय ॥५०७॥

शब्दार्थ—लाय = अग्नि। पजरै = प्रज्वलित होती है। बात = (१) चर्चा। (२) हवा।

(वचन)—सखी-प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—हे सखी, इसके हृदय में और ही प्रकार की विरहाग्नि लगी है। गुलावजल से प्रज्वलित होती है और नायक की बात (चर्चा, हवा) से बुझती है।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में भेदकातिशयोक्ति, उत्तरार्द्ध में पंचम विभावना।

दो०—मरी डरीकि टरी विथा, कहाँ खरी चलि चाहि।
रही कराहि कराहि अति, अब मुख आहि न आहि ॥५०८॥

शब्दार्थ—डरी = पड़ी है। खरी = खड़ी है। चाहि = देख। आहि न = नहीं है। आहि = आह (पीड़ासूचक शब्द)।

(वचन)—सखी-प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—हे सखी, क्या खड़ी है? चलके देख तो कि हमारी लाड़िली मरी पड़ी है अथवा उसकी पीड़ा दूर हो गई (जो चुप है), अब तक तो वह बहुत कराहा करती थी, इस समय उसके मुँह से 'आह' भी नहीं निकलती।

अलंकार—प्रथम चरण में अनुप्रास और सन्देह। दूसरे में छेकानुप्रास। तीसरे में वीप्सा। चौथे में यमक।

दो०—कहा भयो जो बीछुरे, मो मन तो मन साथ।
उड़ी जाति कितहुँ गुड़ी, तऊ उड़ायक हाथ ॥५०९॥

शब्दार्थ—बिछुरे = जुदा हुए। गुड़ी = पतंग। उड़ायक = उड़ानेवाला।

[विशेष]—विरहनी नायिका को नायक ने पाती लिखी है। उसी का मज़मून है। अथवा स्वकीया ने नैहर से नायक के नाम पाती लिखी है।

भावार्थ—हे प्यारी, क्या हुआ जो हमारा तुम्हारा बिछोह हुआ है, मेरा मन तो तुम्हारे मनके साथ ही है। पतंग कहीं उड़ जाय तब भी उड़ानेवाले के हाथ ही में है—(नायक अपने को पतंग, नायिका के मन को डोर, नायिका को उड़ानेवाला कहता है)।

अलंकार—दृष्टान्त।

दो०—जब जब वै सुधि कीजिये, तब सब ही सुधि जाहिं।
आँखिन आँखि लगी रहैं, आँखौ लागति नाहिं ॥५१०॥

शब्दार्थ—वै=(सर्वनाम) कृष्ण की आँखें। सुधि=स्मरण। सुधि=होश, बुद्धि। आँख लगना=निद्रा आना।

[विशेष]—नायिका वियोग में नायक के सुन्दर नेत्रों का स्मरण किया करती है। उसी स्मृति-दशा का वर्णन सखी से करती है।

भावार्थ—हे सखी, जब जब मैं प्यारे के सुन्दर नेत्रों का स्मरण करती हूँ तब-तब मेरी सब बुद्धि जाती रहती है। मेरी आँखें उन्हीं आँखों से लगकर रह जाती हैं और इस दशा में निद्रा तक नहीं आती।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में यमक। उत्तरार्द्ध में विरोधाभास।

दो०—कौन सुनै कासों कहौं, सुरति बिसारी नाह।
बदाबदी जिय लेत हैं, ये बदरा बदराह ॥५११॥

शब्दार्थ—सुरति=याद। बदाबदी=कह के, शर्त बाँधकर (खुल्लम खुल्ला, छिपकर नहीं)। बदरा=बादल। बदराह=कुमार्गी, बदमाश।

(वचन)—सखियों को सुनाकर नायिका का कथन।

भावार्थ—कौन सुनता है, किससे कहूँ! सुननेवाला और रक्षा करनेवाला जो नायक था, उसने मेरी याद ही भुला दी है। वर्षा में, ये कुमार्गी बादल शर्त बाँधकर मेरा जी लेने को तैयार हुए हैं।

[विशेष]—इसमें बिहारीजी बादलों के 'जीवनदाता' नाम पर बारीकी से कटाक्ष करते हैं। स्त्री को मारना भले आदमी का काम नहीं।

अलंकार—परिकर (बदराह शब्द साभिप्राय है)।

दो०—औरै भाँति भयेऽब ये, चौसर चन्दन चंद।
पति बिन अति पारत बिपति, मारत मारुत मंद ॥५१२॥

शब्दार्थ—चौसर=चार लड़ी की मोतियों की माला।

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—भेदकातिशयोक्ति ।

दो०—नेकु न झुरसी बिरह-झर, नेह लता कुम्हिलाति ।
नित नित होति हरी हरी, खरी झलरति जाति ॥५१३॥

शब्दार्थ—झुरसी = अधजली। झर = झार, लपट। झालरति जाति = फैलती जाती है।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति ।

भावार्थ—विरह की लपट से झुलसी हुई नेहलता जरा भी नहीं कुम्हलाती वरन् नित्यप्रति हरी होकर बढ़ती और फैलती जाती है।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में रूपक-गर्भित विशेषोक्ति। उत्तरार्द्ध में रूपक-गर्भित विभावना।

दो०—यह बिनसत नग राखिकै, जगत बड़ो जस लेहु ।
जरी विषम जुर ज्याइयें, आय सुदरसन देहु ।५१४॥

शब्दार्थ—नग = रत्न (यहाँ रत्नवत् नायिका)। जरी विषम जुर = विरह की विषम ज्वाला से जल रही है। सुदरसन = (१) सुन्दर दर्शन (अपने सुन्दर रूप का दीदार) (२) वैद्यक के अनुसार एक चूर्ण विशेष जो ज्वर के निवारणार्थ रोगी को दिया जाता है।

(वचन)— दूती-वचन नायक-प्रति (संघट्टन उद्देश्य)।

भावार्थ—हे लाल, इस विनष्ट होते हुए रत्न की रक्षा करके संसार में बड़ा यश लीजिये (विरह से मरती हुई नायिका की रक्षा करो)। वह विरह के कठिन संताप से जली जाती है, सो उसको अपने सुन्दर दर्शन देकर जिला लीजिये। (वह विषम ज्वर से जलती है, उसे सुदर्शन चूर्ण दीजिये)।

[विशेष]—दोहे के उत्तरार्द्ध से जान पड़ता है कि नायक वैद्यजी हैं, दूती वैद्यकीय श्लिष्ट शब्दों से दूतत्व करती है। बहुधा दूतियाँ ऐसीही भाषा में दूतत्व करती हैं, जिसके दो अर्थ हो सकते है।

अलंकार—श्लेष।

दो०—नित संसौ हंसौ बचत, मनहुँ सु यह अनुमान।
विरह अगिनि लपटनि सकत, झपटि न मीचु सिचान ॥५१५॥

शब्दार्थ—संसौ=संदेह। हँसौ=(सं० हंस) (१) प्राण (२) हंसपत्ती। सिचान=बाज पत्ती।

(वचन)—सखी-वचन नायक-प्रति।

भावार्थ—हमको नित्य सन्देह रहता है कि आज इसके प्राण बचेंगे वा नहीं, परन्तु वह रोज-रोज बच जाती है। अत: मेरे मन में तो यह अनुमान आता है कि विरह-रूपी अग्नि की लपटों के भय से मृत्युरूपी सचान उसके हंस (प्राण, मराल) पर झपट नहीं सकता।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट परंपरित रूपक।

दो०—करी विरह ऐसी तऊ, गैल न छाड़त नीचु।
दीने हू चसमा चखनि, चाहे लहै न मीचु ॥५१६॥

शब्दार्थ—गैल न छाँडत=पीछा नहीं छोड़ता। चाहे=हेरने पर, ढूँढ़ने पर।

(वचन)—दूती-वचन नायक-प्रति (संघट्टन उद्देश्य)।

भावार्थ—विरह ने उसे (नायिका को) ऐसी दुबली-पतली कर डाला है, तो भी नीच (विरह) उसका पीछा नहीं छोड़ता। वह इतनी दुबली हो गई है कि आँखों में चश्मा लगाकर ढूँढ़ने पर भी मृत्यु उसे खोज नहीं पाती।

अलंकार—अत्युक्ति।

दो०—मरन भलो बरु विरह तें, यह बिचार चित जोय।
मरन मिटै दुख एक को, बिरह दुहूँ दुख होय ॥५१७॥

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति (नायिका की दशा देखकर)।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—लेश-गर्भित काव्यलिंग।

दो०—बिगसत नव वल्ली कुसुम, निकसत परिमल पाय।
परसि प्रजारति बिरहि-हिय, बरसिरहे की बाय ॥५१८॥

शब्दार्थ—परिमल=सुगंध। परसि = छूकर। प्रजारति=अतिशय जलाती है। बिरहि=(बिरही) वियोगी। बरसि रहे की बाय= बरसते समय की वायु।

(वचन)—बिरही नायक वा बिरहिनी नायिका का कथन सखी-प्रति।

भावार्थ—बरसते समय की हवा जो नवीन वेलियों के नवीन निकले हुए फूलों की सुगन्ध को छू छू कर आती है वह शरीर को स्पर्श करते ही विरही के हृदय को अधिक जलाती है।

अलंकार—पाँचवीं विभावना (शीतल वायु जलाती है)।

दो०—औंधाई सीसी सु लखि, बिरह बरति बिललात।
बीचहिं सूखि गुलाब गो, छींटौ छुयौ न गात ॥५१९॥

(वचन)—सखी-प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—हे सखी, उस लाड़िली को विरह से जलती हुई और विलपती हुई देखकर मैंने गुलाबजल की शीशी ही उस पर औंधा दी (कि इसकी ठंढक से उसे कुछ आराम मिले) परन्तु उसके शरीर से इतनी ताप निकलती थी कि वह सब गुलाब बीच में ही सूख गया। एक छींटा भी उसके शरीर से न छू गया।

अलंकार—विरहात्युक्ति।

दो०—हौं ही बौरी बिरह बस, कै बौरो सब गाँव।
कहा जानि ये कहत हैं, ससिहिं सीतकर नाँव ॥५२०॥

शब्दार्थ—सीत कर=ठंढी किरणवाला।

(वचन)—विरहिनी नायिका का वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—सन्देह।

दो०—सोवत जागत सपन बस, रस रिस चैन कुचैन।
सुरति स्यामघन की सुरति, बिसराये बिसरै न ॥५२१॥

शब्दार्थ—सुरति=(१) प्रीति (२) शक्ल। सुरति=याद (स्मरण)। सुरति श्याम घन की सुरति=(१) घनश्याम (कृष्ण) की प्रीति की याद (२) घन-सम श्याम शक्लवाले की याद।

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति (विरह की स्मृति दशा)।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—यमक और विशेषोक्ति (बिसराये बिसरै न)।

सो०—कौड़ा आँसू बूँद, करि साँकर वरुनी सजल।
कीन्हे बदन निमूँद, दृग मलंग डारे रहत ॥५२२॥

शब्दार्थ—साँकर=जंजीर। निमूँद=न मुँदा हुआ अर्थात् खुला हुआ। मलंग=योगी, फ़कीर। डारे रहत=पड़े रहते हैं (निश्चल हो जाते हैं)।

[विशेष]-विरहिनी नायिका की आँखों का फ़कीर से रूपक मिलाया गया है। मलंग फ़क़ीर कौड़ियों की माला पहनते हैं (इसीसे शिव का नाम 'कपर्दी' भी है), जंजीर की मेखला बाँधते हैं मुँह खोले रहते हैं अर्थात् कुछ जपते हैं, जिससे मुँह बंद नहीं रहता, और स्थिर होकर कहीं एक स्थान में बैठ वा पड़े रहते हैं। बस ये ही सब बातें विरहिनी की आँखों में रूपण की गई हैं।

भावार्थ—आँसू के बूँद ही कौड़ा हैं, सजल वरुणी ही जंजीर है। इनको धारण किये हुए और मुख खोले हुए (अर्थात् टकटकी लगाये हुए) नेत्र-रूपी फकीर निश्चल एक स्थान पर पड़े रहते हैं (अर्थात् विरहिनी के नेत्र अश्रुपूर्ण, खुले हुए और टकटकी लगी हुई दशा में है। यह अवस्था मरण-सूचक है, अतः व्याधि की कठिन दशा का वर्णन इसमें जानना चाहिये।)

अलंकार—रूपक।

दो०—जिहिं निदाघ दुपहर रहै, भई माह की राति।
तिहिं उसीर की रावटी, खरी आवटी जाति ॥५२३॥

शब्दार्थ—निदाघ = ग्रीष्म ऋतु। उसीर = खस। रावटी=बँगला। आवटी जाति = औटी जाती है, संतप्त है।

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—जिसमें ग्रीष्म की दुपहर भी माघ मास की रात्रि के समान ठंढी जान पड़ती थी, उसी खस की टट्टियों की रावटी में मैं अत्यन्त संतप्त हो रही हूँ।

अलंकार—विभावना—(पंचम)।

दो०—तच्यो आँच अति विरह की, रह्यो प्रेमरस भीजि।

नैननि के मग जल बहै, हियो पसीजि पसीजि ॥५२४॥

[विशेष]—नायिका विरह में रो रही है। उसे देखकर सखी सखी से कहती है।

भावार्थ—जो हृदय प्रेम रस से भीजा हुआ था, वह अब अति विरह की आँच से तप गया है, इसी कारण हृदय से भाफ उठ-उठकर नेत्रों के मार्ग से जल होकर बहता है।

अलंकार—समासोक्ति (इस कथन से अर्क टपकाने की क्रिया का भान होता है)।

दो०—*स्याम सुरति करि राधिका, तकति तरनिजा तीर।

अँसुवन करति तरौंस को, खिन खरौंहों नीर ॥५२५॥

शब्दार्थ—तरनिजा=यमुना। तरौंस=निचली तह का। खरौंहों= खौलता-सा।

(वचन)—उद्धव-वचन कृष्ण-प्रति। (स्मृति संचारी, अश्रु अनुभाव, वियोग शृंगार की पूर्ण सामग्री)।

भावार्थ—हे कृष्ण, जब यमुना-किनारे जाकर यमुना का श्याम रंग

---

* इस दोहे के कई पाठान्तर और अर्थान्तर हैं। परन्तु हमें यही पाठ और यही अर्थ अत्यन्त उत्कृष्ट जँचता है। उद्धव-सरीखे उद्भट विद्वान् की अत्युक्ति ऐसी ही होनी भी चाहिये।

देखकर राधिका तुम्हारा स्मरण करती हैं, तो अपने आँसुओं से यमुना की निचली तह का पानी क्षणमात्र में खौलता-सा कर देती हैं।

अलंकार—उल्लास से पुष्ट अत्युक्ति (विरह की)। अप्रस्तुत प्रशंसा (कारज निबंधना)।

दो०—गोपिन के अँसुवन भरी, सदा असोस अपार।
डगर डगर नै ह्वै रही, बगर बगर के बार ॥५२६॥

शब्दार्थ—असोस = (अशोष्य) जो कभी सूखे नहीं। नै = नदी। बार = (द्वार) दरवाजा।

(वचन)—उद्धव-वचन कृष्ण-प्रति।

भावार्थ—हे कृष्ण, ब्रज की यह दशा है कि गोपियों के आँसुओं से भरी हुई अपार और अशोष्य नदी गली-गली में प्रति घर के द्वार पर बह रही है (अर्थात् तुम्हारे विरह में गोपियाँ बहुत रोया करती हैं)।

अलंकार—अप्रस्तुत प्रशंसा (कारज निबंधना)।

दो०—बन-बाटनि पिक बटपरा, तकि बिरहिन मत मैन।
कुहौ कुहौ कहि कहि उठत, करि करि राते रैन ॥५२७॥

शब्दार्थ—पिक = कोयल। बटपरा = डाकू। मत मैन = कामदेव की सम्मति से। कुहौ कुहौ = (१) पिक पक्ष में, 'कुहू कुहू' शब्द (२) बटपार पक्ष में 'मारो मारो'। राते = लाल।

(वचन)—वसंत-वर्णन में कवि की उक्ति।

भावार्थ—वन के मार्गों में कोयल-रूपी डाकू, काम की सलाह से वियोगियों को देखकर, लाल आँखें करके, 'इन्हें मारो, इन्हें मारो, कह कह उठता है (अर्थात् वसन्त में कोयल की कूक सुनकर विरहियों को बड़ा कष्ट होता है)।

अलंकार—रूपक।

दो०—दिसि दिसि कुसुमित देखियत, उपवन विपिन समाज।
मनो बियोगिनि कौ किये, सरपंजर रतिराज ॥५२८॥

शब्दार्थ—सरपंजर=बाणों का पिंजरा (वसंत में चारो ओर विविध प्रकार के फूल फूलते हैं और फूल ही काम के बाण माने जाते हैं, अतः शरपंजर।

(वचन) कवि की उक्ति।

भावार्थ—चारो ओर वनों और उपवनों में विविध प्रकार के फूल फूले हुए देख पड़ते हैं। ऐसा मालूम होता है मानो काम ने वियोगियों को बंद रखने के लिये बाणों का पिंजड़ा बनाया है। (अर्थात् वसंत में पुष्प-समूह को देखकर वियोगियों को वैसा ही दुःख होता है, जैसे शरपंजर में पड़े हुए योद्धा को होता है)।

अलंकार—उक्तविपया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—हिये और सी ह्वै गई, टरी अवधि के नाम।
दूजे करि डारी खरी, बौरी बौरे आम ॥५२९॥

शब्दार्थ—टरी अवधि के नाम=पिय आगमन का वादा टल गया सुनकर। खरी बौरी=अत्यन्त बावली। बौरे=पुष्पित, कुसुमित।

(वचन)—सखी-प्रति सखी-वचन। (विरह की उन्माद दशा का वर्णन)।

भावार्थ—हे सखी, एक तो वह लाड़िली, प्रियतमागमन का वादा टल गया सुनकर ही, हृदय में कुछ और ही सी हो गई थी, दूसरे अब इन पुष्पित आमों ने उसे अत्यन्त हीं बावली बना डाला है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा से पुष्ट समाधि (और सी ह्वै गई=मानो अन्य ही हो गई)।

दो०—भो यह ऐसोई समौ, जहाँ सुखद दुख देत।
चैत-चाँद की चाँदनी, डारत किये अचेत ॥५३०॥

(वचन)—नायिका वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—अति सरल है।

अलंकार—पंचम विभावना (सुखद दुख देत) अर्थान्तरन्यास (सामान्य का समर्थन विशेष से)।

दो०—गनती गनिबे तें रहे, छत हू अछत समान ।
अब अलि ये तिथि औम लौं, परे रहौं तन प्रान ॥५३१॥

शब्दार्थ—छतहू=होते हुए भी, होने पर भी, (अस्ति) होते हुए भी । अछत=नास्ति, नहीं । तिथि औम=(अवम तिथि) वह तिथि जिसकी हानि होती है । ऐसी तिथि पत्रा में लिखी तो जाती है, पर गिनी नहीं जाती ।

(वचन)—विरहिनी-वचन सखी-प्रति ।

भावार्थ—हे सखी, अब तो मेरे प्राणों की यह दशा है कि गिनती में गने जाने से रहे, होकर भी नास्ति के समान हैं । हे सखी, अब तो ये प्राण अवम तिथि (क्षय तिथि) की तरह शरीर में केवल पड़े मात्र हैं ।

[विशेष]—विरह की ग्यारहवीं दशा मरण है । शृंगार में इसका वर्णन रोचक नहीं जान पड़ता, अतः कवि लोग इसका कथन ही नहीं करते । परन्तु बिहारी ऐसा धुरन्धर कवि कब चूकनेवाला था । इसी दशा का वर्णन इस युक्ति से किया ।

अलंकार—पूर्णोपमा ।

दो०—जाति मरी बिछुरति घरी, जल सफरी की रीति ।
छिन छिन होति खरी खरी, अरी जरी यह प्रीति ॥५३२॥

शब्दार्थ—सफरी=मछली । जरी=जलाने-योग्य (एक गाली) ।

(वचन)=नायिका की उक्ति सखी-प्रति ।

भावार्थ—हे सखी, यह जला देने-योग्य प्रीति छिन-छिन बढ़ती ही जाती है । जल-वियोग से मीनवत् व्याकुल होकर मैं अब एक घड़ी के वियोग से भी मरी जाती हूँ (अर्थात् अल्प वियोग भी असह्य है) ।

अलंकार—अनुप्रास, वीप्सा और लोकोक्ति ।

दो०—मार सु मार करी खरी, मरी मरीहि न मारि ।
सींचि गुलाब घरी घरी, अरी बरीहि न बारि ॥५३३॥

शब्दार्थ—मार=काम । मार = चोट ।

(वचन)—नायिका का वचन सखी-प्रति ।

भावार्थ—काम ही ने गहरी चोट पहुँचाई है, अतः मैं मरी ही हूँ, तो अब मरी को मत मार । घड़ी-घड़ी गुलाबजल सींचकर जली को अधिक मत जला ।

अलंकार—यमक, अनुप्रास, वीप्सा और पंचम विभावना (गुलाब-जल से जलन) ।

दो०—रह्यौ ऐंचि अंत न लह्यौ, अवधि दुसासन बीर ।
आली बाढ़त बिरह ज्यौं, पंचाली को चीर ॥५३४॥

शब्दार्थ- अन्त = छोर । अवधि=प्रियतम के आगमन का निश्चित दिन । पंचाली=द्रौपदी ।

(वचन)—नायिका की उक्ति सखी-प्रति ।

भावार्थ=हे सखी, प्रियतम के आने का निश्चित दिन ही दुःशासन वीर है । यह वीर विरह को खींचकर छुड़ा लेना चाहता है, परन्तु उसका छोर ही नहीं मिलता (अर्थात् अवधि का दिन ज्यों-ज्यों निकट आता है, त्यों-त्यों उत्कंठा से विरह और अधिक बढ़ता जाता है)। हे सखी, विरह तो द्रौपदी के चीर के समान बढ़ता ही जाता है ।

अलंकार—रूपक से पुष्ट पूर्णोपमा ।

[दूषण]—"अवधि" स्त्रीलिंग है, इसका रूपक दुःशासन से करना दोष है ।

दो०—बिरह बिथा जल परस बिन, बसियत मो हिय ताल ।
कछु जानत जलथंभ-बिधि, दुरजोधन लौं लाल ॥५३५॥

(वचन)—नायिका की पाती नायक-प्रति ।

भावार्थ—हे लाल, जान पड़ता है तुम भी दुर्योधन की तरह जल-स्थंभ विद्या जानते हो, क्योंकि तुम मेरे हृदय-रूपी ताल में बसते हो, परन्तु विरह-जनित पीड़ा, जो जलवत् मेरे हृदय में भरी है, उसका स्पर्श तुमको नहीं होता (मेरे हृदय में बसकर भी मेरी पीड़ा का अनुभव नहीं करते) ।

अलंकार - रूपक से पुष्ट पूर्णोपमा। 'अवज्ञा' भी हो सकता है। [दूषण]—'बिथा' शब्द स्त्रीलिंग है। 'जल' से रूपक ठीक नहीं है।

दो०—सोवत सपने स्याम घन, हिलि मिलि हरति वियोग।
तबहीं टरि कितहूँ गई, नींदौ नींदन जोग ॥५३६॥

शब्दार्थ—वियोग = विरह, बिछोह (विरह का दुःख)। नींदन जोग = निन्दा करने योग्य।

(वचन) नायिका की उक्ति सखी-प्रति।

भावार्थ—सोते समय ख्वाब में कृष्ण से मिलजुलकर विरह-जनित दुःख दूर करने ही को थी, कि इतने ही में नींद उचट गई, हे सखी, नींद भी निंदा करने ही योग्य है (अर्थात् जी में आता है कि नींद को दसपाँच गालियाँ सुना दूँ)।

अलंकार—विषादन।

दो०—पिय-बिछुरनको दुसह दुःख, हरष जात प्यौसाल।
दुरजोधन लौं देखियत, तजत प्रान यह बाल ॥५३७॥

शब्दार्थ—प्यौसाल = (पितृ + शाला) नैहर।

(वचन)—सखी-प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—पति से बिछुड़ने का दुःसह दुख है और नैहर जाने का आनन्द है। देखती हूँ कि यह बाला ऐसी दुबिधा में पड़कर दुर्योधन की तरह प्राण त्यागना चाहती है-(दुर्योधन को ऐसा शाप था कि जब हर्ष और शोक दोनों भाव एक ही समय उदय हों तब मरेगा—यही दशा यहाँ उपस्थित है)।

अलंकार—पूर्णोपमा।

(प्रेम-संदेश वर्णन)

दो०—कागद पर लिखत न बनत, कहत सँदेस लजात।
कहिहै सब तेरो हियो, मेरे हिय की बात ॥५३८॥

(वचन)—नायिका की ओर से नायक-प्रति।

भावार्थ—कागद पर तो लिखते नहीं बनता (क्योंकि वियोग से लेखनी-संचालन की शक्ति नहीं, कागद हाथ की गरमी से जल जायगा वा आँसुओं से गल जायगा इत्यादि बातें बाधक हैं) और ज़बानी संदेशा कहते लजाती हूँ (प्रेम की सच्ची दशा दूसरों से कहने से हँसी होती है) अतः मेरे हृदय की बात तुम्हारा हृदय ही कहेगा, उसी से पूछ लो।

[विशेष]—दूसरे के हृदय की बात दूसरे का हृदय कैसे कहेगा, यह विरोध-सा भासता है, परन्तु प्रेम-शक्ति से ऐसा ही होता है।

अलंकार—विरोधाभास।

दो०—बिरह बिकल बिनुही लिखी, पाती दई पठाय।
आँक बिहीनीयो सुचित, सुनै बाँचत जाय ॥५३९॥

[विशेष]—नायक और नायिका दोनों की विरह-विकलता की दशा सखी सखी से कहती है।

भावार्थ—नायिका विरह से इतनी व्याकुल थी कि बिना लिखी ही (कोरा कागद) चिट्ठी भेजी (सूचित किया कि लिखने की शक्ति नहीं, और उधर नायक की यह दशा थी कि) बिना अक्षर की होने पर भी, स्वस्थ चित्त से शून्य नायक, उसको (लिखी-सी) पढ़ता जा रहा है (तात्पर्य यह कि विरह से दोनों ऐसे व्याकुल हैं कि होश-हवास ठीक नहीं है)

अलंकार—भ्रम। विभावना भी हो सकता है।

दो०—रँगराती राते हिये, प्रीतम लिखी बनाय।
पाती काती बिरह की, छाती रही लगाय ॥५४०॥

शब्दार्थ—रँगराती=लाल रंग की, लाल कागज पर अथवा लाल रोशनाई से लिखी। राते हिये=प्रेमपूर्ण हृदय से। काती=तलवार।

(वचन)—सखी-प्रति सखी-वचन नायिका की दशा का वर्णन।

भावार्थ—लाल रंग की पाती, प्रेमपूर्ण हृदय से सुन्दर धैर्यप्रद वाक्यों में, जो नायक ने लिखी है, उसको विरह को काटनेवाली तलवार समझ कर छाती से लगा रखा है।

अलंकार—अनुप्रास और रूपक।

दो०—तर झुरसी ऊपर गरी, कज्जल जल छिरकाय।
पिय पाती बिनहीं लिखी, बाँची बिरह बलाय ॥५४१॥

शब्दार्थ—झुरसी = जली हुई। गरी = गली हुई। बलाय = रोग।

(वचन)—सखी-प्रति सखी-वचन-(नायक की दशा का वर्णन)।

भावार्थ—नीचे की ओर कुछ कुछ जली हुई, ऊपर की ओर गली हुई (आँसुओं से) और कज्जलयुत जल से छिड़की हुई (दागदार) बिना लिखी हुई चिट्ठी ही से नायक ने विरह का रोग बाँच लिया (उपरोक्त चिह्नों से अनुमान कर लिया कि प्यारी विरह से दुखित है)।

अलंकार—अनुमान और विभावना का संकर।

दो०—कर लै चूमि चढ़ाय सिर, उर लगाय भुज भेंटि।
लहि पाती पिय की तिया, बाँचति धरति समेटि ॥५४२॥

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—कारक दीपक।

(आगतपतिका-वर्णन)

दो०—मृगनैनी दृग की फरक, उर उछाह तन फूल।
बिनही पिय-आगम उमँगि, पलटन लगी दुकूल ॥५४३॥

शब्दार्थ—फरक=फड़कना। तन=(स्तन) कुच। फूल = फूल जाना। आगम = अवाई। पलटन लगी = बदलने लगी। दुकूल = कपड़े।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—मृगनयनी नायिका, नेत्रों के फड़कने, हृदय के उत्साह और कुचों के फूल उठाने से (पति का आगमन निश्चय जान), बिना पति के आये ही उमंग कर कपड़े बदलने लगी।

अलंकार—अनुमान।

दो०—बाम बाहु फरकत मिलैं, जो हरि जीवन-मूरि।
तो तोही सों भेंटिहौं, राखि दाहिनी दूरि ॥५४४॥

(वचन)—नायिका-वचन वाम बाहु-प्रति।

भावार्थ—हे बाँई भुजा, तू फड़कती है (फड़क कर पति का आगमन सूचित करती है)। यदि मेरे जीवनाधार कृष्ण मिलेंगे, तो दाहिनी भुजा को दूर रखकर, पहले तुझी से कृष्ण को भेटूँगी।

अलंकार—संभावना।

दो०—कियो सयानी सखिन सों, नहिं सयान यह भूल।
दुरै दुराई फूल लौं, क्यौं पिय-आगम-फूल ॥५४५॥

शब्दार्थ—सयानी = चतुराई, सयानपन। पिय-आगम-फूल = पति के आगमन का आनन्द।

(वचन)—नायिका-प्रति सखी-वचन (नायिका परकीया है)।

भावार्थ—तूने सखियों से चतुराई की, सो यह चतुराई नहीं, वरन् भूल है। पति के आगमन का आनन्द सुगन्धित पुष्प की तरह कैसे छिप सकता है।

अलंकार—पर्यस्तापह्नुति और अनुमान से पुष्ट पूर्णोपमा।

दो०—आयो मीत बिदेस तें, काहू कह्यौ पुकारि।
सुनि हुलसी बिहँसी हँसी, दोऊ दुहुनि निहारि ॥५४६॥

[विशेष]—किसी नायक की दो परकीया थीं; परन्तु प्रत्येक को केवल अनुमान था कि यह उस नायक की परकीया है, निश्चय न था। दोनों नायक के विरह में दुखित रहती थीं। पूछने पर कारण न बताती थी। जिस दिन नायक विदेश से आया उस दिन दोनों एक ही स्थान में बैठी बातें करती थीं। किसी अन्य व्यक्ति से नायक के आगमन की सूचना पाकर दोनों की जो दशा हुई उसी का वर्णन इस दोहे में है।

(वचन)—सखी-प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—'मित्र विदेश से आया है' ऐसा किसी अन्य व्यक्ति ने

अन्य प्रति कहा। यह आकस्मिक सूचना पाकर दोनों आनन्दित हुईं, मुसुकराईं, हँसीं और दोनों ने दोनों की ओर देखा (तात्पर्य यह है कि अपने अनुमान के प्रमाणित होने का सुन्दर मौका पाकर दोनों एक दूसरे की दशा का निरीक्षण करने लगीं, तो दोनों की मित्रागमन सुनने पर एक ही सी दशा हुई। अतः दोनों को ज्ञात हो गया कि यह मेरे मित्र की परकीया है)।

अलंकार—युक्ति।

दो०—मलिन देह वेई वसन, मलिन विरह के रूप।
पिय आगम औरै चढ़ी, आनन ओप अनूप ॥५४७॥

शब्दार्थ—आगम = आमद। ओप=चमक, कान्ति।

भावार्थ—सरल है। (सखी-प्रति सखी-वचन)।

अलंकार—भेदकातिशयोक्ति।

दो०—कहि पठई जिय-भावति, पिय-आवन की बात।
फूली आँगन में फिरै, आँग न आँगि समात ॥५४८॥

शब्दार्थ—जिय भावति = मन भाई। फूलि = आनंदित। आँग न आँगि समात = कुच कंचुकी में नहीं समाते अर्थात् अत्यंत हर्ष से कंचुकी फट गई।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—यमक (आँगन और आँग न)।

दो०—रहे बरोठे में मिलत, पिय प्रानन के ईसु।
आवत आवत की भई, विधि की घरी घरी सु ॥५४९॥

शब्दार्थ— घरी सु = सो घड़ी, वह घड़ी, जो नायक ने बरोठे में गुरुजनों से मिलने में लगाई।

भावार्थ = सरल है (सखी-प्रति सखी-वाक्य है। नायिका की उत्कंठा का वर्णन है)।

अलंकार—वाचक-धर्म-लुप्ता (सो घरी विधि की घड़ी के समान लंबी हुई)।

दो०—जदपि तेज रौहाल बल, पलकौ लगी न बार।
तउ ग्वैंड़ो घर को भयो, पैंड़ो कोस हजार ॥५५०॥

शब्दार्थ—रौहाल=(फा० रहवार) घोड़ा। बल=द्वारा, सहारा। ग्वैंडा=पार्श्ववर्ती भूमि। पैंड़ा=रास्ता, मग।

(वचन —सखी-प्रति नायक-वचन। अपनी उत्कंठा का वर्णन।

भावार्थ—हे सखी, यद्यपि तेज़ घोड़े के द्वारा घर तक पहुँचने में ज़रा भी देर न लगी, तो भी घर के इर्द-गिर्द की भूमि (उत्कंठा के कारण) मुझे हजार कोस का सा रास्ता जान पड़ा।

अलंकार—विशेषोक्ति-गर्भित निदर्शना।

दो०—बिछुरे जिये सकोच यह, बोलत बने न बैन।
दोऊ दौरि लगे हिये, किये निचौहैं नैन ॥५५१॥

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—बिछुड़ने पर जीते ही रहे, इस लज्जा से कुछ कहते न बना, दोनों आँखें नीचे किये हुए दौड़कर परस्पर हृदय से लग गये।

अलंकार—काव्यलिंग (संकोच को 'बोलत बने न बैन' और 'निचौहैं नैन' से ज्ञापित किया)।

दो०—ज्यौं ज्यौं पावक लपट सी, तिय हिय सों लपटाति।
त्यौं त्यौं छुही गुलाब सी, छतिया अति सियराति ॥५५२॥

शब्दार्थ—छुही गुलाब-सी=गुलाबजल से सिंचित-सी (मानो गुलाबजल से सींची गई हो)।

(वचन)—प्रौढ़ा स्वकीया आगतपतिका। नायिका-प्रति नायक-वचन।

भावार्थ—हे तिय (हे प्यारी), ज्यों-ज्यों तू अग्नि की लपट-सी मेरे हृदय से लपटती है, त्यों-त्यों मेरी छाती इस प्रकार ठंढी होती है, मानो गुलाबजल से छिड़की गई हो।

अलंकार—उपमा और उत्प्रेक्षा से पुष्ट विभावना (पंचम)।

———

(फाग-वर्णन)

दो०—पीठि दिये ही नेकु मुरि, कर घूँघट पट टारि।
भरि गुलाल की मूठि सों, गई मूठि सी मार ॥५५३॥

शब्दार्थ—नेकु मुरि = जरा मुड़ कर। गई मूठि सी मार = मानो मूठि मार गई। मूठि मारना = तंत्र-शास्त्रानुसार मारण प्रयोग करना।

(वचन)—नायक-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—हे मित्र, पहले तो वह नायिका मेरी ओर पीठि दिये खड़ी थी, मैं धोखे में रहा, और उसने जरासा मुड़कर और हाथ से घूँघट हटाकर भरी गुलाल की मूठ चलाकर बस मानो मूठ ही सी मार गई (उसकी वह अदा और तेजी इत्यादि भूलती नहीं, चित्त उसी पर आसक्त हो रहा है)।

अलंकार—यमक से पुष्ट अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—दियो जु पिय लखि चखन में, खेलत फागु खियाल।
बाढ़त हू अति पीर सु न, काढ़त बनत गुलाल ॥५५४॥

शब्दार्थ—दियो = डाला। खियाल = खेल। सु = सो, वह।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति (नायिका की दशा का वर्णन)।

भावार्थ—हे सखी, देख तो उसका प्रेम, कि फाग खेलते समय नायक ने जो गुलाल आँख में डाला है (मुख पर मलते हुए आँख में पड़ जाना सम्भव है) उससे अति पीड़ा हो रही है परन्तु वह गुलाल आँख से निकालने नहीं देती।

अलंकार—प्रत्यनीक से पुष्ट विशेषोक्ति।

दो०—छुटत मुठी संगही छुटी, लोकलाज कुलचाल।
लगे दुहुन इक बेर ही, चलि चित्त, नैन, गुलाल ॥५५५॥

भावार्थ—गुलाल की मूठ छुटते ही लोक-लज्जा और कुल-मर्यादा भी साथ ही छूटी, और एक साथ ही चलकर दोनों के लगे चित्त, नेत्र और

गुलाल (गुलाल फेंकते ही नेत्र चलायमान हुए और नेत्र चंचल होते ही मन भी, दोनों के, एक ही साथ मिले)।

अलंकार—सहोक्ति।

दो०—जुज्यों उझकि झाँपति वदन, झुकति विहँसि सतरात।
तुत्यों गुलाल झुठी मुठी, झझकावत पिय जात ॥५५६॥

शब्दार्थ—जुज्यों = ज्यों-ज्यों। उझकि = चौंककर। झाँपति=ढाँपती है। सतरात = डरती है। झझकाना = डरवाना।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—ज्यों-ज्यों नायिका चौंक-चौंक कर मुँह ढाँपती, निहुरती, हँसती और डरती है, त्यों-त्यों नायक बिना गुलाल लिये ही झूठी मुट्ठी से डरवाता जाता है।

अलंकार—पर्यायोक्ति और स्वभावोक्ति।

दो०—रस भिजये दोऊ दुहुनि, तउ टिक रहे टरैं न।
छबि सों छिरकत प्रेमरँग, भरि पिचकारी नैन ॥५५७॥

शब्दार्थ - रस = रंग। टिकरहे = स्थिर होकर रह गये।

(वचन)—सखी-प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—दोनों ने दोनों को रंग से भिगो डाला है (दोनों शराबोर हैं), तब भी उसी ठौर स्थिर होकर रह गये हैं, वहाँ से टलते नहीं। नेत्ररूपी पिचकारियों से बड़ी सुन्दरता से परस्पर प्रेमरंग छिड़कते हैं। (परस्पर प्रेमयुक्त देखते हैं, यह सुध भूल गई है कि हम रंग से भीगे हुए हैं)।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में विशेषोक्ति, उत्तरार्द्ध में रूपक।

दो०—गिरै कंप कछु कछु रहै, कर पसीजि लपटाय।
लीन्ही मुठी गुलाल भरि, छुटत झुठी ह्वै जाय ॥५५८॥

(वचन)—सखी-प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—कंप होने के कारण कुछ तो गिर जाता है और स्वेद होने

के कारण कुछ हथेली में ही लिपट जाता है। गुलाल से भरी हुई मुट्ठी छूटने पर झूठी हो जाती है।

अलंकार—अनुप्रास और काव्यलिंग।

दो०—ज्यौं ज्यौं पट झटकति हठति, हँसति नचावति नैन।
त्यौं त्यौं निपट उदारहू, फगुआ देत बनै न ॥५५९॥

शब्दार्थ—फगुआ = फाग खेलने के बदले वस्त्राभूषण और मिठाई आदि का पुरस्कार।

(वचन)-सखी-प्रति सखी का वचन।

भावार्थ—ज्यों-ज्यों वह नायिका नायक का कपड़ा पकड़कर झटकती है, हठ करती है और आँखें नचा-नचा कर हँसती है, त्यों-त्यों निपट उदार होनेपर भी (नायक से) फगुआ नहीं देते बनता (अर्थात् नायिका की ये उपर्युक्त चेष्टायें नायक को अच्छी लगती हैं, अतः फगुआ देने में देरी करता है कि थोड़ी देर और भी ऐसा ही मजा रहे तो अच्छा हो)।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में समुच्चय, उत्तरार्द्ध में विशेषोक्ति।

[विशेष]—कोई-कोई "फगुआ देत बनै न" का अर्थ करते हैं "फगुआ के पुरस्कार में 'न' अर्थात् नाहीं ही देते बनती है"। भाव वही देर करने का है।

(बसन्त-वर्णन)

दो०—छकि रसाल सौरभ सने, मधुर माधवी गंध।
ठौर ठौर झूमत झपंत, भौंर भौंर मधु अंध ॥५६०॥

शब्दार्थ—सौरभ = सुगंध। माधवी = वासन्तीलता। झपत = एकदम आ गिरते हैं। भौंर = समूह।

(वचन)—कवि की उक्ति।

भावार्थ—आम की मंजरी की सुगंध से छककर और वासन्तीलता

की मधुर गंध से सने हुए, पुष्परस की मदिरा से अन्धे-से होकर, भौंरों के समूह जगह-जगह पर झूमते फिरते हैं और पुष्पित लताओं पर टूटे पड़ते हैं।

[विशेष]—इस दोहे को कवि की उक्ति मानें तो स्वभावोक्ति। सखी का वचन नायिका-प्रति मानें तो उद्दीपन कराके संघट्टन का उद्देश्य होने से पर्यायोक्ति। नायक का वचन नायिका-प्रति मानें तो रति साधन उद्देश्य से पर्यायोक्ति। नायिका-वचन नायक-प्रति मानें तो वसंत में विदेश-यात्रा रोकने के भाव से आक्षेप। स्वयं दूतिका का वचन पथिक-प्रति मानें तो पर्यायोक्ति रूप-गर्विता-नायिका का वचन भ्रमर-प्रति मानें तो प्रस्तुतांकुर। नायक के पास संदेश ले जाने के उद्देश्य से नायिका का वचन सखी-प्रति मानें तो पर्यायोक्ति। गरज्ञ कि उद्दीपन वर्णन के दोहों में वक्ता के अनुसार विचार करने से अलंकार बदला करते हैं।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

दो०—यह वसन्त न खरी अरी, गरम न सीतल बात।
कहि क्यों प्रगटे देखियत, पुलक पसीजे गात ॥५६१॥

(वचन)— सखी-वचन लक्षिता नायिका-प्रति, अथवा अन्य संभोग दुःखिता का वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—हे सखी, यह तो वसंत ऋतु है, न तो अति गर्मी है और न ठंढी हवा है फिर बतला तो कि तेरे शरीर पर प्रगट रोमांच और पसीना क्यों दिखाई देते हैं?

अलंकार—विभावना।

दो०—फिरि घरको नूतन पथिक, चले चकित चित भागि।
फूल्यो देखि पलास वन, समुहें समुझि दवागि ॥५६२॥

शब्दार्थ— नूतन=नवीन। समुहें=सम्मुख। दवागि=दावाग्नि।

भावार्थ—नवीन मुसाफिर (जो पहले ही पहल वसंत ऋतु में यात्रा को निकले थे) चकितचित होकर लौटकर घर को भाग चले। पलाश वन को फूला हुआ देखकर उन्होंने समझा कि सम्मुख ही दावाग्नि लगी हुई है (यात्रा में सम्मुख अग्नि का मिलना अपशकुन है)।

अलंकार—भ्रान्ति ।

दो०—अंत मरैंगे चलि जरैं, चढ़ि पलास की डार ।
फिरि न मरैं मिलिहैं अली, ये निरधूम अँगार ॥५६३॥

शब्दार्थ—पलाश = ढाख । मरैं = मरने के लिये । निरधूम = धूमरहित ।

[विशेष]—विरहिनी नायिका का प्रलाप है ।

भावार्थ—अन्त में मरना तो है ही, चल पलाश की डार पर चढ़कर जल मरें । हे सखी, ऐसे धूमरहित अँगारे फिर न मिलेंगे ।

अलंकार—भ्रांति ।

(ग्रीष्म-वर्णन)

दो०—नाहिन ये पावक प्रबल, लुवैं चलत चहुँपास ।
मानहु बिरह बसंत के, ग्रीषम लेत उसास ॥५६४॥

शब्दार्थ—लुवैं = गर्म हवा की लपटें । चहुँपास = चारों ओर । उसाँस = ऊँची स्वाँस ।

(वचन)—कवि की उक्ति ।

भावार्थ—ये चारों ओर प्रबल अग्नि की सी लपटें-लूक के झकोरे-नहीं चल रहे हैं, मानो वसंत के विरह में ग्रीष्म ऋतु उसाँसें ले रहा है ।

अलंकार—सापह्नवोत्प्रेक्षा (देखो "अलंकार-मंजूषा") ।

दो०—कहलाने एकत बसत, अहि मयूर, मृग बाघ ।
जगत तपोवन सो कियो, दीरघ दाघ निदाघ ॥५६५॥

शब्दार्थ—कहलाने = (बुन्देलखण्डी) किस वास्ते, किस कारण । 'कहलाने' शब्द का दूसरा अर्थ है कहलाये हुए अर्थात् गरमी से व्याकुल । एकत = एकत्र, एक साथ । दाघ = दाह, तपन, गर्मी । निदाघ = ग्रीष्म ऋतु ।

[विशेष]—एक बार एक चतुर चित्रकार ग्रीष्म ऋतु का चित्र बनाकर राजा जयसिंह के दर्बार में लाया। उस चित्र में यह दिखलाया गया था, कि जेठ की कड़ी धूप में हाँफता हुआ सर्प कहीं छाया न देख मोर की छाया में जा बैठा, मृग गर्मी से व्याकुल बाघ की माँद में जा बैठा था। गर्मी के मारे कोई किसी से बोलता न था। इस चित्र को देखकर दरबार के किसी व्यक्ति ने कुछ न समझा। महाराज जयसिंह ने इस दोहे का पूर्वार्द्ध भाग कहकर दरबारियों से प्रश्न किया। उत्तर में बिहारी ने उत्तरार्द्ध कहकर चित्र का मर्म खोल दिया था।

भावार्थ—(प्रश्न) इस चित्र में सर्प और मोर, मृग और बाघ किस कारण एकत्र बैठे दिखलाये गये हैं? (उत्तर) कठोर तापयुक्त ग्रीष्मऋतु ने संसार को तपोवन-सा बना डाला है (तपोवन में सहज-शत्रु भी एकत्र रहते हैं, कोई किसी को सताता नहीं, ऐसा तपस्वियों का प्रभाव माना जाता है)।

अलकार—पूर्वार्द्ध में 'चित्रोत्तर' है अर्थात् प्रश्न के ही शब्द उत्तर के शब्द भी हैं। प्रश्न में 'कहलाने' का पहला अर्थ और उत्तर में दूसरा अर्थ लगाइये। उत्तरार्द्ध में उपमा। 'कहलाने' शब्द के दूसरे अर्थ को समर्थन करने के लिये उत्तरार्द्ध का कथन है, अतः काव्यलिंग भी कह सकते हैं।

दो०—बैठ रही अति सघनवन, पैठि सदन तन माँह।
निरखि दुपहरी जेठ की, छाहौं चाहति छाँह ॥५६६॥

(वचन)—कवि की उक्ति (जेठ की दुपहर में वृक्षों की छाया ठीक उनके नीचे ही पड़ती है)।

भावार्थ—जेठ की दुपहर की तपन देखकर छाया भी छाया चाहती है। इसी कारण छाया अपने शरीर-रूपी घर में पैठकर अति सघन वन मे ही बैठ रही है।

[विशेष]—इस दोहा से ऐसा भान होता है कि जेठ की दोपहर में नायक और नायिका किसी कुंज में बैठे थे। किसी कारणवश रूठकर नायिका घर जाना चाहती है। इस पर सखी उपर्युक्त दोहा कहकर

रोकना चाहती है। अतः इस दशा में प्रस्तुतांकुर अलंकार मानना होगा।

अलंकार—(कवि की उक्ति मानकर) अत्युक्ति अलंकार। स्मरण रखना चाहिये कि जैसे—'जासु त्रास डर कहँ डर होइ', राजसमाजहिं लाज लजानी', 'उसके लिये तो मौत को भी मौत आ गई', इत्यादि कथनों में अत्युक्ति ही मानी जाती है, वैसे ही 'छाहौं चाहति छाँह' में भी अत्युक्ति ही मानी जायगी।

(पावस-वर्णन)

दो०—तिय तरसौंहैं मन किये, करि सरसौंहैं नेह।
घर परसौंहैं ह्वै रहे, झर बरसौंहैं मेह ॥५६७॥

शब्दार्थ—तरसौंहैं=तरसनेवाला। नेह सरसौंहैं करि=प्रेम को बढ़ाकर। धर=(धरा) पृथ्वी। धर परसौंहैं=पृथ्वी को स्पर्श करने वाले। झर=झड़ी।

(वचन)—मानी नायक-प्रति सखी का वचन।

भावार्थ—ये झड़ी बरसानेवाले मेघ पृथ्वी को स्पर्श करनेवाले हो रहे हैं। इन्होंने पुरुषों के हृदयों में प्रेम को बढ़ाकर उनके मन को स्त्रियों के लिये तरसानेवाला कर दिया है (और ऐसे समय में तुम मान किये बैठे हो)।

अलंकार—अनुप्रास।

दो०—पावस-निसि अँधियार में, रह्यौ भेद नहिं आन।
राति द्यौस जान्यौ परत, लखि चकई चकवान ॥५६८॥

[विशेष]—इस दोहे के लोग अनेक अर्थ करते हैं। हमको जो अर्थ सर्वोत्कृष्ट जान पड़ता है वही लिखते हैं।

(वचन)—वर्षाऋतु में कोई दूती नायिका को दिन ही में अभिसार कराना चाहती है। नायिका कहती है, रात्रि में चलूँगी। इस पर दूती का वचन नायिका-प्रति।

भावार्थ—पावस के अँधियारे में और निशि के अँधियारे में (अर्थात् बादलों के कारण दिन में जो अँधेरा छाया हुआ है उसमें और रात्रि के अँधेरे में) अन्य कोई भेद ही नहीं है, सिवाय इसके कि रात और दिन का होना केवल चकई चकवा को लक्ष करके ही लोगों को जान पड़ता है (भाव यह कि दिन में भी रात्रि का-सा ही अँधेरा है, तू चल, कोई नहीं देखेगा)।

[शंका]—अँधेरे के कारण चकई चकवा भी तो न देख पड़ेंगे, फिर उनका संयोग-वियोग देखकर दिन रात का ज्ञान कैसे होगा?

[समाधान]—देखने की जरूरत नहीं। रात को जब चकई चकवा बिछुड़ जाते हैं तब वे दूर ही से कराह-कराह कर परस्पर एक दूसरे को पुकारा करते हैं। उनका शब्द सुनकर बिछोह का ज्ञान और उनके बिछोह से रात्रि का ज्ञान हो सकता है। 'लखि' शब्द का अर्थ यहाँ पर 'देखकर' नहीं, वरन् 'लक्षकरके' वा 'समझ करके' लेना चाहिये।

[नोट]—यह बिहारी की गलती नहीं है। रसिकजन चकई चकवा पिंजड़ों में पाल रखते हैं।

अलंकार—उन्मीलित।

दो०—छिनकु चलति ठठकति छिनकु, भुज प्रीतम गर डारि।
चढ़ी अटा देखति घटा, बिज्जुछटा-सी नारि ॥५६९॥

शब्दार्थ और भावार्थ सरल ही हैं।

अलंकार—अनुप्रास और धर्मलुप्तोपमा।

दो०—पावक-झर तें मेह-झर, दाहक दुसह विशेष।
दहै देह वाके परस, याहि दृगन ही देख ॥५७०॥

शब्दार्थ—झर = (१) आग की लपट, (२) पानी की झड़ी।

भावार्थ—मेह की झड़ी आग की लपट से भी अधिक जलानेवाली है, क्योंकि उसके तो स्पर्श से देह जलती है, और इसे देखकर ही शरीर जलने लगता है।

अलंकार—व्यतिरेक।

दो०—कुढँग कोप तजि रँगरलि, करति जुवति जग जोय।
पावस बात न गूढ़ यह, बूढ़न हू रँग होय ॥५७१॥

शब्दार्थ—रँगरली = क्रीड़ा। जोय = देखो। गूढ़ = गुप्त। बूढ़ = (१) बीरबहूटी। (२) बूढ़ी स्त्री।

भावार्थ—हे वीर ! देख जग की युवती स्त्रियाँ कुढंग और कोप (मान) को छोड़कर अपने-अपने प्रियतमों के संग क्रीड़ा करती हैं (और तू मान किये बैठी है)। पावस ऋतु में यह बात छिपी नहीं है। देखो बूढ़ियों (बीरबहूटियों) में भी चटकीला रंग होता है।

अलंकार—'बूढ़' में श्लेष और समस्त दोहा में काव्यलिंग।

दो०—धुरवा होहि न अलि इहै, धुँआ धरनि चहुँ कोद।
जारत आवत जगत को, पावस प्रथम पयोद ॥५७२॥

शब्दार्थ—धुरवा = झड़ी की डोरें। चहुँ कोद = चारो ओर।

(वचन)—विरहिनी का वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—हे सखी, ये झड़ी की डोरें नहीं हैं, वरन्, पृथ्वी में चारो ओर फैला हुआ धुआँ है, क्योंकि वर्षा ऋतु के प्रथम दिनों के बादल संसार को आते ही जलाते हैं।

अलंकार—शुद्धापह्नुति (दुरै सत्य उपमेय को, प्रगट करै उपमान)।

दो०—हठ न हठीली करि सकै, यह पावस ऋतु पाय।
आन गाँठ घुटि जाति ज्यों, मान गाँठ छुटि जाय ॥५७३॥

शब्दार्थ—हठ = मान। हठीली = मानिनी नायिका। पावस = वर्षा ऋतु। घुटि जाति = कड़ी हो जाती है। मान गाँठ = मान समय की हठ।

(वचन)—मानिनी-प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—इस यौवनकाल में वर्षाऋतु पाकर कोई कामिनी मान नहीं कर सकती; कारण यह है कि वर्षा में जैसे अन्य वस्तुओं की गाँठें (सन वा मूँज की रस्सियों की गाँठें कड़ी पड़जाती है, वैसी मान की गाँठ कड़ी नहीं पड़ती, वरन् वह स्वयं छुट जाती है)।

अलंकार—काव्यलिंग।

दो०—वे ई चिरजीवी अमर, निधरक फिरौ कहाय।
छिन बिछुरे जिनकी न यहि, पावस आयु सिराय ॥५७४॥

शब्दार्थ—निधरक = निःशंक। न = बिना। आयु सिराय = जीवन व्यतीत होता है।

[अन्वय]—जिनकी आयु यहि पावस (में) न छिन बिछुरे सिराय।

[विशेष]—किसी विरही की उक्ति है।

भावार्थ—वे ही लोग निःसंदेह चिरजीवी और अमर नामों से पुकारे जाने योग्य हैं जिनकी आयु इस वर्षा ऋतु में बिना वियोग के व्यतीत होती है अर्थात् वे लोग, जिन्हें वर्षा में प्रिया का वियोग नहीं सहना पड़ता, निःसंदेह चिरजीवी और अमर नाम पाने योग्य हैं।

अलंकार—अत्युक्ति।

दो०—अब तजि नाउँ उपाउ को, आयो सावन मास।
खेल न, रहिबो खेम सों, कैम-कुसुम की बास ॥५७५॥

शब्दार्थ—उपाउ = युक्ति। खेम = क्षेम। कैम-कुसुम = कदंब पुष्प।

(वचन)—दूती-वचन नायक-प्रति।

भावार्थ—(उस परकीया को लाकर समागम कराने की युक्ति करने के लिये कहा करते थे सो) अब ऐसे उपायों का नाम छोड़ो, क्योंकि अब तो कामोद्दीपक सावन मास ही आ गया (अब वह आसानी से मिल जायगी)। इस सावन मास में कदंब पुष्पों की सुगंध पाकर क्षेम से रहना कोई खेल नहीं है।

अलंकार—लोकोक्ति। ('खेम से रहना खेल नहीं है' यह लोकोक्ति है। यथा—*"प्रीति पयोनिधि में धँसिकै हँसिकै कढ़िबो हँसी खेल नहीं फिर"*)।

दो०—बामा भामा कामिनी, कहि बोलो प्रानेस।
प्यारी कहत लजात नहिं, पावस चलत बिदेस ॥५७६॥

शब्दार्थ—बामा = कटूक्ति कहनेवाली। भामा = मान में रोष करने वाली। कामिनी = कामवती। प्रानेस = पति।

(वचन)—प्रोषितपतिका का नायक-प्रति ।

भावार्थ—हे प्राणपति मुझे, वामा, भामा और कामिनी कहकर संबोधित कीजिये (प्यारी कहकर नहीं) वर्षा में विदेश जाते समय आपको मुझे प्यारी कहते लज्जा नहीं आती? (यदि मैं आपको प्यारी होती तो वर्षा में आप विदेश न जाते)।

अलंकार—परिकरांकुर (वामा, भामा, कामिनी शब्द साभिप्राय विशेष्य हैं।

दो०—उठि ठक ठक एतो कहा, पावस के अभिसार।
जानि परैगी देखियो, दामिनि घन अँधियार ॥५७७॥

शब्दार्थ—ठक ठक = संशययुक्त वादविवाद। अभिसार = प्रियतम-मिलन हेतु यात्रा। देखियो = देखी हुई भी।

(वचन)—सखी-वचन नायिका-प्रति।

भावार्थ—उठ और चल, वर्षा के अभिसार में इतना संशय-युक्त वाद-विवाद (आगा पीछा) क्यों करती है। देख लिये जाने पर भी तू ऐसी जान पड़ेगी, मानो बादलों के अँधेरे में बिजली जा रही हो।

अलंकार—गम्योत्प्रेक्षा।

दो०—फिर सुधि दै सुधि द्याय प्यौ, यह निरदई निरास।
नई नई बहुरौ दई, दई उसास उसास ॥५७८॥

शब्दार्थ—सुधिदै = चैतन्य करके (मूर्छा से)। सुधि द्याय = स्मरण कराकर। उसास = ऊर्ध्वस्वाँस। उसास दई = उभाड़दी, बढ़ादी।

(वचन)—नायिका का सखी-प्रति।

भावार्थ—(हे सखी, मैं मूर्छा में पड़ी थी सो) तूने चैतन्य करके और प्रियतम के आने की अवधि का स्मरण कराकर (बुरा किया)। मुझे उस निर्दय नायक की ओर से निराशा ही है। (देख) पुनः दैव ने नवीन प्रकार की ऊर्ध्वस्वाँस को उभाड़ दिया है।

अलंकार—यमक।

(शरद-वर्णन)

दो०—घन घेरो छुटिगो हरषि, चली चहूँ दिसि राह।
किये सुचैनो आय जग, सरद सूर नरनाह ॥५७९॥

शब्दार्थ—सुचैनो=सुखप्रद व्यवस्था। सूर=शूरवीर।

भावार्थ—बादलों का घेरा छूट गया, हर्षित होकर चारों ओर की राहें चलने लगीं (पथिक यात्रा करने लगे)। शरद-रूपी बहादुर राजा ने जग में आकर सुखप्रद व्यवस्था कर दी।

अलंकार—रूपक।

(हेमन्त-वर्णन)

दो०—ज्यों ज्यों बढ़ति बिभावरी, त्यों त्यों बढ़त अनंत।
ओक ओक सब लोक सुख, कोक सोक हेमंत ॥५८०॥

शब्दार्थ—बिभावरी=रात्रि। ओक=घर।

भावार्थ—ज्यों ज्यों (हेमन्त ऋतु में) रात्रि बढ़ती जाती है, त्यों ही त्यों सब लोगों के घरों का सुख और चक्रवाक का शोक अपार बढ़ता जाता है।

अलंकार—दीपक।

दो०—किये सबै जग काम-बस, जीते जिते अजेय।
कुसुमसरहिं सर-धनुष कर, अगहन गहन न देय ॥५८१॥

शब्दार्थ—जिते=जितने। अजेय=न जीते जाने योग्य। कुसुम-सर=काम।

भावार्थ—जितने न जीते जाने योग्य प्राणी थे, उन सबों को जीत-कर समस्त जगत को कामवश कर दिया। अगहन ऐसा महीना है कि कामदेव को हाथ में धनुषबाण ही नहीं लेने देता।

अलंकार—निरुक्ति से परिपुष्ट काव्यलिंग।

दो०—मिलि बिहरत बिछुरत मरत, दम्पति अति रसलीन।
नूतन बिधि हेमंत ऋतु, जगत जुराफा कीन ॥५८२॥

शब्दार्थ—दम्पति=पति-पत्नी। रसलीन=शृङ्गार में मग्न। जुराफा=अफ्रीका-निवासी वनजंतु विशेष, जिसका यह स्वभाव है कि अपने जोड़े से बिछुड़ते ही प्राण खो देता है। प्राचीन कवियों ने इसे एक प्रकार का पक्षी माना है।

भावार्थ—हेमन्त ऋतु ने अपने नये कानून के अनुसार सारे संसार को जुराफा बना डाला है, जिससे संसार के स्त्री-पुरुष शृङ्गार रस में निमग्न हो गये। सब स्त्री-पुरुष मिलकर विहार करते हैं और बिछुड़ते ही (जुराफा की तरह) मर जाते हैं अर्थात् यह ऐसी ऋतु है कि वियोग असह्य हो जाता है।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट रूपक।

दो०—आवत जात न जानिये, तेजहिं तजि सियरान।
घरहिं जँवाई लौं घट्यौ, खरो पूस दिन मान ॥५८३॥

शब्दार्थ—सियरान=ठंढा हो गया। घर जँवाई=ससुराल में रहनेवाला दामाद।

भावार्थ—आते जाते कुछ मालूम ही नहीं होता। अपने तेज को छोड़कर ठंढा हो गया। पूस के दिनों का मान (दिनमान=दिन की लंबाई) इस तरह घट गया है, जैसे ससुराल में रहने वाले दामाद का मान (प्रतिष्ठा) घट जाता है।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट पूर्णोपमा।

दो०—लगति सुभग सीतल किरन, निसि-सुख दिन अवगाहि।
माह ससी भ्रम सूर तन, रही चकोरी चाहि ॥५८४॥

शब्दार्थ—निसि-सुख दिन अवगाहि=रात का सा सुख दिन में पाकर। सूर तन=सूर्य की ओर। चाहि रही=देख रही है।

भावार्थ—सुन्दर शीतल किरण के स्पर्श से रात्रि का सा सुख दिन

ही में पाकर, माघ मास में, चन्द्रमा के भ्रम से चकोरी सूर्य की ओर देखा करती है।

अलंकार—भ्रान्ति।

दो०—तपन-तेज तापन-तपन, तूल-तुलाई माह।
सिसिर-सीत क्योंहु न मिटै, बिन लपटे तिय नाह ॥५८५॥

शब्दार्थ—तपन तेज=सूर्य के तेज से। तापन तपन=अग्नि की गर्मी से। तूल-तुलाई=रुईदार दुलाई से।

(वचन)—मानिनी नायिका-प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—शिशिर की सर्दी बिना स्त्री-पुरुष के आलिंगन के, सूर्य की धूप से, अग्नि की आँच से अथवा रुईदार दुलाई में घुसे रहने से किसी प्रकार नहीं मिट सकती।

अलंकार—परिसंख्या (तपनतेज, तापन-तपन और तूल-तूलाई से हटकर गर्मी केवल तिय-नाह के आलिंगन में रह गई है)।

दो०—रहि न सकी सब जगत में, सिसिर सीत के त्रास।
गरमी भजि गढ़वै भई, तिय-कुच अचल मवास ॥५८६॥

शब्दार्थ—गढ़वै भई=गढ़ में रहनेवाली, गढ़-निवासिनी हुई। मवास=दुर्गम स्थान।

भावार्थ—शिशिर की सर्दी के डर से जब संसार में कहीं भी रहने का स्थान न मिला, तब गर्मी ने, स्त्रियों के कुचों को दुर्गम और अजेय स्थान समझ कर, वहीं निवास किया।

अलंकार=रूपक।

(द्वितीया का चन्द्र-दर्शन-वर्णन)

दो०—द्वैज सुधा दीधित कला, वह लखि डीठि लगाय।
मनो अकास अगस्तिया, एकै कली लखाय ॥५८७॥

शब्दार्थ—सुधादीधित=चन्द्रमा । अगस्तिया=अगस्तनामक वृक्ष ।

[विशेष]—कोई सखी नायक को किसी नायिका का घूँघट से थोड़ा निकला हुआ मुख दिखलाकर प्रकृत चंद्रोदय की ओर से विरत करती है।

भावार्थ—हे नायक, यह प्रकृत चंद्रोदय क्या देख रहे हो, यह तो मानो अगस्त की एक ही कली है, जरा दृष्टि लगाकर (गौर से) उस दूज की चन्द्रकला को देखो।

अलंकार—उक्तास्पद वस्तूत्प्रेक्षा । पर्यायोक्ति ।

दो०—धनि यह द्वैज जहाँ लख्यो, तज्यो दृगन दुख दन्द ।
तो भागनि पूरब उग्यो, अहो अपूरब चन्द ॥५८८॥

शब्दार्थ—दुखदन्द=दुःख, चिन्ता, कष्ट इत्यादि । अपूरब=अनूठा, अनोखा ।

[विशेष]—किसी नायक को कोई सखी द्वितीया के दिन चंद्रदर्शन की वेला में किसी नायिका का मुख दिखलाकर अनुरक्त करना चाहती है। द्वैज तिथि को नायिका का मुख पूर्णचन्द्र सम, और पश्चिम के बदले पूर्व की ओर से दर्शन होना, यही अपूर्वता है।

भावार्थ—धन्य है यह द्वैज की तिथि, जिसमें ऐसी वस्तू के दर्शन हुए कि नेत्रों के दुःख चिन्तादि छूट गये। तेरी किस्मत से आज द्वैज के दिन (जब चन्द्र को पश्चिम से और केवल दो कला से निकलना चाहिये) पूर्व की ओर से (पूर्ण) अनोखा चन्द्र (नायिका का मुख) उदय हुआ है।

अलंकार—व्याजस्तुति (द्वैज की प्रशंसा से नायिका के मुख की अति प्रशंसा प्रकट है)। पर्यायोक्ति (मिस करि कार्य साधन)।

दो०—जोन्ह नहीं यह तम वहै, किये जु जगत निकेत ।
होत उदय ससिके भयो, मानो ससहरि सेत ॥५८९॥

शब्दार्थ—जोन्ह=चाँदनी। तम=अंधकार । निकेत=घर । ससहरि=भयभीत होकर, डरकर । सेत=सफेद ।

(वचन)—विरहिनी नायिका का वचन सखी-प्रति ।

भावार्थ—हे सखी, यह चाँदनी नहीं है (क्योंकि दुखदाई है) यह तो वही अन्धकार है जो सारे संसार में घर किये हुए है (वियोग में प्रेमी के लिये सारा संसार अन्धकार-मय जान पड़ता है)। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि चंद्रमा के उदय से डरकर (भय से) वही अन्धकार सफेद पड़ गया है (भय से चेहरा सफेद वा पीला हो जाता है)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा से पुष्ट अपह्नुति।

(पवन-वर्णन)

दो०—रुनित भृङ्ग घंटावली, झरत दान मधुनीर।
मंद मंद आवत चल्यो, कुंजर कुंजसमीर ॥५९०॥

शब्दार्थ—रुनित = शब्द करते हुए। भृङ्ग = भौंरे। दान = गजमद। मधुनीर = मकरन्द। कुंजर = हाथी।

भावार्थ—शब्द करते हुए भौंरे सोई घंटे हैं, झरता हुआ मकरन्द ही गजमद है, (इस प्रकार घंटे बजाता और गजमद टपकाता) हाथी-रूपी कुंज समीर (कुंजों से आता हुआ पवन) मन्द-मन्द चाल से चला आता है।

अलंकार—रूपक।

दो०—रही रुकी क्यों हूँ सु चलि, आधिक राति पधारि।
हरति ताप सब द्यौस को, उर लगि यारि बयारि ॥५९१॥

शब्दार्थ—पधारि = आकर। ताप = दुःख, संताप। द्यौस = (दिवस) दिन। यारि = प्रिया (नायिका)।

भावार्थ—जो किसी कारणवश रुकी रही हो, वह चलकर आधीरात को आकर, प्रिया-रूपी बयारि, हृदय से लगकर दिन का सब दुःख हरती है।

अलंकार—रूपक (श्लेप से पुष्ट)

[विशेष]—इस दोहे में छेकापह्नुति अलंकार मानकर भी बहुत अच्छा अर्थ हो सकता है। इसमें ग्रीष्म की आधीरात बाद चलनेवाली हवा का वर्णन है।

दो०—चुवत सेद मकरंद कन, तरु तरु तर बिरमाय।
आवत दच्छिन देस ते, थक्यो बटोही बाय ॥५९२॥

शब्दार्थ—सेद=(स्वेद) पसीना । बिरमाय=विरमता हुआ, सुस्ताता हुआ । बटोही=मुसाफिर, पथिक। बाय=(वायु) पवन।

भावार्थ—पसीना-रूपी मकरंदकण टपकाता हुआ, और प्रति वृक्ष के नीचे सुस्ताता हुआ, वायु थके हुए बटोही के रूप में दक्षिण दिशा से आ रहा है।

[विशेष]—इस दोहे में वसन्त के मंद पवन का वर्णन है। इस दोहे में 'बिहारी' ने 'बाय' शब्द को पुल्लिग माना है।

अलंकार—रूपक।

दो०—लपटी पुहुप-पराग पट, सनी सेद मकरंद।
आवति नारि नवोढ़ लौं, सुखद बाय गति मंद ॥५९३॥

भावार्थ—फूलों के पराग-रूपी वस्त्रों में लिपटी हुई (पराग के पीले वस्त्र धारण किये) और मकरंद-रूपी पसीने से युक्त (पसीने में डूबी हुई) नवोढ़ा वधू की तरह सुख देनेवाली वायु मंद गति से आ रही है।

अलंकार—पूर्णोपमा।

[विशेष]—इस दोहे में 'बाय' शब्द 'स्त्रीलिंग' माना गया है।

दो०—रुक्यो साँकरे कुञ्ज मग, करत झाँझ झुकरात।
मंद मंद मारुत तुरँग, खूँदन आवत जात ।५९४॥

शब्दार्थ—झाँझ करना = शरारत करना। झुकराना=झोंके से लेना। खूँदी = उछल कूद (देखो दोहा नं० ७६)।

भावार्थ—संकीर्ण कुञ्जमग में रुका हुआ, शरारत करता हुआ और

झोंके से लेता हुआ वायु-रूपी घोड़ा मन्द चाल से खूँदी-सी करता हुआ आता जाता है।

अलंकार—रूपक।

(कुलवधू-वर्णन)

दो०—कहति न देवर की कुबत, कुलतिय कलह डराति।
पंजरगत मंजार ढिग, सुक लौं सूकत जाति ॥५९५॥

शब्दार्थ—कुबत=खोटी बात। पंजरगत = पिंजड़े में वंद। मंजार =बिलाव। सूकत जाति=सुखती जाती है।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति। देवर भौजाई से प्रेम-संबंध करना चाहता है।

भावार्थ—देवर की खोटी बात वह किसी से कहती नहीं, कारण यह कि परिवार की स्त्रियों में कलह होगी। इसी सोच चिन्ता में वह पिंजरा में वंद सुवे की तरह, जिसके निकट बिलाव भी वैठा हो, सूखती जाती है।

अलंकार—पूर्णोपमा।

(ग्रामीण-नायिका-वर्णन)

दो०—पहुला हार हिये लसै, सन की बेंदी भाल।
राखति खेत खरी खरी, खरे उरोजनि बाल ॥५९६॥

शब्दार्थ—पहुला=(सं० प्रफुला) कुमुद पुष्प, कोईं।

(वचन)—सखी का वचन नायक-प्रति। विच्छिति हाव है।

भावार्थ—प्रफुला का हार हृदय पर शोभा देता है, और सनपुष्प की वेंदी भाल पर लस रही है। वह खड़े कुचोंवाली नायिका (ऐसा

शृङ्गार किये हुए) खड़ी खड़ी अपना खेत रखा रही है (आपकी बाट जोह रही है, चलिये)।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में देहरी दीपक । उत्तरार्द्ध में स्वभावोक्ति ।

दो०—गोरी गदकारी परै, हँसत कपोलन गाड़ ।
कैसी लसति गँवारि यह, सुनकिरवा की आड़ ॥५९७॥

शब्दार्थ—गदकारी = मांसल (जिसके शरीर में इतना मांस हो कि दबाने से शरीर गुदगुदा जान पड़े)। गाड़ = गड्ढा । सुनकिरवा = भँभीरी नामक पतंग जाति का कीड़ा, जिसके पंख ऐसे जान पड़ते हैं मानो अवरख के बने हों। वर्षा में यह कीड़ा बहुत होता है। ग्रामीण लड़कियाँ, इसके गिरे-पड़े पंखों को, टिकली की तरह भाल पर अब भी लगाती हैं। आड़=लंबी टिकली, जो स्त्रियाँ भाल पर लगाती हैं।

(वचन)—सखी-वचन नायक-प्रति ।

भावार्थ—गोरी और मांसल शरीर वाली यह ग्रामीण स्त्री, जिसके गालों में हँसते समय गड्ढे पड़ते हैं, देखो तो भँभीरी के पंख की आड़ लगाये हुए कैसी सुन्दर मालूम होती है ।

अलंकार—स्वभावोक्ति ।

दो०—गदराने तन गोरटी, ऐपन आड़ लिलार ।
हूठ्यो दै इठलाय दृग, करै गँवारि सुमार ॥५९८॥

शब्दार्थ—गदराने = पक्वोन्मुख नवयुवती, जिसके शरीर में यौवन आ चला है। गोरटी = गौर वर्णवाली। हूठ्यो देना = हूठरपना वा गँवारपना करना (देखो दोहा नं० २६६)। ऐपन = चावल और हल्दी एक साथ पिसे हुए और पानी में घुले हुए। इठलाना=अँग मरोड़-मरोड़ कर बातें करना वा हँसना ।

(वचन)—सखी-वचन-नायक-प्रति ।

भावार्थ—यह यौवनोन्मुखी गोरी गँवार नायिका, लिलार पर ऐपन की आड़ लगाए हुए, गँवारपन से इठलाती हुई नेत्रों से बड़ी सुन्दर मार करती है (कैसे मनहरण कटाक्ष करती है !)।

अलंकार—स्वभावोक्ति ।

(स्नान-वर्णन)

दो०—सुनि पग-धुनि चितई इतै, न्हात दिये ई पीठि।
चकी, झुकी, सकुची, डरी, हँसी लजीली डीठि ॥५९९॥

शब्दार्थ—चकी=चकित हो गई, आश्चर्य में आ गई। झुकी=झुक गई अथवा खीझी।

(वचन)—नायिका स्नान कर रही है, पीछे से नायक आ गया है। नायक का वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—पैरों की आहट सुनकर वह मेरी ओर देखने लगी, क्योंकि वह मेरे आने की ओर पीठ किये स्नान कर रही थी। मुझे देखकर वह चकित हुई, झुक गई, सकुची, भयभीत हुई और लजीली दृष्टि से हँसी।

[विशेष]—इस दोहा में किलकिंचित हाव का वर्णन बहुत अच्छा है।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

दो०—नहिं अन्हाय नहि जाय घर, चित चिहुँट्यो लखि तीर।
परसि फुरुहरी लै फिरति, बिहँसति धँसति न नीर ॥६००॥

शब्दार्थ—चित चिहुँट्यौ=चित्त में अनुराग की वेदना हुई। फुरुहरी लेना=काँपना और रोमांच होना।

(वचन)—स्नान करते समय नायक सरोवर-तटपर आ गया है। सखी का वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—न तो स्नान ही करती है, न घर ही जाती है। नायक को सरोवर के तट पर देखकर चित्त में प्रेम की वेदना उठी। अतः जल को स्पर्श करके कंपित और रोमांचित होकर जाड़े के डर से लौटती है, मुसकुराती है और जल में नहीं पैठती।

[विशेष]—चित्त नायक पर आसक्त है। जाड़े के मिससे अधिक देर तक नायक के दर्शन करना चाहती है।

अलंकार—पर्यायोक्ति।

दो०—मुँह पखारि मुड़हरि भिजै, सीस सजल कर छ्वाय ।
सौरि उचै घूँटेन नै, नारि सरोवर न्हाय ॥६०१॥

शब्दार्थ—पखारि = धोकर । मुँड़हरि = सिर का अगला भाग । मौरि = (सं० मौलि) सिर । उँचै = ऊँचा करके, ऊपर को उठाकर । घूँटेन नै = घुटनों से झुककर ।

[विशेष]—क्रियाविदग्धा नायिका है ।

(वचन)—सखी-वचन नायक-प्रति (नायिका को लखा देना तात्पर्य है) ।

भावार्थ—मुख धोकर, सिर के अगले भाग को भिगोकर, सजल हाथ से सिर को छूकर, सिर को ऊँचा किये हुए और घुटनों के बल झुकी हुई वह नायिका स्नान कर रही है ।

अलंकार—स्वभावोक्ति ।

दो०—बिहँसति सकुचति सी हिये, कुच आँचर बिच बाहिं ।
भीजे पट तट को चली, न्हाय सरोवर माहिं ॥६०२॥

शब्दार्थ—आँचर = अंचल, कुचों के ऊपर पड़ा हुआ कपड़ा ।

भावार्थ—सरल ही है ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा से पुष्ट स्वभावोक्ति ।

दो०—मुँह धोवति एँड़ी घँसति, हँसति अनँगवति तीर ।
घँसति न इन्दीवर-नयनि, कालिन्दी के नीर ॥६०३॥

शब्दार्थ—अनँगवति = अनंगवति, कामवती । इन्दीवर-नयनि = कमल नयनी । कालिन्दी = यमुना ।

भावार्थ—वह अनँगवती नायिका (तीर पर नायक को देख उद्दीपन हुआ है) किनारे पर मुख धोती है, एँड़ी रगड़-रगड़ कर मैल छोड़ाती है, और हँसती है, परन्तु वह कमलनयनी यमुना के जल में नहीं पैठती ।

[विशेष]—क्रियाविदग्धा नायिका ।

अलंकार—धर्मवाचकलुप्तोपमा से पुष्ट स्वभावोक्ति।

दो०—न्हाय पहिरि पट झट कियो, बेंदी मिस परनाम।
दृग चलाय घरको चली, बिदा किये घनस्याम ॥६०४॥

शब्दार्थ—झट=तुरन्त। परनाम=प्रणाम, अभिवादन।

(वचन)—क्रियाविदग्धा नायिका।

भावार्थ—सरल ही है।

अलंकार—पर्यायोक्ति और सूक्ष्म।

दो०—चितवति जितवति हित हिये, किये तिरीछे नैन।
भीजे तन दोऊ कँपन, क्यों हू जप निबरै न ॥६०५॥

शब्दार्थ—चितवति=देखती है। जितवति=जिताती है, उत्कृष्ट प्रमाणित करती है। हित=प्रेम। निबरै न=समाप्त नहीं होता।

(वचन)—सखी-वचन सखी-प्रति।

भावार्थ—नायक की ओर तिरछे नेत्र किये देख रही है (जप नहीं कर रही है), हृदय के प्रेम को जिता रही है—अर्थात् भक्ति वा कष्ट का ध्यान छोड़ प्रेम को विजेता प्रमाणित कर रही है, देखो न) भींगे शरीर (जाड़े में) दोनों काँप रहे हैं, पर किसी प्रकार जप समाप्त ही नहीं होता।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में स्वभावोक्ति। उत्तरार्द्ध में विशेषोक्ति।

सप्तम शतक

(गर्भवती)

दो०—दृग थिरकौहैं अधखुले, देह थकौहैं ढार।
सुरति सुखित सी देखियत, दुखत गरभ के भार ॥६०६॥

शब्दार्थ—थिरकौंहैं = चंचल। थकौंहैं ढार = थकी-सी।

[विशेष]—कोई गर्भवती स्त्री बैठी है। कोई वयोवृद्धा स्त्री आई है। गर्भवती ने स्वयं न उठकर सखी द्वारा उसका सत्कार कराया है। इसपर वह वृद्धा स्त्री उसके न उठने का कारण तीन चरणों में अनुमान करती है। उसका अनुमान गलत जानकर सखी चौथे चरण में सच्चा कारण बताती है।

भावार्थ—इसके अधखुले नेत्र कुछ-कुछ चंचल-से हैं (अर्थात् कम चंचल हैं—स्थिर से हैं) और शरीर थका-सा है, मानो यह अभी सुरति से निबटकर बैठी है अतः आनन्दसंमोहिता-सी स्थगित देख पड़ती है। (तब सखी कहती है कि नहीं ऐसा नहीं है, वरन्) गर्भ के भार से दुखित है (इस हेतु शीघ्रतापूर्वक उठ नहीं सकती)।

अलंकार—भ्रान्त्यपह्नुति।

(कातनिहारी)

दो०—ज्यों कर त्यों चुहँटी चलै, ज्यौं चुहँटी त्यौं नारि।
छवि सों गति सी लै चलै, चातुरि कातनिहारि ॥६०७॥

शब्दार्थ—चुहँटी = चुटकी। नारि = गर्दन।

भावार्थ—जैसे हाथ चलता है वैसे ही चुटकी भी चलती है, और जैसे चुटकी चलती है वैसे ही गर्दन भी। यह चतुरा कातनेवाली अपनी छवि से मानों नृत्य की गति सी लेती है।

अलंकार—अनुक्तास्पद वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—अहे दहेंड़ी जिनि धरे, जिनि तू लेहि उतारि।
नीके है छींके छुए, ऐसी ही रहि नारि ॥६०८॥

शब्दार्थ—छींका = सिकहर।

[विशेष]—नायिका दोनों हाथ उठाकर सिकहर में दहेंड़ी रखती है। ऐसी दशा में नायक ने उसके तने हुए शरीर और अधखुले पीन पयोधरों को देखकर यह कहा है।

भावार्थ—हे प्यारी, न तो तू दहेंड़ी को सिकहर पर रख और न वहाँ से नीचे उतार। इसी प्रकार सिकहर छुए हुए खड़ी रह। तेरी यही अदा मुझे बहुत भली मालूम होती है।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

दो०—देवर फूल हने जु हठि, उठे हरषि अंग फूलि।
हँसी, करत औषधि सखिनु, देह-ददोरन भूलि ॥६०९॥

भावार्थ—देवर ने तो हठ करके भावज को फूल मारे हैं, इस कारण रोमांच और हर्ष से (क्योंकि दोनों का गुप्त प्रेम है) भावज का शरीर फूल गया है। पर उसकी सखियाँ जानती हैं कि इसके शरीर में चोट के कारण ददोरे पड़ गये हैं, इस हेतु भूल से ददोरों की दवा कर रही हैं। इस विचित्र चरित्र को देखकर वह नायिका हँस पड़ी।

अलंकार—भ्रम।

दो०—तिय निज हिय जु लगी चलत, पिय नख-रेख-खरोंट।
सूखन देत न सरसई, खोंटि खोंटि खत खोंट ॥६१०॥

शब्दार्थ—खरोंट = खरोंच, खराश। सरसई = गीलापन। खोंटना = नोचना, तोड़ना। खत = (क्षत) घाव। खोंट = घावके ऊपरी भाग की सूखी हुई खुट्ट।

(वचन)—सखी का सखी प्रति।

भावार्थ—प्रियतम के चलते समय मिलने से उस नायिका के हृदय पर नख लगने से जो घाव हो गया है उस घाव का खुट्ट नोच-नोच कर (उसका ताज़ापन बनाये रखने के लिये) उसे सूखने नहीं देती।

(वचन)—लेश (प्रियतम के स्मरणार्थ दुखदायक को भी सुखकर समझती है)।

दो०—पाखो सोर सुहाग को, इन बिन ही पिय नेह।
उनिदौहीं अँखिया ककै, कै अलसौंही देह ॥६११॥

शब्दार्थ—सोर=ख्याति । उनिदौंहीं=उनीदी-सी । ककै=करके ।

(वचन)—सवति के विषय में सखी का वचन नायिका-प्रति ।

भावार्थ—इसने (तुम्हारी सवति ने) विना नायक के नेह के ही, उनीदी आँखें और आलसयुक्त देह बनाकर अपने सुहाग की ख्याति फैला दी है (वास्तव में नायक रात को उसके पास नहीं रहा, न उससे प्रेम ही करता है, जैसा तुम बाहरी चिह्नों से अनुमान करती हो) ।

अलंकार—विभावना और पर्यायोक्ति।

दो०—बहु धन लै अहिसान कै, पारो देत सराहि ।
बैद-बधू हँसि भेद सौं, रही नाह-मुख चाहि ॥६१२॥

शब्दार्थ—अहिसान=बड़ाई, उपकार । चाहि रही=देखकर रह गई ।

भावार्थ—कोई वैद्य जो स्वयं नपुंसक था, किसी से बहुत सा धन लेकर और तिसपर भी एहसान जताकर, बहुत बड़ी तारीफ करता हुआ, उसे पारा (पारे की खाक) दे रहा है. (जिसे खाकर वह अति प्रबल पुरुषशक्तिवाला हो जायगा) इस बात को सुन तथा देखकर उस वैद्य की स्त्री मर्मयुक्त हँसी हँसकर (कि स्वयं खाकर प्रबल शक्ति क्यों नहीं प्राप्त कर लेते) निज पति का मुख देखकर रह गई ।

अलंकार—सूक्ष्म ।

दो०—ऊँचै चितै सराहियत, गिरह कबूतर लेत ।
दृग झलकत मुलकत बदन, तन पुलकत केहि हेत ॥६१३॥

शब्दार्थ—गिरह लेना=उड़ते हुए कबूतर का कुलांच खाना । मुलकना=हँसना ।

[विशेष]—कबूतरों के मिस नायिका नायक को देखती है । आनंद से सात्विक होते हैं । इसपर सखी का वचन नायिका-प्रति ।

भावार्थ—हे चतुरा, ऊपर की ओर देखकर तारीफ तो कबूतरों की करती है कि कैसी सुन्दर कुलाँचें लेते हैं, परन्तु आखें चमक सी रही हैं, मुख मुसका सा रहा है और तन पर पुलकावली हो रही है, इसका

क्या कारण है ? (मैं जान गई कि तू इस कबूतर उड़ानेवाले नायक पर आसक्त है)।

दो०—कारे बरन डरावने, कत आवत यहि गेह।
कइ बा लख्यो सखी लखे, लगै थरहरी देह ॥६१४॥

शब्दार्थ—कइ बा = कई बार। थरहरी लगना = काँपने लगना।

भावार्थ—यह काले शरीर वाला डरावना मनुष्य (कृष्णजी) क्यों इस घर में आता है। मैंने कई बार इसको यहाँ देखा है, हे सखी, इसे देखकर मेरा शरीर काँपने लगता है।

अलंकार—व्याजोक्ति (कंप सात्विक का कारण आसक्ति नहीं, वरन् भय बताती है)।

दो०—औरि सबै हरखी फिरैं, गावत भरी उछाह।
तुही बहू बिलखी फिरै, क्यों देवर के ब्याह ॥६१५॥

(वचन)—निज देवर से कोई नायिका अनुरक्त है। उसी नायिका प्रति किसी गुरु स्त्री का वचन।

भावार्थ—घर आई हुई अन्य सब स्त्रियाँ हर्षित हो उत्साहपूर्वक गाती फिरती हैं। हे बहू! एक तूही, देवर के ब्याह में क्यों दुखित होती है।

[विशेष]—देवर की स्त्री आ जाने से मेरा नायक स्वच्छन्दता-पूर्वक घर में नहीं आ सकेगा। इस भेद से दुखित स्वकीया से सखी का वचन भी हो सकता है।

अलंकार—उल्लास।

दो०—रवि बंदौ कर जोरि कै, सुनत स्याम के बैन।
भये हँसौंहैं सबनि के, अति अनखौंहैं नैन ॥६१६॥

भावार्थ—अति सरल।

अलंकार—पर्याय।

दो०—तंत्रीनाद कवित्तरस, सरस राग रति रंग।
अनबूड़े, बूड़े, तिरे, जे बूड़े सब अङ्ग ॥६१७॥

शब्दार्थ—तंत्रीनाद=वीणा वा सितार इत्यादि का शब्द। रतिरंग-प्रेम।

भावार्थ—वाद्य, कवित्व, गान और प्रेम के रस में जो लोग सर्वांग डूब गये वे ही इस भव-समुद्र को पार कर गये, और जो इन रसों में नहीं डूबे, वे ही इस भव-पारावार में डूब गये।

अलंकार—विरोधाभास।

दो०—गिरि ते ऊँचे रसिक मन, बूड़े जहाँ हजार।
वहै सदा पसु नरन कहँ, प्रेम पयोधि पगार ॥६१८॥

शब्दार्थ—पगार=पायाव पानी, छीलर, उतना पानी जितने में केवल पैर डूबे।

भावार्थ—पर्वत से भी अधिक ऊँचे रसिकों के मन, जिस प्रेम-समुद्र में, हजारों डूब गये हैं, वही प्रेम-समुद्र पशुवत् अज्ञान नरों को पायाव (उथला) पानी-सा जान पड़ता है।

अलंकार—रूपक।

दो०—चटक न छाँड़त घटत हू, सज्जन नेह गम्भीर।
फीको परै न बरु फटै, रँग्यो चोल रँग चीर ॥६१९॥

शब्दार्थ—चटक=चटकीलापन। चोल=मँजीठ।

भावार्थ—सज्जन पुरुषों का गंभीर स्नेह घटते हुए भी अपना चटकीलापन नहीं छोड़ता, जैसे मँजीठ के रँग में रँगा हुआ कपड़ा फट चाहे जाय, पर रँग में फीका नहीं पड़ता।

अलंकार—प्रतिवस्तूपमा।

दो०—सम्पति केस सुदेस नर, नमत दुहुन इक बानि।
बिभव सतर कुच नीच नर, नरम बिभव की हानि ॥६२०॥

शब्दार्थ—सुदेस नर=सुपुरुष, भले आदमी। नमत=नम्र होते हैं। सतर=कठिन, बाँके। बानि=आदत, स्वभाव।

भावार्थ—सम्पत्तिवान होने पर (बढ़ने पर) बाल और भले आदमी नम्र होते हैं, इन दोनों की एक-सी आदत होती है। परन्तु कुछ और नीच नर विभवयुक्त होने पर कठोर होते हैं, और विभव नाश होने पर नरम पड़ते हैं।

अलंकार—आवृति दीपक (अर्थावृत्ति—नमत और नरम)।

दो०—नये विससिये लखि नये, दुर्जन दुसह सुभाय।
आँटे परि प्रानन हरैं, काँटे लौं लगि पाय ॥६२१॥

शब्दार्थ—विससना = विश्वास करना। आँट = दवाव।

भावार्थ—इस दुःसह स्वभाववाले दुर्जनों को नम्र देखकर कभी विश्वास न करना चाहिये। दाब में पड़कर भी ये लोग काँटे की तरह पैर में लगकर प्राण हरते हैं (अति कष्ट देते हैं)।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—जेती संपति कृपन कों, तेती सूमति जोर।
बढ़त जात ज्यों ज्यों उरज, त्यों त्यों होत कठोर ॥६२२॥

शब्दार्थ—सूमति = सूमपना, कृपणता। जोर = जोर पकड़ती है, बढ़ती है।

भावार्थ—कृपण को जितनी ही अधिक संपत्ति मिलती जाती है, उसका सूमपना उतना ही अधिक जोर पकड़ता जाता है। जैसे कुच ज्यों-ज्यों बढ़ते जाते हैं त्यों-त्यों अधिक कठोर होते जाते हैं।

अलंकार—दृष्टान्त।

दो०—नीच हिये हुलसो रहै, गहे गेंद को पोत।
ज्यों ज्यों माथे मारिये, त्यों त्यों ऊँचो होत ॥६२३॥

शब्दार्थ—पोत = समता, ढंग।

भावार्थ—नीच पुरुष गेंद का ढंग लिये हुए निरादृत होने पर भी हृदय [illegible] ता है। जैसे गेंद को ज्यों-ज्यों मारते हैं त्यों-त्यों [illegible] ता है।

अलंकार—दृष्टान्त। कोई कोई इसमें आर्थी उपमा कहते हैं।

दो०—कबौं न ओछे नरन सों, सरत बड़न को काम।
सढ़ो दमामो जात कहुँ, कहि चूहे के चाम ॥६२४॥

शब्दार्थ—काम सरना=काम होना। दमाम=नगाड़ा। कहि=कहि कहो, बतलाओ।

भावार्थ—छोटे आदमियों से बड़ों का काम कभी नहीं हो सकता। तुम्हीं बतलाओ, कहीं चूहे के चमड़े से नगाड़ा सढ़ा जा सकता है? (नहीं सढ़ा जा सकता)।

[नोट]—"कैसे छोटे नरन सों" पाठान्तर है।

अलंकार—वक्रोक्ति-गर्भित अर्थान्तरन्यास।

दो०—कोरि जतन कोऊ करो, परै न प्रकृतिहिं बीच।
नल बल जल ऊँचे चढ़ै, तऊ नीच को नीच ॥६२५॥

शब्दार्थ—कोरि=कोटि, करोड़। प्रकृति=स्वभाव। बीच=अंतर, फर्क।

भावार्थ—कोई करोड़ यत्न करें, पर स्वभाव में फर्क नहीं पड़ता। नल के जोर से जल ऊपर को चढ़ता तो है, पर अन्त में (नल से पृथक् होने पर) नीच होने से नीचे ही को बहता है (अपना नीच स्वभाव नहीं छोड़ता)।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास।

दो०—लटुवा लौं प्रभु कर गहै, निगुनी गुन लपटाय।
वहै गुनी कर तें छुटे, निगुनीयै ह्वै जाय ॥६२६॥

शब्दार्थ—लटुवा=लट्टू (भौंरा)। निगुनी=(१) गुणरहित (२) बिना डोर का।

भावार्थ—जब प्रभु (ईश्वर या राजा जयसिंह) किसी को अपने हाथ में लेते हैं (अपनाते हैं) तब निगुणी भी लट्टू की तरह गुन (गुण, डोरी) से लिपट जाता है (गुणयुक्त हो जाता है)। पर वही

गुणी जब हाथ से छूट जाता है तब पुनः ज्यों-का-त्यों गुण-रहित हो जाता है।

अलंकार—उपमा।

दो०—चलत पाय निगुनी गुनी, धन मनि मुक्ता माल।
भेंट होत जयसाह सों, भाग्य चाहियत भाल ॥६२७॥

शब्दार्थ—जयशाह = राजा जयसिंह जिनके दर्बार में रहकर विहारी लाल ने यह ग्रंथ रचा था।

भावार्थ—गुणी हो अथवा निर्गुणी हो, राजा जयसिंह से भेंट होते ही दोनों प्रकार के लोग धन, मणि और मुक्तामाल पाकर ही लौटते हैं। वहाँ धन, मणि इत्यादि पाने के लिये क्या भाल में भाग्य चाहिये? (अर्थात् न चाहिये)। गुणी और भाग्यवान पुरुषों को तो सब ही राजा देते हैं, पर राजा जयसिंह निर्गुणी और अभागों को भी निहाल कर देते हैं, केवल भेंट हो जानी चाहिये।

अलंकार—वक्रोक्ति से पुष्ट तुल्ययोगिता।

दो०—यों दल काढ़े बलख तें, तैं जयसाह भुवाल।
उदर अघासुर के परे, ज्यों हरि गाय गुवाल ॥६२८॥

[नोट]—बलख देश में शाही फौज को शत्रुओं ने घेर लिया था। तब बादशाह ने जयसिंह को भेजा था। जयसिंह शत्रु-सेना का संहार कर शाही सेना को निकाल लाये थे।

भावार्थ—हे राजा जयसिंह, तुम ऐसे वीर हो कि बलख से शाही सेना को इस प्रकार निकाल लाये थे जैसे अघासुर के पेट में पड़े हुए गायों और ग्वालों को श्रीकृष्ण ने निकाला था।

अलंकार—उदाहरण।

दो०—अनी बड़ी उमड़ी लखे, असिवाहक भट भूप।
मंगल करि मान्यो हिये, भो मुँह मंगलरूप ॥६२९॥

शब्दार्थ—अनी = सेना। असि-वाहक = तलवारधारी।

भावार्थ—भारी उमड़ी हुई सेना के शूर-वीर राजाओं को तलवार धारी देखकर जयसिंह ने (युद्ध-कार्य को) मंगलकार्य समझा और (क्रोध-सहित उत्साह से) उनका मुख मंगल के रंग का (लाल) हो गया।

अलंकार—विभावना (असंगल को मंगल माना)।

दो०—रहति न रन जयसाह मुख, लखि लाखन की फौज।
जाँचि निराखर हू चलैं, लै लाखन की मौज ॥६३०॥

शब्दार्थ—फौज = सेना। निराखर = निरक्षर (अपढ़)। मौज = बकसीस।

भावार्थ—राजा जयसिंह का मुख देखते ही लाखों की फौज रण-स्थल में नहीं ठहरती (भग जाती है) और निरक्षर लोग माँगने पर लाखों की बखशिश पाकर जाते हैं (भारी शूरवीर और महा दानी हैं)।

अलंकार—अत्युक्ति।

दो०—प्रतिबिम्बित जयसाह-दुति, दीपति दर्पण-धाम।
सब जग जीतन को कियो, कायव्यूह मनु काम ॥६३१॥

शब्दार्थ—दीपति = दीप्तमान करती है। दर्पण-धाम = शीश-महल (जिस महल में अनेक दर्पण जड़े हों) कायव्यूह = शरीर की सेना।

भावार्थ—राजा जयसिंह के शरीर की दुति शीशमहल में लगे हुए अगणित दर्पणों पर अपना प्रतिबिम्ब डालकर उसे ऐसे दीप्तमान कर देती है, मानो कामदेव ने समस्त संसार को जीतने के लिये कायव्यूह बनाया हो (अनेक रूप बनाये हों)।

अलंकार—असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा।

दो०—दुसह दुराज प्रजानि को, क्यों न बढ़ै अति दंद।
अधिक अँधेरो, जग करैं, मिलि मावस रवि चंद ॥६३२॥

शब्दार्थ—दंद = (द्वन्द) दुःख। मावस = अमावस।

भावार्थ—एक ही देश में प्रचण्ड तेजवाले दो राजाओं के होने से प्रजागण का दुःख क्यों न बढ़ जायगा! अमावस की रात्रि को सूर्य और चन्द्रमा एक राशि पर होकर जग में अधिक अँधेरा करते हैं।

अलंकार—दृष्टान्त।

दो०—बसे बुराई जासु तन, ताही को सनमान।
भलो भलो कहि छोड़िये, खोटे ग्रह जप दान॥६३३॥

भावार्थ—संसार में बुरे ही का सन्मान होता है। शुभ ग्रह को अच्छा कहकर छोड़ देते हैं और अशुभ ग्रह के लिए लोग जप और दान कराते हैं।

अलंकार—दृष्टान्त।

दो०—कहैं इहै सब स्रुति सुमृति, इहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसक ही, पातक, राजा, रोग॥६३४॥

शब्दार्थ—स्रुति=(श्रुति) वेद। सुमृति=स्मृतियाँ। निसक=निःशक्ति, निर्बल। पातक=पाप।

भावार्थ—यही बात सब वेद और स्मृतियाँ कहती हैं और यही सब सयाने लोग भी कहते हैं कि तीन जने अर्थात् पाप, राजा और रोग निर्बल ही को दबाते हैं।

अलंकार—प्रमाण (शब्द-प्रमाण)।

दो०—बड़े न हूजे गुनन बिन, बिरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे सों कनक, गहनो गढ़ो न जाय॥६३५॥

शब्दार्थ—कनक=(१) धतूरा (२) सोना।

भावार्थ—केवल नाम मात्र की बड़ाई पाकर कोई वास्तव में बड़ा नहीं हो जाता। 'कनक' तो धतूरा का भी नाम है, पर उससे गहना नहीं बन सकता (जो काम सोने से होता है वह नाम मात्र होने से धतूरे से नहीं हो सकता)।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास।

दो०—गुनी गुनी सब कोउ कहै, निगुनी गुनी न होत।
सुन्यो कहूँ तरु अर्क ते, अर्क समान उदोत ॥६३६॥

शब्दार्थ—अर्क =(१) मदार (अकौवा) (२) सूर्य। उदोत = प्रकाश।

भावार्थ—सब संसार गुणी गुणी कहे, तब भी निर्गुणिया गुणी नहीं हो सकता। क्या अकौवा के पेड़ से सूर्य के समान प्रकाश होते कहीं सुना गया है—अर्थात् नहीं।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास (वक्रोक्ति से पुष्ट)।

दो०—नाह-गरज नाहर-गरज, बोलि सुनायो टेरि।
फँसी फौज के बंदि में, हँसी सबन तन हेरि ॥६३७॥

शब्दार्थ—नाह = नाथ (पति)। नाहर=सिंह। तन=तरफ, ओर।

[विशेष]—रुक्मिणी-हरण का समय।

भावार्थ—सिंह की गर्जन के समान वाली अपने पति की गर्जन सुनकर (रुक्मिणी ने) जोर से पुकार कर सुना दिया (अब तुम लोग मेरा कुछ नहीं कर सकते, मेरे पति आ गये)। जो रुक्मिणी फौज से घिरी हुई घबरा रही थी, वही सब की ओर देखकर व्यंग से हँसी (कि अब ये लोग कुछ नहीं कर सकते)। तात्पर्य यह कि पति की शक्ति से स्त्री सशक्त हो जाती है।

अलंकार—धर्म-वाचक-लुप्तोपमा (नाहगरज नाहरगरज के समान भयंकर)।

दो०—संगति सुमति न पावहीं, परे कुमति के धंध।
राखौ मेलि कपूर में, हींग न होत सुगंध ॥६३८॥

शब्दार्थ—धंध = धंधा (कार्य)।

भावार्थ—जो कुमति के धंधा में पड़ा रहता है वह सुसंगति पाकर भी सुमति नहीं प्राप्त कर सकता। जैसे हींग को कपूर के डब्बे में डाल रक्खो, तो भी वह सुगन्धित न होगी।

अलंकार—दृष्टान्त और अतद्गुण।

दो०—परतिय दोष पुरान सुनि, लखी मुलकि सुखदानि ।
कसकरि राखी मिश्र हू, मुहँ आई मुसकानि ॥६३९॥

शब्दार्थ—मुलकि = देखकर । मिश्र = पौराणिक ।

[विशेष]—पुराण बाँचनेवाले व्यास से किसी परकीया से प्रेम था । पुराण में परस्त्रीगमन का दोष-वर्णन करते देख वह स्त्री व्यास पर हँसी । व्यास ने भी अपनी हँसी कसकर रोकी ।

भावार्थ—पुराण में परस्त्रीगमन का दोष सुनकर वह सुख देनेवाली नायिका (व्यासजी की प्रियतमा जो श्रोताओं में थी) ने पौराणिकजी की ओर आँखों में हँसती हुई देखा (कटाक्षपात किया) । यह देखकर पुराणीजी को भी हँसी तो आई, पर उन्होंने मुँह तक आई मुसकान को जबरई रोक रक्खा (नहीं तो अन्य श्रोताओं पर सब भेद खुल जाता) ।

अलंकार—सूक्ष्म ।

दो०—सबै हँसत करतारि दै, नागरता के नाँव ।
गयो गरब गुन को सबै, बसे गँवारे गाँव ॥६४०॥

शब्दार्थ—नागरता = चातुर्य, प्रवीणता । गरब = घमंड । गँवारे = गँवारों का ।

[विशेष] —कोई नगर-निवासी प्रवीण पुरुष किसी गाँव में जा बसा है, पर उसकी प्रवीणता की कोई वहाँ कदर नहीं करता, वरन् उलटे उसे बनाते हैं, तब वह कहता है ।

भावार्थ—सब हाथ की ताली दे-देकर प्रवीणता के नाम पर हँसते हैं । (हे मित्र) इस गँवारों के गाँव में बसकर मेरा तो समस्त गुणगर्व जाता रहा ।

अलंकार—हेतु (प्रथम) ।

दो०—फिरि फिरि बिलखी ह्वै लखति, फिरि फिरि लेति उसास ।
साईं सिर कच [illegible] रत बिरयो कपास ॥६४१

शब्दार्थ—उसास = ऊँ[illegible] यौ कपास = कपास के [illegible] उजड़ जाने से ।

[विशेष]—किसी वृद्ध पुरुष की तरुण स्त्री का वर्णन। अनुसैना नायिका है। कपास का खेत संकेत-स्थल था। उसके उजड़ने पर उसकी दुःखावस्था का वर्णन।

भावार्थ—पुनः-पुनः व्याकुल हो-होकर उसे देखती है, और पुनः-पुनः ऊँची साँस लेती है। उजड़े हुए कपास के खेत में कपास चुनते हुए उसको वैसा ही दुःख हुआ, जैसा स्वामी के सिर के सफेद बाल उखाड़ते समय होता था। (देखो दोहा नं० २७१)।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—नर की अरु नलनीर की, गति एकै करि जोइ।
जेतो नीचो ह्वै चलै, तेतो ऊँचो होइ ॥६४२॥

शब्दार्थ—नलनीर=फुहारे का पानी। जोइ=देख।

भावार्थ—मनुष्य और फुहारे के जल की एक ही सी दशा है, इसे अच्छी तरह देख लो (समझ लो)। जितना ही नीचा होकर चलता है उतना ही ऊँचा होता है।

अलंकार—दीपक।

दो०—बढ़त बढ़त संपति सलिल, मन सरोज बढ़ि जाय।
घटत घटत सुन फिरि घटै, बरु समूल कुम्भिलाय ॥६४३।

शब्दार्थ—सलिल=पानी। बरु=बल्कि, चाहे।

भावार्थ—संपति-रूपी जल के बढ़ने से मन-रूपी कमल की नाल बढ़ती जाती है (ऐसा लोकापवाद है कि सरोवर में ज्यों-ज्यों पानी बढ़ता है त्यों-त्यों कमल नाल बढ़ती जाती है और कमल-पुष्प पानी में डूबता नहीं,) परन्तु पानी घटते समय फिर वह नाल छोटी नहीं होती चाहे समूल सूख जाय।

अलंकार—रूपक। (जैसे पानी घटने से कमल की नाल नहीं घटती)।

दो०—जो चाहौ चटक न घटै, मैलो होय न मित्त।
रज राजस न छुवाइये, नेह चीकने चित्त ॥६४४॥

शब्दार्थ—चटक = चमकीलापन। राजस=राजसी, हुकूमत।

भावार्थ—यदि तुम चाहते हो कि मित्रता की चमक-दमक न घटे और मित्र मैला न हो (मित्र के मन में किसी प्रकार का मैल न आवे), तो नेह से सुस्निग्ध (उसके) चित्त में हुकूमत की धूल मत छुआओ (उसपर हुकूमत न करो)।

अलंकार—रूपक।

दो०—अति अगाध अति औथरे, नदी कूप सर बाय।
सो ताको सागर जहाँ, जाकी प्यास बुझाय ॥६४५॥

शब्दार्थ—अगाध = अथाह। औथरे = उथले। बाय = बावली।

भावार्थ—संसार में अनेक अथाह और उथले नदी, कूवाँ, सरोवर और बावलियाँ हैं, परन्तु जिसकी जहाँ से तृप्ति हो वही उसके लिये समुद्र है।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—मीत न नीति गलीत ह्वै, जो धन धरिये जोरि।
खाये खरचे जो बचै, तो जोरिये करोरि ॥६४६॥

शब्दार्थ—गलीत ह्वै = गलित होकर (अपनी बुरी दशा बनाकर), अपने को भूखों मारकर।

भावार्थ—हे मित्र, यह कोई नीति की चाल नहीं है कि अपने को भूखों मारकर (कंजूसी से अपनी बुरी दशा बनाकर) धन-संचय किया जाय। हाँ, यह ठीक है, कि खाने और खरचने से यदि बच जाय तो करोड़ों मुद्रा संचित करे। (तब कुछ हर्ज नहीं)।

अलंकार—संभावना।

दो०—टटकी धोई धोवती, चटकीली मुख-जोति।
फिरति रसोई के बगर, जगरमगर दुति होति ॥६४७॥

शब्दार्थ—टटकी = तुरंत की, ताजी। धोवती = धोती, साड़ी, (धौत वस्त्र)। बगर=दालान। जगरमगर होना=जगमगाना।

भावार्थ—ताजी धोई हुई धोती पहने हैं और मुख की जोती बड़ी चटकीली है। ऐसी नायिका रसोई के दालान में (काम-काज के कारण) इधर-उधर आती-जाती है। उसकी दुति से सारा दालान जगमगा रहा है।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

दो०—सोहत संग समान को, इहै कहत सब लोग।
पान पीक ओठन बनै, काजर नैनन जोग ॥६४८॥

शब्दार्थ—और भावार्थ बहुत सरल हैं।

अलंकार—सम (अधीरा वा खण्डिता की उक्ति मानें तो दृष्टान्त अलंकार होगा)।

दो०—चित पितुमारक जोग गुनि, भयो भयेसुत सोग।
फिरि हुलस्यो जिय जोयसी, समुझ्यो जारज जोग ॥६४९॥

शब्दार्थ—जोयसी=ज्योतिषी। जारज जोग=अन्य पुरुष से उत्पन्न होने का सूचक योग (ज्योतिष के अनुसार)।

भावार्थ—अपने पुत्र की कुण्डली में पिताघातक योग देखकर, लड़का होने से (जब कि आनन्दित होना चाहिये) किसी ज्योतिषी जी को शोक हुआ, परन्तु पुनः सूक्ष्म रीत्या विचार करने से जब यह ज्ञात हुआ कि इसकी कुण्डली में तो जारज योग भी पड़ा है (अर्थात् यह तो अन्य किसी पुरुष से उत्पन्न है) तब ज्योतिषीजी को हर्ष हुआ।

अलंकार—लेश (दोप में गुण माना)।

दो०—अरे परेखो को करै, तुही बिलोकि बिचारि।
किहिं नर किहिं सर राखियो, खरे बढ़े पर पारि ॥६५०॥

शब्दार्थ—परेखो=परीक्षा, जाँच। पारि=(१) पाढ़, बाँध (१) मर्य्यादा।

भावार्थ—हे मित्र! जाँच कौन करता फिरे, तू ही विचार कर देख ले कि किस मनुष्य ने अत्यन्त बढ़ने पर मर्य्यादा की रक्षा की है और

किस सरोवर ने अत्यंत बढ़ने पर अपनी पाढ़ (बाँध) की रक्षा की है ? मनुष्य अति संपत्तिवान होने पर अमर्यादित काम करने लगता है। और तालाब अति बढ़ने पर अपनी पाढ़ काट देता है।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति।

दो०—कनक कनक तें सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
या खाये बौरात है, या पाये बौराय ॥६५१॥

शब्दार्थ—कनक=(१) सोना (२) धतूरा। मादकता=नशा।

भावार्थ—धतूरे की अपेक्षा सोने में सौगुना ज्यादा नशा है, क्योंकि धतूरा को खाने से मनुष्य पागल होता है, पर सोने को तो पाने ही से मनुष्य बावला हो जाता है।

अलंकार—काव्यलिंग।

दो०—ओंठ उचै हाँसी भरी, दृग भौंहन की चाल।
मो मन कहा न पी लियो, पियत तमाखू लाल ॥६५२॥

[नोट]—हम इस दोहे को बिहारी कृत नहीं मानते, क्योंकि इसमें बिहारी के दोहों का-सा रस नहीं है।

दो०—बुरो बुराई जो तजै, तो चित खरो सकात।
ज्यों निकलंक मयंक लखि, गनैं लोग उतपात ॥६५३॥

शब्दार्थ—खरो सकात=बहुत डरता है। निकलंक=कलंक-रहित (बिना दाग का)। मयंक=चंद्रमा। उतपात=उपद्रव।

भावार्थ—यदि बुरे जन बुराई छोड़ दे तो चित्त बहुत डरता है, जैसे बिना दाग के चन्द्रमा को देखकर लोग उपद्रव का अनुमान करते हैं।

[नोट]—ज्योतिष मत से ऐसा माना जाता है कि यदि चंद्रमा का काला दाग कम हो जाय वा बिल्कुल न रहे तो संसार में हिमवर्षा होगी।

अलंकार—उदाहरण।

दो०—भाँवरि अनभाँवरि भरो, करो कोटि बकवाद।
अपनी अपनी भाँति को, छुटै न सहज सवाद ॥६५४॥

शब्दार्थ—भाँवरि भरो=घूमने जाया करो। अनभाँवरि भरो=घूमने न जाया करो, एक स्थान में बैठे रहो। भाँति=टेव, स्वभाव।

[विशेष]—कोई नायक बड़ा घुमक्कड़ है। स्त्री के निवेदन करने पर उसने कहा है कि लो, अब मैं न जाया करूँगा, पर नायिका अविश्वास करती हुई कहती है।

भावार्थ—आप चाहे घूमने जाइये अथवा न जाइये और चाहे आप करोड़ वार अपने निर्दोष होने का प्रमाण दीजिये (पर मैं विश्वास नहीं कर सकती), क्योंकि अपनी-अपनी प्रकृति का सहज स्वाद तो किसी प्रकार छूट ही नहीं सकता है।

अलंकार—आत्मतुष्टि प्रमाण।

दो०—जिन दिन देखे वे सुमन, गई सु बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब की, अपत कँटीली डार ॥६५५॥

शब्दार्थ—बहार=वैभव का समय। अपत=पत्र-रहित।

भावार्थ—जिन दिनों तुमने वे फूल देखे थे वह बहार (वैभव का समय) तो बीत चुका। हे भौंरे (क़द्रदान), अब तो गुलाब की केवल पत्ररहित कँटीली डार ही शेष रह गई है।

अलंकार—अन्योक्ति (किसी सम्पत्तिहीन पुरुष वा गलितयौवना स्त्री पर)।

दो०—इहि आसा अटक्यो रहै, अलि गुलाब के मूल।
ह्वैहैं बहुरि बसंत ऋतु, इन डारन वे फूल ॥६५६॥

भावार्थ—इस आशा से भौंरा गुलाब की जड़ से अटका रहता है कि वसन्त ऋतु में पुनः इन डालों में वेही फूल होंगे (जिनका रसास्वादन पहले कर चुका हूँ)।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—सरस कुसुम मँडरात अलि, न झुकि झपटि लपटात।
दरसत अति सुकुमारता, परसत मन न पत्यात ॥६५७॥

भावार्थ—रसीले फूल के इर्द-गिर्द भौंरा मँडराता तो है, परन्तु झुककर और झपटकर उससे लपटाता नहीं, क्योंकि उसमें अत्यन्त कोमलता दिखाई पड़ती है, इसलिये स्पर्श करने को मन पतियाता नहीं (भय है कि मेरे भार से यह सुकुमार पुष्प नष्ट-भ्रष्ट न हो जाय)।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—बहकि बड़ाई आपनी, कत राचति मतिभूल।
बिन मधु मधुकर के हिये, गड़ै न गुड़हर फूल ॥६५८॥

शब्दार्थ—राचति = प्रसन्न होती है। गड़ै न = चुभता नहीं, अच्छा नहीं लगता। गुड़हर = जपा पुष्प।

भावार्थ—हे मति-भूल (अज्ञान जन) झूठी प्रशंसा से बहककर अपनी बड़ाई में क्यों प्रसन्न हो रहा है। बिना मधु के, भौंरे के चित्त में, गुड़हर का फूल अच्छा नहीं लगता।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—जदपि पुराने, बक तऊ, सरवर निपट कुचाल।
नये भये तु कहा भयो, ये मनहरन मराल ॥६५९॥

भावार्थ—हे सरोवर, यह तुम्हारी निपट कुचाल है कि तुम पुराने ही साथियों पर कृपा करना चाहते हो। यद्यपि तुम्हारे ये साथी पुराने हैं तो भी वक ही तो हैं ! और हम नये हैं तो क्या हुआ, है तो आखिर मनहरने वाले हंस ! (बकुलों से हंस अधिक माननीय हैं)।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—अरे हंस या नगर में, जैयो आप बिचारि।
कागनि सों जिन प्रीति करि, कोकिल दई बिड़ारि ॥६६०॥

भावार्थ—हे हंस, इस नगर में, जिसने (नगर ने) कौवों से प्रीति करके कोकिल को भगा दिया है, विचारकर जाना।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—को कहि सकै बड़ेन सों, लखे बड़ी हू भूल।
दीने दई गुलाब कों, इन डारन ये फूल ॥६६१॥

भावार्थ—बड़ों की बड़ी भूल भी देखकर उनसे कौन कह सकता है, देखो ईश्वर ने गुलाब की इन कँटीली डालों में ये सुन्दर फूल दिये हैं (यह ईश्वर की भूल है, पर कोई ईश्वर की निंदा नहीं करता)।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—वे न यहाँ नागर बड़े, जिन आदर तो आब।
फूल्यो अनफूल्यो भयो, गँवई गाँव गुलाब ॥६६२॥

भावार्थ—वे बड़े प्रवीण मनुष्य यहाँ नहीं हैं, जिनके आदर से तेरी प्रतिष्ठा होती है। गँवई गाँव में फूला हुआ गुलाब न फूले हुए के समान ही हुआ (फूलना और न फूलना बराबर ही है)।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—कर लै सूँघि सराहि कै, रहैं सबै गहि मौन।
गंधी गंध गुलाब को, गँवई गाहक कौन ।६६३॥

शब्दार्थ—गंधी = इत्र फुलेल बेचनेवाला।

भावार्थ—हे गंधी, इस गँवई गाँव में गुलाब के इत्र का खरीदार कौन है ? (कोई नहीं है)। यहाँ तो ऐसे लोग हैं जो इत्र को हाथ में लेकर सूँघते हैं (अर्थात् यह भी नहीं जानते कि इत्र कैसे सूँघा जाता है)। सराहते हैं, और चुप होकर रह जाते हैं।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—को छूट्यो यहि जाल परि, कत कुरंग अकुलात।
ज्यों ज्यों सुरझि भज्यो चहत, त्यों त्यों उरझत जात ॥६६४॥

भावार्थ—हे हरिन ? क्यों अकुलाता है, इस जाल में पड़कर कौन छूट सका है ? तू ज्यों-ज्यों फंदों को सुलझाकर भागना चाहता है, त्यों-त्यों अधिकाधिक उलझता जाता है।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—पट पाँखे, भखु काँकरे, सदा परेई संग।
सुखी परेवा जगत में, एकै तुही बिहंग ॥६६५॥

शब्दार्थ—भखु=भोजन की सामग्री।

भावार्थ—हे परेवा पक्षी! संसार में एक तूही सुखी है, जो पंख मात्र कपड़ों, कंकड़ मात्र भोजन और सदा एक अपनी स्त्री से सन्तुष्ट रहता है (जरूरी वस्त्र, आवश्यक भोजन और प्रयोजन मात्र के लिये एक धर्मपत्नी से जो सन्तुष्ट रहता है, वही सुखी रहता है। अधिक का इच्छुक दुखी होता है)।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—स्वारथ सुकृत न स्रम वृथा, देखु बिहंग बिचारि।
बाज पराये पानि परि, तूँ पंछीहि न मारि ॥६६६॥

शब्दार्थ—स्वारथ=अपना हित। सुकृत=पुण्य। विहंग=आकाशगामी।

[विशेष]—संसार में जितना परिश्रम किया जाता है वह दो हेतु से- स्वार्थ-साधन और पुण्य-संचय। परन्तु पाला हुआ बाज जो शिकार करता है, उसके ये दोनों तात्पर्य नहीं सिद्ध होते। इसी पर यह उक्ति है।

भावार्थ—हे विहंग (आकाश में स्वच्छन्द विचरण करनेवाले उच्च-कोटि के जीव), तू विचारकर देख तो कि जो तू दूसरों के लिये शिकार करता है इसमें तेरा परिश्रम सब व्यर्थ ही है। न तो तेरा स्वार्थ ही सिद्ध होता है (न उस शिकार में से भरपेट खाने ही को मिलता है) और न कोई पुण्य ही होता है जिससे वह एक परमार्थ का काम समझा जाय। अतः तेरा श्रम व्यर्थ है। अतएव, हे बाज पक्षी! तू पराये हाथ में पड़कर छोटे-छोटे पंछियों को मत मारा कर। इस बुरे काम से बाज आ।

अलंकार—अन्योक्ति—(दुष्ट स्वामी के इशारे पर अनर्थकारी सेवक प्रति)।

दो०—दिन दस आदर पायकै, करिलै आपु बखान।
जौलौं काग सराधपख, तौलौं तो सनमान ॥६६७॥

शब्दार्थ—दिन दस=थोड़े दिन। बखान=बड़ाई, प्रशंसा।
सराधपख=(श्राद्धपक्ष) पितृपक्ष, कनागत पक्ष।

भावार्थ—हे कौवा! थोड़े दिनों का आदर पाकर तू अपनी बड़ाई करले। जब तक श्राद्धपक्ष है तभी तक तेरा सम्मान है।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—मरत प्यास पिंजरा परो, सुवा दिनन के फेर।
आदर दै दै बोलियत, बायस बलि की बेर ॥६६८॥

भावार्थ—समय का फेर देखो कि सुवा पिंजड़ा में पड़ा हुआ प्यासों मरता है, और बलिके समय (श्राद्धपक्ष में) कौवे को आदर पूर्वक लोग बुलाते हैं।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—जाके एकौ एकहू, जग व्यवसाय न कोय।
सो निदाघ फूलै फलै, आक डहडहो होय ॥६६९॥

शब्दार्थ—व्यवसाय=उद्योग करना (सींचना, रक्षा करना इत्यादि)। निदाघ=ग्रीष्म ऋतु। डहडहा=लहलहा, पल्लवित।

भावार्थ—जिस अकौवा (मदार) के लिये संसार में एक भी मनुष्य कोई एक भी उद्योग नहीं करता (न कोई उसे लगाता है, न सींचता है, न रक्षा का प्रबंध करता है), वही अकौवा (ईश्वर के भरोसे रह कर) अति कठिक गीष्म ऋतु में पल्लवित और पुष्पित होता है (जिसका कोई नहीं, उसकी रक्षा और उसका पालन ईश्वर अनायास करता है।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—नहिं पावस ऋतुराज यह, सुनि तरवर मति भूल।
अपत भये बिनु पाइहैं, क्यों नव दल फल फूल ॥६७०॥

शब्दार्थ—पावस = वर्षाऋतु जो समदर्शी और दानी है। अपत= (१) पत्र रहित (२) बेइज्जत।

भावार्थ—हे तरुवर, तू भूल मत कर, यह वर्षा नहीं है कि बिना विचारे सबको अमित दान देती है, यह ऋतुराज (वसंत) है। इसके राज में बिना पत्ररहित (अप्रतिष्ठित) हुए नवीन दल, फल और फूल कैसे पाओगे ?

[विशेष]—वर्षा में बिना पत्ते गिरे नवीन किल्ले निकलते हैं। वसंत में पहले पत्ते झड़ जाते हैं तब नवीन पत्ते निकलते हैं।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—सीतलता रु सुगंध की, महिमा घटी न मूर।
पीनसवारे जो तज्यो, सोरा जानि कपूर ॥६७१॥

शब्दार्थ—रु=(अरु)= और। मूर=मूल्य (मोल)। पीनसवारे=पीनस रोगवाला, जिसे सुगन्ध का ज्ञान ही नहीं होता।

भावार्थ—यदि पीनस रोगवाला मनुष्य कपूर को शोरा समझकर त्याग दे (निरादृत करे) तो भी कपूर की शीतलता और सुगन्ध की बड़ाई नहीं घटती, और न मोल ही घटता है।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—गहै न नेको गुन गरब, हँसै सकल संसार।
कुच उचपद लालच रहै, गरे परेहू हार ॥६७२॥

शब्दार्थ—हार = मोतियों की माला। (श्लेष से) हार = पराजय। गले पड़ना=निरादर सहकर भी किसी के यहाँ रहना।

भावार्थ—यद्यपि समस्त संसार हार हार (पराजय हुई पराजय हुई) कहकर हँसता है तो भी वह हार अपने गुन का गर्व न करके गले ही पड़कर रहता है। इसका कारण यह है कि वह कुच-समान उच्च पद (स्थान) के लालच से ऐसा करता है (उच्च पद के लालच से लोग निरादर सहकर भी रहते हैं)।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—मूड़ चढ़ाये हू रहै, परो पीठि कच भार।
रहै गरे परि राखिये, तऊ हिये पर हार ॥६७३॥

शब्दार्थ—मूँड़ चढ़ाना = बहुत आदर करना। कचभार = बालों का समूह। गले पड़ना = जबरई किसी के यहाँ रहना।

भावार्थ—बालों का समूह मूँड़ चढ़ाने पर भी पीठ ही पर पड़ा रहता है (पीछे की ओर रहता है) और हार यद्यपि गले पड़कर रहता है तो भी उसे हृदय पर ही स्थान दिया जाता है (अर्थात् अयोग्य को आदर पूर्वक रखने से भी उत्तम स्थान नहीं दिया जा सकता, और योग्य पुरुप को निरादर पूर्वक रखने पर भी उत्तम पद देना ही पड़ता है)।

अलंकार- अन्योक्ति।

दो०—जो सिरधरि महिमा मही, लहियत राजा राव।
प्रगटत जड़ता आपनी, मुकुट पहिरियत पाव ॥६७४॥

शब्दार्थ—मही = बड़ी। जड़ता = मूर्खता।

भावार्थ—जिस मुकुट को सिर पर धारण करके राजा राव लोग भारी बड़ाई पाते हैं, उसी मुकुट को पैर में पहनकर केवल अपनी मूर्खता ही प्रकट करते हो (योग्य का निरादर करने से मूर्खता ही प्रकट होती है)।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—चले जाहु ह्याँ को करत, हाथिन को व्योपार।
नहि जानत या पुर बसत, धोबी ओड़ कुम्हार ॥६७५॥

शब्दार्थ—ओड़ = बेलदार (जो गदहे पालते हैं)।

भावार्थ—हे हाथी के व्योपारी, तुम यहाँ से चले जाओ, यहाँ कोई हाथियों की खरीद-फरोख्त नहीं करता। नहीं जानते कि यहाँ सब धोबी, बेलदार और कुम्हार ही बसते है (जो गदहे रखते हैं)।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—करि फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि।
रे गंधी मति अंध तू, अतर दिखावत ताहि ॥६७६॥

शब्दार्थ—फुलेल=फूलों से सुवासित तैल। आचमन करि=पीकर। गन्धी=फुलेल वा इत्र बेचनेवाला।

भावार्थ—जो फुलेल को पीकर प्रशंसा से कहता है कि मीठा तो है (अर्थात् इतना तक नहीं जानता कि फुलेल का प्रयोग कैसे होता है। और स्वाद कैसा होता है), रे मूर्ख गन्धी, तू उसको इत्र दिखाता है? (इसकी क़द्र यह क्या जाने। जो फुलेल का प्रयोग न जाने वह इत्र की क्या क़द्र करेगा)।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—विषम वृषादित की तृषा, जियो मतीरनि सोधि।
अमित अपार अगाध जल, मारौ मूढ़ पयोधि ॥६७७॥

शब्दार्थ—विषम=अति कठिन। वृषादित=(वृष+आदित्य) ग्रीष्म ऋतु, जब सूर्य वृष राशि पर होते हैं (जेठ मास में)। मतीर=(राजपूतानी) तरबूज़। मारौ=जाने दो, त्यागो। मूढ़=अबूझ (जो किसी की भी प्यास नहीं बुझाता)।

भावार्थ—तीक्ष्ण ग्रीष्म की प्यास में तरबूजों को खोज कर उनसे अपनी प्यास बुझाओ और जीवन धारण करो, बहुत एवं अथाह जलवाले मूर्ख समुद्र को जाने दो (जल तो बहुत है, पर खारा है, पीने के अयोग्य है) अर्थात् थोड़े और उत्तम पदार्थ से काम चलाओ, बहुत और अयोग्य पदार्थ को त्याग दो।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—जम-करि मुख तरहरि परो, यह धरि हरि चित लाय।
विषय तृषा परिहरि अजौं, नरहरि के गुन गाय ॥६७८॥

शब्दार्थ—करि=हाथी। तरहरि=तलहटी, नीचे। यह धरि=ऐसा समझकर। हरि चित लाय=ईश्वर में चित्त लगाओ।

भावार्थ—यमराज-रूपी हाथी के मुख के नीचे अपने को पड़ा हुआ समझकर ईश्वर में चित्त लगा, और विषय की इच्छा छोड़ अब भी श्रीनृसिंह के गुण गा।

अलंकार—रूपक।

दो०—जगत जनायो जेहि सकल, सो हरि जान्यो नाहिं।
ज्यों आँखिन सब देखिये, आँखि न देखी जाहिं ॥६७९॥

भावार्थ - जिसने समस्त जगत को जनाया (जिसके दिये हुए ज्ञान से तूने समस्त संसार को जान लिया), उस परमेश्वर को न जाना—यह वैसी ही बात है जैसे जिन आँखों से सब कुछ देखते हैं, पर वे आँखें स्वयं नहीं देखी जा सकतीं।

अलंकार—उदाहरण।

दो०—जप माला छापा तिलक, सरै न एकौ काम।
मन काँचे नाचै वृथा, साँचे राँचै राम ॥६८०॥

शब्दार्थ—जप करने की माला, छापा और तिलक इत्यादि से एक भी काम न चलेगा। मन के कच्चे होने से यह सब नाच व्यर्थ है, क्योंकि राम तो सच्चे से अनुरक्त रहते हैं (ऊपरी दिखाऊ भेष से ईश्वर प्रसन्न नहीं होता, सच्चा अनुराग हो तो ईश्वर शीघ्र ही प्राप्त होता है)।

अलंकार—परिसंख्या और अनुप्रास।

[नोट]—इस ऊपर लिखे हुए अर्थ से माला, छापा, तिलक इत्यादि की निन्दा होती है, अतः भक्त लोग यों कहते हैं :—जपमाला, छापा और तिलक की इतनी बड़ी महिमा है कि जो कोई इनको धारण करता है उनकी तो बात ही नहीं कही जा सकती, उनका माहात्म्य यहाँ तक है कि जो कोई उनको नवता है (माला, छापा, तिलकधारियों को प्रणाम करता है) उसका भी काम बन जाता है। कच्चे मनवाले लोग यदि वृथा ही समझकर, खेल समझकर, इस नाच को नाचते हैं तो भी रामजी सचमुच उनसे अनुरक्त हो जाते हैं।

अलंकार—अत्युक्ति और अनुप्रास।

दो०—यह जग काँचो काँच सो, मैं समुझ्यों निरधार।
प्रतिबिंबित लखिये जहाँ, एकै रूप अपार ॥६८१॥

भावार्थ—मैंने निश्चय समझ लिया कि यह अस्थायी संसार काँच (आईना) के समान है। इसमें ईश्वर का एक ही रूप असंख्य रूपों में प्रतिबिंबित होता है (ईश्वर सर्वव्यापी है)।

अलंकार—उपमा और प्रमाण।

दो०—बुधि अनुमान प्रमाण स्रुति, किये नीठि ठहराय।
सूछम गति परब्रह्म की, अलख लखी नहिं जाय ॥६८२॥

शब्दार्थ—नीठि = कठिनता से।

भावार्थ—बुद्धि के अनुमान से और श्रुति के प्रमाण से जो कठिनाई से निश्चित होता है, उस परब्रह्म की गति (उसका अस्तित्व) ऐसी अलख है कि प्रत्यक्ष लखी नहीं जाती (अर्थात् ईश्वर प्रत्यक्ष का विषय नहीं है। अनुमान और शब्द-प्रमाण ही से उसका अस्तित्व जाना जाता है)।

अलंकार—काव्यलिंग।

दो०—तौलगि या मन सदन में, हरि आवैं किहि बाट।
बिकट जटे जौलौं निपट, खुलैं न कपट कपाट ॥६८३॥

शब्दार्थ—जटे = जड़े हुए, बन्द। निपट = अत्यन्त।

भावार्थ—तब तक इस मनरूपी घर में ईश्वर किस रास्ते से आवें, जब तक अत्यन्त दृढ़ता से बन्द किये हुए कपट के किवाड़े न खुलें।

अलंकार—रूपक।

दो०—या भव पारावार को, उलँघि पार को जाय।
तिय-छबि-छाया-ग्राहनी, गहै बीच ही आय ॥६८४॥

शब्दार्थ—पारावार = समुद्र। छायाग्राहनी = सिंहिका नाम्नी राहू की माता जो लङ्का के निकट समुद्र में रहती थी और जिसने हनुमानजी को लङ्का जाते समय पकड़ने का उद्योग किया था (*निसिचरि एक सिंधु महँ रहई। करि माया नभ के खग गहई*—तुलसी)।

भावार्थ—इस संसाररूपी समुद्र को उल्लंघन करके कौन पार जा

सकता है, क्योंकि स्त्रियों की छविरूपी सिंहिका बीच ही में आकर पकड़ती है। (इक कंचन अरु कामिनी, दुर्गम घाटी दोय—कबीर)।

अलंकार—रूपक।

दो०—भजन कह्यौ तासों भज्यो, भज्यो न एकौ बार।
दूर भजन जासों कह्यौ, सो तूँ भज्यो गँवार ॥६८५॥

शब्दार्थ—भजना = भजन करना। भजना = भागना।

भावार्थ—जिसका भजन करने को कहा था उससे तो भागा, उसका भजन एकबार भी न किया और जिससे भागने को कहा था उसीसे अनुरक्त हुआ, इससे जान पड़ा कि तू गँवार है।

अलंकार—यमक।

दो०—पतवारी माला पकरि, और न कछू उपाव।
तरि संसार-पयोधि को, हरि नामैं करि नाव ॥६८६॥

शब्दार्थ—पतवारी = नाव का करिया (कर्ण) जिसके बल पर नाव चलती वा इधर-उधर घूमती है।

भावार्थ—दूसरा कोई उपाय नहीं है, मालारूपी करिया को पकड़कर, हरिनाम को नौका बनाकर संसाररूपी समुद्र को तरजा।

अलंकार—रूपक।

दो०—यहि बिरिया नहिं और की, तू करिया वह सोधि।
पाहननाव चढ़ाय जिन, कीने पार पयोधि ॥६८७॥

शब्दार्थ—बिरिया = वेला, समय। करिया = कर्णधार, मल्लाह। पाहन = पत्थर।

भावार्थ—यह वेला अन्य उपाय की नहीं है (कलियुग में अन्य उपाय निष्फल हैं)। हे मनुष्य, तू उसी मल्लाह को खोज, जिसने पत्थर की नाव पर चढ़ाकर बहुतों को समुद्र के पार कर दिया था (श्रीरामजी ने पत्थरों के पुलपर से बन्दरों की सेना उतारी थी)।

अलंकार—पर्यायोक्ति।

दो०—दूरि भजत प्रभु पीठि दै, गुन विस्तारन-काल।
प्रगटत निर्गुन निकट ही, चंग रंग गोपाल ॥६८८॥

शब्दार्थ—गुन=(१) गुण (२) डोरी। चंग=पतंग। रंग=सम।

[विशेष]—गुन अर्थात् डोरी बढ़ाने से पतंग दूर जाती है, डोरी समेटने से निकट आती है। यही हाल ईश्वर का है। अपना गुण विस्तारने से (कि हम कुलीन हैं, विद्वान् हैं इत्यादि) ईश्वर दूर भागता है और गुणहीन होने से (ऐसी भावना रखने से कि मुझमें कोई गुण नहीं है केवल उसीकी दया का आधार है) ईश्वर शीघ्र दयालु होता है।

भावार्थ—गोपाल (ईश्वर) चंग के समान हैं। गुण विस्तारने से वह प्रभु दूर भागता है—जैसे डोरी (गुण) बढ़ाने से पतंग दूर, अति दूर, होती जाती है, और गुणहीन होने की भावना से निकट ही आ जाता है—जैसे (गुन) डोरी समेटने से पतंग निकट आती है।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट उपमा।

दो०—जात जात वित होत है, ज्यों जिय में संतोष।
होत होत त्यों होय तौ, होय घरी में मोष ॥६८९॥

शब्दार्थ—वित=धन। मोष=मोक्ष। घरी में=थोड़े काल में।

भावार्थ—धन के जाते-जाते (नष्ट होने से) जिस प्रकार धीरे-धीरे संतोप ही धारण करना पड़ता है, वैसे ही यदि होते-होते (बढ़ते समय भी) संतोप हो, तो थोड़े ही समय में मोक्ष प्राप्त हो जाय। (तात्पर्य यह कि जैसे धन नष्ट होने पर लोग यह कहते हैं, कि क्या करें भाई, हमारे नसीब में बदा ही न था, अत: चला गया, इसी प्रकार यदि धन बढ़ते समय यह संतोष रखें कि भाई जितना नसीब में होगा मिल ही जायगा, व्यर्थ पापाचरण क्यों करें—अनेक प्रकार की बेइमानी करके धन क्यों बढ़ावें, तो शीघ्र ही मोक्ष हो जाय।

अलंकार—संभावना।

दो०—ब्रजवासिन को उचित धन, जो घनरुचि तन कोय।
सु चित न आयो सुचितई, कहौ कहाँ ते होय ॥६९०॥

शब्दार्थ—घनरुचि = बादल के समान श्याम। जो घनरुचि तन कोय = जो कोई बादल के समान श्याम तनवाला है। सुचितई = स्थिरता, शान्ति।

भावार्थ—जो ब्रजवासियों का उचित धन है, जिसका शरीर बादल की प्रभावाला है (अर्थात् कृष्ण) वह जब चित्त में नहीं आया, तब शांति कैसे प्राप्त हो सकती है।

अलंकार—पर्यायोक्ति और यमक।

दो०—नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि।
तज्यो मनो तारन-बिरद, बारक बारन तारि ॥६९१॥

शब्दार्थ—अनाकनी देना = सुनकर भी अनसुनी करना। फीकी परी = अरुचिकर हुई। गुहारि = पुकार। बारन = हाथी।

भावार्थ—हे ईश्वर, आपने तो अच्छी अनाकनी दी (सुनी अनसुनी सी कर दी), मालूम होता है मानो एकबार हाथी को तार कर अब अन्य जनों को तारने का बिरद ही छोड़ दिया है। (आगे आर्त्त भक्तों की) पुकार (आपको स्वादिष्ट मालूम होती थी) अब फीकी-सी हो गई है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

दो०—दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साईं नहिं भूलि।
दई दई क्यों करत है, दई दई सु कबूल ॥६९२॥

शब्दार्थ—दुःख के समय लम्बी साँस न ले और सुख के समय स्वामी (ईश्वर) को मत भूल। दैया-दैया क्यों करता है, ईश्वर ने जो कुछ दिया है (दुःख वा सुख) उसे स्वीकार कर, अर्थात् मालिक की मर्जी पर संतुष्ट रह।

अलंकार—यमक।

दो०—कौन भाँति रहि है बिरद, अब देखिबी मुरारि।
बीधे मों सो आन कै, गीधे गीधहि तारि ॥६९३॥

शब्दार्थ—बिरद=बड़ाई। बीधे=उलझे हो, फँसे हो। आनकै= आकर। गीधे=परक गये हो (तारना आसान समझते हो)। गीध =जटायु।

भावार्थ—हे मुरारि, अब मैं देखूँगा कि किस तरह से आपकी बड़ाई रहती है! जटायु को तारकर तुम परक गये हो (जानते हो कि तारना आसान है), अब मुझसे आकर फँसे हो, मुझको तारना बहुत कठिन काम है।

[नोट]—"देखिबी" व्रजभाषाका नहीं, वरन् ठेठ बुन्देलखंडी प्रयोग है। इसी प्रकार दोहा नम्बर २० में "लखिबी" और दोहा नंबर २६६ में "गनिबी" इत्यादि के प्रयोग से अनुमान किया है कि बिहारी बुन्देलखंड के निवासी थे। 'बीधे' और 'गीधे' भी बुन्देलखंडी प्रयोग हैं।

अलंकार—अनुप्रास।

दो०—बंधु भये का दीन के, को तारयो रघुराय।
तूठे तूठे फिरत हौ, झूठे बिरद बुलाय।६९४॥

शब्दार्थ—तूठे=तुष्ट, राजी, प्रसन्न। बिरद=नेकनामी, बड़ाई।

भावार्थ—आप किस दीन के बंधु हैं? आपने किसको तारा है? हे रघुराज (रामजी), मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि झूठी ही बड़ाई लोगों से कहलवा-कहलवा कर आप इतने प्रसन्न हुए फिर रहे हो (तात्पर्य यह कि जब मेरे बंधु बनो और मुझे तारो तब मैं जानूँ)।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति। 'तूठे-तूठे' से वीप्सा।

दो०—थोरे ई गुन रीझते, बिसराई वह बानि।
तुम हू कान्ह मनो भये, आज कालि के दानि॥६९५॥

भावार्थ—हे कृष्ण, पहले तो तुम थोड़े ही गुण से रीझते थे, सो वह आदत आपने भुला दी। मानो आप भी अब आज-कल के दाता

हो गये हो (जो पहले तो कठिनता से रीझते हैं और यदि रीझे भी तो वाह वाह में वह रीझ हजम कर जाते हैं और यदि कुछ देना ही पड़े तो वर्षों टालटूल करते हैं।)

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

दो०—कब को टेरत दीन ह्वै, होत न स्याम सहाय।
तुम हू लागी जगत-गुरु, जगनायक जग बाय ॥६९६॥

भावार्थ—मैं कब से दीन होकर पुकार रहा हूँ, और हे श्याम! तुम सहायता नहीं करते। हे जगत के गुरु? हे संसार के मालिक! क्या आपको भी संसार की हवा लग गई?

अलंकार—लोकोक्ति और गम्योत्प्रेक्षा।

दो०—प्रगट भये द्विजराज-कुल सुबस बसे ब्रज आय।
मेरे हरो कलेस सब, केसो केसोराय ॥६९७॥

शब्दार्थ—द्विजराज=(१) चंद्रमा (२) ब्राह्मण। सुबस=अपनी इच्छा से, खुशी से (किसी के जोर-जुल्म से नहीं)। केसो=(केशव) ग्रन्थकर्ता श्रीबिहारीलालजी के पूज्य पिता का नाम। केसोराय=श्रीकृष्णजी।

[विशेष]—बिहारीजी कृष्णस्वरूप मानकर अपने पिता से अथवा पिता स्वरूप मानकर श्रीकृष्ण से निज क्लेश निवारणार्थ विनती करते हैं।

भावार्थ—(कृष्णपक्ष में) हे केशवराय (कृष्ण) आप चन्द्रवंश में प्रकट हुए (जन्म लिया) और स्वेच्छा से ब्रज में आकर बसे। मैं भी ब्रजवासी हूँ। अतः हे कृष्ण, मेरे सब क्लेश हरो। (पितापक्ष में) हे कृष्णरूप केशव (पिताजी), आप कृष्ण की तरह द्विजराज कुल (ब्राह्मण वंश) में पैदा हुए और स्वेच्छा से ब्रज में आ बसे थे। ऐसे कृष्णरूप मेरे पिता (केशव) मेरे सब क्लेश हरो।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट रूपक।

दो०—घर घर डोलत दीन ह्वै, जन जन जाँचत जाय।
दिये लोभ-चसमा चखनि, लघु हू बड़ो लखाय ॥६९८॥

भावार्थ—लोभी आदमी दीन बना हुआ द्वार-द्वार फिरता है और प्रत्येक जन से याचना करता है। इसका कारण यह है कि वह लोभ-रूपी चश्मा आँखों पर लगाये रहता है, अतः उसे छोटा मनुष्य भी बड़ा दिखाई देता है।

अलंकार—रूपक।

दो०—कीजै चित सोई तरौं, जिहि पतितन के साथ।
मेरे गुन अवगुन-गनन, गनौ न गोपीनाथ ॥६९९॥

भावार्थ—हे गोपीनाथ! मेरे गुणों और अवगुणों के समूहों को न गिनो, अपने चित्त में वही कृपा धारण कीजिये (जो पतितों को तारते वक्त धारण करते हो), जिससे मैं भी अन्य पतितों के साथ तर जाऊँ।

अलंकार—काव्यलिंग।

दो०—जो अनेक पतितन दियो, मोहूँ दीजै मोष।
तो बाँधौ अपने गुनन, जो बाँधे ही तोष ॥७००॥

शब्दार्थ—गुण=(१) गुणानुवाद (२) रस्सी।

भावार्थ—यदि आपने अनेक पापियों को दी हो, तो मुझे भी मोक्ष दीजिये, (क्योंकि मैं भी पापी हूँ)। और यदि बाँधने में ही आपको संतोष है, तो अपने गुणों से बाँधिये।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट आक्षेप।

दो०—कोऊ कोरिक संग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा, विपति-बिदारनहार ॥७०१॥

भावार्थ—चाहे कोई करोड़ों की संपत्ति संग्रह करे, चाहे लाखों वा हजारों की। मेरी संपत्ति तो श्रीकृष्ण ही हैं, जो सदा सबकी विपत्ति नाश किया करते हैं।

अलंकार—हेतु (द्वितीय)।

दो०—ज्यौं ह्वै हौं त्यौं होउँगो, हौं हरि अपनी चाल।
हठ न करौ अति कठिन है, मो तारिबो गोपाल ॥७०२॥

भावार्थ—हे हरि ! मैं अपनी करनी से जैसा हूँगा वैसा ही हूँगा (कोई भी कर्म के फल को अदल-बदल नहीं सकता)। अतः हे गोपाल, आप हठ न करें, मुझको तारना बड़ा कठिन काम है।

अलंकार—सम (दूसरा)—(जैसा कर्म वैसा फल)।

दो०—करौ कुवत जग कुटिलता, तजौं न दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल चित, बसत त्रिभङ्गी लाल ॥७०३॥

भावार्थ—हे दीनदयाल ! संसार मेरी निंदा (कुवत = कुवार्ता) किया करे (पर मुझे कुछ परवाह नहीं) मैं तो कुटिलता न छोड़ूँगा, क्योंकि तुम हो त्रिभंगी लाल, तुमको सीधे चित्त में बसने में दुःख होगा (टेढ़ी वस्तु के लिये टेढ़ा ही स्थान चाहिये)।

अलंकार—सम (प्रथम)।

दो०—मोहिं तुम्हैं बाढ़ी बहस, को जीतै जदुराज।
अपने अपने बिरद की, दुहुन निबाहन लाज ॥७०४॥

भावार्थ—हे यदुराज ! मुझसे और आपसे तो अब विवाद बढ़ हो गया है, अब देखना है कि कौन जीतता है। अपने-अपने विरद के निर्वाह की लज्जा दोनों को चाहिये—(देखना है कि मैं पाप करने में बढ़ जाता हूँ, या आप पापियों को तारने में)।

अलंकार—सम।

दो०—निज करनी सकुचौंहि कत, सकुचावत यहि चाल।
मोहूँ से अति बिमुख त्यौं, सनमुख रहि गोपाल ॥७०५॥

शब्दार्थ—हि = हृदय में। त्यौं = तरफ, ओर।

भावार्थ—हे गोपाल, अपनी करनी से तो मैं अपने हृदय में सकुचता ही था; तिसपर आप अपनी इस चाल से मुझे और अधिक क्यों लजाते हैं कि मुझ सरीखे अति विमुख की ओर भी आप सम्मुख रहते हैं।

अलंकार—विषम।

दो०—तौ अनेक अवगुन भरि, चाहै याहि बलाय ।
जो पति सम्पति हू बिना, जदुपति राखे जाय ॥७०६॥

भावार्थ—जो बिना सम्पत्ति के ही श्रीकृष्ण मेरी यथार्थ प्रतिष्ठा रखें, तो अनेक अवगुणों से भरी सम्पत्ति को मेरी बलाय चाहे ।

अलंकार—संभावना ।

दो०—हरि कीजत तुमसो यहै, बिनती बार हजार ।
जेहि तेहि भाँति डरो रहौं, परो रहौं दरबार ॥७०७॥

भावार्थ—हे हरि ! आपसे हजार बार मेरी यही बिनती है कि जिस तरह मुमकिन हो मुझे अपने दरवाजे पर पड़ा रहने दीजिये ।

अलंकार—लोकोक्ति ।

दो०—तौ बलियै भलियै बनी, नागर नन्दकिशोर ।
जो तुम नीके कै लखौ, मो करनी की ओर ॥७०८॥

शब्दार्थ—बलियै = बलिजाऊँ । भलियै = भली ही ।

भावार्थ—हे चतुर नन्दकिशोर ! जो तुम मेरी करनी की ओर अच्छी तरह से (जाँच और न्याय की दृष्टि से) देखोगे, तो बलि-जाऊँ, मेरी तो भली बनेगी—अर्थात् न बनेगी ।

अलंकार—वक्रोक्ति ।

(दूसरा अर्थ)

हे चतुर नंदकिशोर ! यदि आप मेरी करनी की ओर (मेरे पापों की ओर) नीकी तरह से (कृपादृष्टि से) देखो तो बलिहारी जाऊँ, मेरी तो भली ही बन जायगी (अर्थात् तर जाऊँगा, क्योंकि आपकी नीकी नजर से सब ही पाप छार हो जायँगे) ॥

अलंकार—सम ।

दो०—समै पलटि पलटै प्रकृति, को न तजै निज चाल ।
भो अकरुण करुनाकरौ, यहि कुपूत कलिकाल ॥७०९॥

शब्दार्थ—अकरुण=दयारहित। करुणाकर=ईश्वर। कुपूत=(कु+पूत) अपवित्र, पापी।

भावार्थ—समय पलटने से प्रकृति भी पलट जाती है, और कौन अपनी चाल नहीं त्याग देता! देखिये, इस पापमय कलिकाल में करुणामय ईश्वर भी करुणारहित हो गये हैं।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास।

दो०—अपने अपने मत लगे, बाद मचावत सोर।
ज्यों त्यों सबही सेइबो, एकै नन्दकिशोर ॥७१०॥

भावार्थ—अपने-अपने मत के समर्थन के हेतु समस्त मतवादी लोग व्यर्थ वादविवाद करते हैं। सत्य तो यह है कि सब लोग भिन्न-भिन्न विधान से एक नंदकिशोर (ईश्वर) की ही सेवा भक्ति करते हैं।

अलंकार—आत्मतुष्टि प्रमाण।

दो०—अरुन सरोरुह कर चरन, दृग खंजन मुख चन्द।
समय आय सुन्दरि सरद, काहि न करति आनंद ॥७११॥
ओछे बड़े न ह्वै सकैं, लगि सतरौंहैं बैन।
दीरघ होंहि न नेकहू, फारि निहारे नैन ॥७१२॥
औरै गति औरै बचन, भयो बदन रँग और।
द्यौसक[1] ते पिय चित चढ़ी, कहैं चढ़ौंहैं त्यौर ॥७१३॥
गाढ़े टाढ़े कुचनि ठिलि, को पिय हिय ठहराय।
उकसौंहैं ही तो हिये, दई सबै उकसाय ॥७१४॥
गुरुजन दूजे ब्याह को, नित उठि रहत रिसाय।
पति की पति राखति बधू, आपुन बाँझ कहाय ॥७१५॥
घर घर हिन्दुनि तुरकिनी, देत असीस सराहि।
पतिन राखि चादर चुरी, तैं राखी जयसाहि ॥७१६॥

१ एक दो दिन से।

जनम जलधि पानिप[1] बिमल, भो जग आघु[2] अपार ।
रहै गुनी[3] ह्वै गर परयो, भलो न मुकुता हार ॥७१७॥
सो०—पावस कठिन जु पीर, अबला क्योंकरि सहिसकैं ।
तेऊ धरत न धीर, रक्तबीज सम अवतरे ॥७१८॥
दो०—प्यासे दुपहर जेठ के, थके सबै जल सोधि ।
मरुधर पाय मतीर हू, मारू कहत पयोधि ॥७१९॥
संवत ग्रह ससि जलधि छिति*छठ तिथि बासरचंद ।
चैत्र मास पख कृष्ण में, पूरन आनँदकंद ॥७२०॥
सतसैया के दोहरा, अरु नावक[4] के तीर ।
देखत तो छोटे लगैं, घाव करैं गंभीर ॥७२१॥
समै समै सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोय ।
मन की रुची जेती जितै, तित तेती रुचि होय ॥७२२॥
सामा[5] सैन[6] शयान[7] सुख, सबै साह[8] के साथ ।
बाहुबली जयसाह जू, फते तिहारे हाथ ॥७२३॥
हुकुम पाय जयसाह को, हरि-राधिका-प्रसाद ।
करी बिहारी सतसई, भरी अनेक सवाद ॥७२४॥
कालि दसहरा बीति है, धरि मूरख जिय लाज ।
दुरयौ फिरत कत द्रुमन में, नीलकंठ बिन काज ॥७२५॥

* इति *

---

१ शोभा, आबरू । २ आदर । ३ गुणवान, डोरायुक्त । ४ देखो दोहा नं० ८० । ५ सामान । ६ सेना । ७ युद्ध कौशल, चतुराई । ८ दिल्लीपति बादशाह ।
* १७१९ ।

दोहों के नम्बर की सूचनिका

	दो० नं०
अ	
अँगुरिन उचि भरु	३१८
अंग अंग छवि की	१५४
अंग अंग नग	१४७
अंग अंग प्रतिबिम्ब	१५३
अन्त मरैंगे	५६३
अजौं तर्‌यौना	१२३
अजौं न आये	४८१
अति अगाध अति	६४५
अधर धरत	२३
अनत बसे निसि	४०१
अनरस हू रस	४४६
अनियारे दीरघ	८१
अनी बड़ी उमड़ी	६२६
अपनी गरजनि	२१०
अपने तन के	२६
अपने अपने मत	७१०
अपने कर गुहि	३६५
अब तजि नाँव	५७५
अर तें टरत न	५२
अरी खरी सटपट	३१४
अरी परे न करे	४६१
अरुन वरन तरुनी	१५८
अरुन सरोरुह कर	७११
अरे परेखो को	६५०
अरे हंस या नगर	६६०
अलि इन लोयन	२२१
अहे कहै न कहा	२६२
अहे दहेंड़ी जिनि	१०८
आ	
आज कछू और	४१५
आठो जाम अछेह	५०१
आड़े दै आले	४२७
आपु दयो मन	४१४
आये आपु भली	४४६
आयो मीत विदेश	५४१
आवत जात न जानिये	५८३
इ	
इक भीजे चहले	२८
इत आवति चलि	४६६
इन दुखियाँ अँखियान	२४८
इहि द्वैही मोती	८१

	दो० नं०
इहि आशा अटक्यो	६५६
उ	
उठि ठकठक एतो	५७७
उतते इत इततैं उतहिं	१६८
उनको हित उनही	२१४
उन हरकी हँसी	१८१
उयो सरद राका	३११
उर उरभयो चित	२०५
उर मानिक की	१३०
उर लीने अति	२०७
ऊ	
ऊँचे चितै सराहि	६१३
ए	
ए काँटे मो पाय	२३५
ए री या तेरी दई	४३८
ऐ	
ऐंचत सी चितवनि	७१
ओ	
ओंठ उचै हाँसी	६५२
ओछे बड़े न ह्वै	७१२
औ	
औंधाई सीसी	५१९
औरि सबै हरखी	६१५
औरै ओप कनीनिकनि	३८०
औरै गति औरै वचन	५१३
औरै भाँति भये	५१२

	दो० नं०
क	
कंचन तन धन	१४६
कंज नयनि मंजन	६४
कच समेटि	३५
कत कहियत दुख	४०७
कत वेकाज	३६७
कत लपटैयत	४१०
कत सकुचत	४०३
कनक कनक तें	६१५
कन देवो सौंप्यो	१६१
कपट सतर	४२०
कब की ध्यान	२६६
कब को टेरत	६६६
कबौं न ओछे	६२४
कर उठाय	३४७
कर के मीड़े	५०५
करत जात जेती	२१५
करत मलिन	१५२
कर मुँदरी की	३५३
कर लै चूमि	५४२
कर लै सूँघि	६६३
करि फुलेल को	६७६
करि राख्यो निरधार	४८८
करी विरह ऐसी	५१६
करे चाह सों	७९
करौ कुवत	७०३

	दो० नं०
कहत नटत	६२
कहत सबै कवि	२४६
कहत सबै बेंदी	४१
कहति न देवर	५६५
कहलाने एकत	५६५
कहा कहौं बाकी	२७७
कहा कुमुद	१४५
कहा-भयो जो	५०९
कहा लडैते दग	२८०
कहा लेहुगे खेल	४४३
कहि पठई जिय	५४८
कहि लहि कौन	१४१
कहे जु वचन	४६४
कहैं इहै सब	६३४
कागद पर लिखत	५३८
कारे बरन	६१४
कालबूत दूती	३०७
कालि दसहरा बीति है	७२५
किती न गोकुल	२२
किय हायल चित	१११
कियो जु चिबुक	२८१
कियो सबै जग	५८१
कियो सयानी सखिन	५४५
कीजै चित सोई	६६९
कीने हू कोटिक	१७७
कुच-गिरि चढ़ि	९४

	दो० नं०
कुञ्ज भवन	३७४
कुटिल अलक	३७
कुढँग कोप तजि	५७१
केसर केसरि-कुसुम	३८८
केसरि कै सरि	१३६
कैसे छोटे नरन सौं	६२४
कोऊ कोरिक	७०१
को कहि सकै	६६१
को छूट्यो इहि	६६४
को जानै ह्वै है कहा	१८८
कोरि जतन कीजै	२८४
कोरि जतन कोऊ करौ, परै	६२५
,, ,, ,, तन की	३३०
कौड़ा आँसू बूँद	५२२
कौन भाँति रहिहैं	६६३
कौन सुनै कासौं	५११
कौहर सी ऍडीन	११०
क्यौं बसिये क्यौं	२१९
क्यौं हू सह भात	४४७

ख

खरी पातरी कान	४३५
खरी भीर हू भेदि	६०
खरी लसति गोरी	१४९
खरे अदब इठलाहटी	४५४
खल बढ़ई बल	२१६
खलित वचन	३६०

	दो० नं०
खिंचे मान अपराध	४६१
खेलन सिखये	५१
खौरि पनच	४९

ग

गड़ी कुटुम की	६९
गड़े बड़े छबि	१००
गदराने तन	५९८
गनती गनिबे	५३१
गली अँधेरी	३२७
गहकि गाँस औरै	२८४
गहिली गरब न	४४२
गहै न नेको गुन	६७२
गह्यौ अबोलो बोलि	४३३
गाढ़े ठाढ़े कुचन	७१४
गिरि ते ऊँचे	६१८
गिरै कंप कछु	५५८
गुड़ी उड़ी लखि	२१२
गुनी गुनी सब	६३६
गुरुजन दूजे	७१५
गोधन तू हरष्यो	१७
गोप अथाइनि ते	३०८
गोपिन के अँसुवन	५२६
गोपिन सँग	१९
गोरी गदकारी	५९७
गोरी छिगुनी	१२५

घ

	दो० नं०
घन घेरो छुटि	५७९
घर घर डोलत	६९८
घर घर हिंदुनि	७१६
घाम घरीक	३६३

च

चकी जकी सी	२०१
चख रुचि चूरन	२३०
चटक न छाँड़त	६१९
चमक तमक	३३८
चमचमात चंचल	८२
चलत घैरु घर	१९३
चलत चलत लौं	४८०
चलत देत आभार	४७४
चलत पाय निगुनी	६२७
चलन न पावत	१०४
चलित ललित	३६४
चले जाहु ह्याँ	६७५
चलौ चले छुटि	५४४
चाले की बातैं	३१९
चाह भरी अति	४८३
चितई ललचौंहैं	१७६
चित तरसत	२२३
चित दै चितै	२९५
चित पितुमारक	३४९
चितवति जित	६०५
चितवनि भोरे	२५५

	दो० नं०
चीतवनि भौंह	४७
चित मित वचत	२३३
चितवनि रूखे	४२३
चिर जीवो जोरी	८
चिलक चिकनई	२५१
चुनरी स्याम	२५७
चुवत सेद मकरन्द	५६२

छ

छकि रसाल	५६०
छतौ नेह कागद	५०४
छप्यो छबीलो	११९
छप्यो छपाकर	३१३
छला छबीले	१७६
छला परोसिन	४७५
छाले परिबे के	१५६
छिन छिन में	२५६
छिनक उघारति	३७६
छिनकु चलति	५६९
छिनकु छबीले	२६५
छिरके नाह	३६७
छुटत मुठी	५५५
छुटत न पैयत	२१७
छुटी न सिसुता	२४
छुटे छुटावे जगत	३६
छुटै न लाज	७८
छुै छिगुनी	२३६

	दो० नं०

ज

जंघ जुगल	१०७
जगत जनायो	४७०
जटित नील मनि	८५
जदपि चवाइन	८४
जदपि तेज	५५०
जदपि नाहिं	३३६
जदपि पुराने	६५६
जदपि लौंग	८७
जदपि सुन्दर	२२५
जनम जलधि	७१९
जपमाला छापा	६८०
जब जब वै	५१०
जम-करि मुँह	६७८
जरी कोर गोरे	१३१
जस अपजस	२३७
जहाँ जहाँ ठाढ़ो	७
जाके एकौ एकहू	६६६
जात जात वित	६८९
जाति मरी बिछु	५३२
जात सयान	२३६
जालरन्ध्र मग	२२४
जिन दिन देखे	६५५
जिहि निदाघ	५२३
जिहि भामिनि	४२२
जुज्यों उझकि	५५६

	दो० नं०
जुरे दुहुनि के	६६
जुवति जोन्ह	३१५
जे तब होत	२०८
जेती संपति	६२२
जो अनेक पतितन	७००
जोग जुगुति	५४
जो चाहौ चटक	६४४
जे तिय तुव	४१७
जो न जुगुति	१८६
जोन्ह नहीं यह	५८६
जो वाके तन	२७३
जो सिर धरि	६७४
जौ लौं लखौ न	२३१
ज्यौं कर त्यौं	६०७
ज्यौं ज्यौं आवति	३१६
ज्यौं ज्यौं जोबन	१०५
ज्यौं ज्यौं पट	५५६
ज्यौं ज्यौं पावक	५५२
ज्यौं ज्यौं बढ़ति	५८०
ज्यौं ह्वैहौं त्यौं	७०२
झ	
झटकि चढ़ति	१६५
झीने पट में	१३७
झुकि झुकि झपकौंहै	३१७
झूठ जानि न	५८

	दो० नं०
ट	
टटकी धोई	६४७
टुनहाई सब	२६९
ठ	
ठाढ़ी मन्दिर	२१८
ड	
डगकु डगति-सी	२५०
डर न टरै	१६४
डारे ठोढ़ी गाढ़	६६
डिगति पानि	१३
डीठि बरत बाँधी	६५
ढ	
ढरे ढार त्यौंही	२६०
ढीठि परोसिनि	४७३
ढीठौ दै बोलति	१७४
ढोरी लाई	२६४
त	
तंत्री नाद	६१७
तच्यो आँच	५२४
तजत अठान	१८९
तजि तीरथ हरि	४
तजी संक	१६६
तनक झूँठ निसबादली	३३१
तन भूषन अंजन	१२८
तपन तेज	५८५
तर झुरसी	५४१

	दो० नं०
तरिवन कनक	१२६
तरुन कोकनद	३८७
ताहि देखि मन	२८
तिय कित कमनैति	७६
तिय तरसौंहैं	५६७
तिय तिथि तरनि	२५
तिय निज हिय	६१०
तिय मुख लखि	४६
तीज परब सौतिन	१३३
तुम सौतिन	४६७
तुरत सुरत	३०३
तुहू कहै हौ	४५६
तू मति मानै	२८६
तू मोहन मन	२८१
तू रहि सखि	२८६
तेह तरेरे त्यौर	३८५
तो तन अवधि	१६६
तो पर वारौं	२५९
तो रस राच्यो	४४०
तो लखि मो मन	६७
तोही निरमोही	२४३
तौ अनेक	७०६
तौ बलियै	७०८
तौ लगि या	६८३
त्यौं त्यौं प्यासे	१६२
त्रिवली नाभि	१६७

	दो० नं०
थ	
थाकी जतन अनेक	१८
थोरेई गुन	६६५
द	
दच्छिन पिय	४६
दहैं निगोड़े नैन	४५८
दिन दस आदर	६६७
दियो अरघ	२१०
दियो जु पिय	५५४
दियो सु सीस	२७६
दिसि दिसि कुसुमिति	५२८
दीठि न परत	१५१
दीप उजेरे हू	३३३
दीरघ साँस	६६२
दुखिहाइनि	२४४
दुचितै चित	२२६
दुरत न कुच	११४
दुरे न निघए	४२१
दुसह दुराज	६३२
दुसह बिरह	४८५
दुसह सौति	१६४
दूरि भजत	६८८
दूर खरे समीप	७७
दृग उरझत	१६२
दृग थिरकौं हैं	६०६
दृगनि लगत	

	दो० नं०
दृग मींचत	३५१
देखत कछु	२७०
देखत धूर	२६४
देखत सोनजुही	१३१
देखौ जागि	२१२
देख्यौ अनदेख्यौ	१६८
देवर फूल हने	६०६
देह दुलहिया	३०
देह लग्यौ ढिग	२२०
दोऊ अधिकाईं	४३१
दोऊ चाह भरे	३२५
दोऊ चोरमिही	३७०
द्वैज सुधादीधित	५८८

ध

धनि यह द्वैज	५८८
धुरवा होंहिं न	५७२
ध्यान आनि ढिग	४६०

न

नईं लगनि	१६७
न करु न डरु	४०६
नख-रेखा सौहैं	४०८
नख सिख रूप	२३८
न जक	१५७
नटि न	३७५
नभ	४६२
नये	५०३

	दो० नं०
न ये त्रिससिये	६२१
नर की अरु	६४२
नव नागरि तन	३१
नहिं अन्हाय	६००
नहिं नचाय	२५३
नहिं पराग	२९८
नहिं पावस	६७०
नहिं हरि लौं	३२२
नाक मोरि सीबी	३००
नाक मोरि नाहिं	३४६
नागरि विविध	२६६
नाचि अचानक ही	११
नाम सुनत ही	३०२
नावक सरसे	८०
नासा मोरि नचाय	४८
नाह गरज	६३७
नाहिन ये पावक	५६४
निज करनी	७०५
नित प्रति एकत	९
नित संसौ हंसौ	५१५
निपट लजीली	२६१
निरखि नवोढ़ा	१७३
निरदय नेह	२१८
निसि अँधेरी	२
नीकी दई	८१
नीको	३६

	दो० नं०
नीच हिये	६२३
नीची यै नीची	७५
नीठि नीठि उठि	३७२
नेकु उतै उठि	३५७
नेकु न जानी	२७८
नेकु न झुरसी	५१३
नेकु हँसौंही	१०३
नेकौ उहि न	३०३
नेह न नैनन	१७८
नैन तुरङ्गम	७४
नैन लगे तिहिं	२२७
नैना नेकु न	२४०
न्हाय पहिरि	६०४

प

	दो० नं०
पग पग मग	११३
पचरंग नग	१३४
पट के ढिग	३६०
पट पाँखे	६६५
पट सों पोंछि	४१६
पतवारी	६८६
पति ऋतु	४२८
पति रति की	२३७
पत्रा ही तिथि	१०२
परतिय दोष	६३६
परयो जोर	३४०
पल न चलै	२६९
पलनि प्रगटि	४८७
पलनि पीक	३८३
पल सोँहैं पगि	४११
पहिरत ही गोरे	१४४
पहुला हार हिए लसै	५६६
पहुँचति डटि	६८
पाइ तरुनि कुच	१२९
पाय महावर	१०६
पायल पाय लगी	४३
पारयो सोर	६११
पावक झरतें	५७०
पावक सो नैनन	३१८
पावस कठिन	७१८
पावस निसि	५६८
पिय के ध्यान गही	२०२
पिय तिय सों	९९
पिय प्राननि की	४९६
पिय बिछुरन को	५३७
पिय मन रुचि	२६७
पीठि दिये ही	५५३
पूँछे क्यों रूखी	२८५
पूस मास सुनि	४७७
प्यासे दुपहर	७१९
प्रगट भये	६६७
प्रजरयो आगि	४८६
प्रतिबिंबित	६३१

	दो० नं०
प्रलय करन	१२
प्रान प्रिया हिय	४०४
प्रीतम दृग	३५२
प्रेम अडोल	२२२
फ	
फिरत जु अटकत	४१६
फिरि घर को	५६२
फिरि फिरि चित	१३८
फिरि फिरि दौरत	५६
फिरि फिरि बिलखी	६४१
फिरि फिरि बूझति	२४२
फिरि सुधि दै	५७८
फूली फाली फूल	३१०
फूले फरकत	८३
फेरु कछुक करि	१८२
ब	
बंधु भये का	६६४
बड़े कहावत	२८२
बड़े न हूजै	६३५
बढ़त बढ़त	६४३
बढ़ति निकसि	३६२
बतरस लालच	३५६
बन तन को	२३२
बन बाटनि	५२७
त सर	५५
नी ह	३६६

	दो० नं०
बरन बास	६१
बसै बुराई	६३३
बहकि न इहि	२७३
बहकि बड़ाई	६५८
बहके सब जिय	२४५
बहु धन लै	६१२
बाढ़त तो उर	४७२
बाम तमासो करि	३५८
बाम बाहु फरकत	५४४
बामा भामा कामिनी	५७६
बाल कहा लाली	३८६
बाल छबीली	१५०
बाल बेलि सूखी	२८७
बालम बारी सौत	४६८
बिगसत नव	५१८
बिछुरे जिये	५५१
बिथुरयो जावक	४७१
बिधि बिधि कैनि	४२९
बिनतीं रति बिपरीत की	३४१
बिरह जरी लखि	४९२
बिरह बिकल	५३९
बिरह-बिथा जल	५३५
बिरह बिपति	५०२
बिरह सुखाई	५००
बिलखी डबकौहैं	
बिलखी	

	दो० नं०
बिहँसति सकुचित	६०२
बिहँसि बुलाइ	१६९
बिषम वृषादित	६७७
बुधि अनुमान	६८२
बुरो बुराई	६५३
बेधक अनियारे	८६
बेसरि मोती दुति	८८
बेसरि मोती धन्य	९०
बेंदी भाल तमोल	१३५
बैठि रही अति	५६६
ब्रजबासिन को	६९०
भ	
भई जु तन-छवि	११५
भजन कह्यौ	६८५
भये बटाऊ	४१२
भाल लाल बेंदी दिये	४२
,, , ,, ललन	४४
भावक उभरौहों	२७
भाँवरि अनभाँवरि	६५६
भूषन पहिरि न	११६
भूषन भार	१५६
भृकुटी मटकनि	१६१
भेंटत बनत न	३२६
भो यह ऐसोई	५३०
भौंह उचै आँचरु	७०
भौंहनि त्रासति	३३२

	दो० नं०
म	
मंगल बिंदु	१२४
मकराकृति	१६
मन न धरति	२७२
मन न मनावत	४५२
मन मोहन सों	३०५
मरकत भाजन	३६४
मरत प्यास	६६८
मरन भलो बरु	५१७
मरिबे को साहस	४८६
मरी डरी कि	५०८
मलिन देह	५४७
मान करत	४३४
मानहु बिधि तन	११७
मानहु मुख	१७२
मार सुमार	५३३
मारयौ मनुहारन	४६६
मिलि चंदन बेंदी	४५
मिलि मिलि चलि	८४
मिलि परछाहीं	१८
मिलि बिहरत	५८२
मिस ही मिस	३२०
मीत न नीत	६४६
मुख पखारि मुँड़	६०१
मुँह उघारि प्यो	३५५
मुँह धोवति	६०३

	दो० नं०
मुँह मिठास	४२७
मुँह चढ़ाये हू	६७३
मृगनैनी दृग	५४३
मेरी भव-बाधा	१
मेरे बूझत बात	३४२
मैं तपाय त्रय	४१४
मैं तो सौं कै बा	२७४
मैं बरजी कै बार	१६०
मैं मिसहै सोयो	३५४
मैं यह तोही मैं	२९३
मैं लै दयो लयो	२५८
मैं हो जान्यो	१८५
मोर चंद्रिका	२०
मोर मुकुट की	१०
मो सौं मिलवति	३७६
मोहन मूरति	३
मोहिं करत	४१८
मोहिं तुम्हैं	७०४
मोहिं दयो मेरो	४६५
मोहिं भरोसो	३०६
मोहिं लजावत	४६०
मोहिं को छुटि	४५७
मोहू सौं तजि	१८७
मोहू सौं बातन	३६१
य	
यह जग काँचो	६८१
यह बसंत	५६१
यह बिनसत	५१४
यह बिरिया	६८७
या अनुरागी	१८२
या के उर	५०७
या भव पारावार	६८४
यौं दल काढ़े	६२८
यौं दलमलियत	१७८
र	
रँगराती राते	५४०
रँगी सुरति रङ्ग	३४५
रङ्ग न लखियत	२१५
रवि बन्दौ कर	६१६
रमन कह्यो	३४४
रस के से रुख	४२१
रस भिजये दोऊ	५५७
रस सिंगार मंजन	५०
रहित न रन	६३०
रहि न सकी	५८६
रहि न सक्यो	१४१
रहिहैं चंचल	४७६
रही अचल सी	२६७
रही दहेंड़ी	२८३
रही पकरि पाटी	१६६
रही पैज कीन्ही	३२१
रही फेरि मुँह	३२४

	दो० नं०
रही रुकी क्यों हूँ	५६१
रही लट्टू ह्वै	२६१
रहे बरोठे	५४६
रहो गुही वेनी	३७०
रह्यो ऐंचि	५३४
रह्यो चकित	४००
रह्यो ढीठ	१०८
रह्यौ मोह मिलनो	२५२
राति दिवस	४५५
राधा हरि हरि	३४३
रुक्यो साँकरे	५१४
रुख रूखे मिस	४३६
रुलितभृङ्ग	५६०
रूप-सुधा-आसव	१६३

ल

लई सौंह सी	१६०
लखि गुरुजन	४५१
लखि दौरत पिय	३३४
लखि लखि अँखियन	३७१
लखि लोयन	२७१
लगति सुभग	५८४
लगी अनलगी सी	१०६
लग्यो सुमन	४३२
लटकि लटकि	२४१
लहुवा लौं	६२६

	दो० नं०
लपटी पुहुप	५६३
लरिका लैवे के	२४१
ललन अलौकिक	२१
ललन चलन सुनि चुप	४७८
,, ,, ,, पालन में	४८२
ललित स्यामलीला	१५
लसन सेत सारी	६२
लसै मुरासा तिय	१२०
लहलहाति तन	३२
लहि रति सुख	३४६
लहि सूने घर	३२६
लागत कुटिल	७३
लाज गरब	३७३
लाज गहौ वेकाज	१५
लाज लगाम न	२४७
लाल तिहारे विरह	५०६
,, ,, रूप	२०६
लालन लहि पाये	३१२
लाल सलोने अरु	४०६
लिखन बैठि जाकी	१६५
लीने हू साहस	६७
लै चुभकी चलि	३६१
लोने मुख डीठि न	६८
लोपे कोपे इन्द्र	१४
लोभ लगे हरि	११६
ल्याई लाल विलो	३२१

	दो० नं०
व	
वारौं बलि	२६३
वाहि लखे लोयन	१४०
वाही की चित	३६६
वाही निशितैं	४४८
वेई कर व्यौरनि	३४
वेई गड़ि गाड़ै	३८२
वेई चिरजीवी	५७४
वे ठाढे उमदाहु	२६१
वे न इहाँ नागर	६६२
वैसीयै जानीपरै	३६५
स	
संगति दोष लगै	५६
संगति सुमति	३६८
संपति केस सुदेस	६२०
संबत ग्रह	७१०
सकत न तुव	४५३
सकुच सुरत	३३६
सकुचि न रहिये	४४४
सकुचि सरकि	३३५
सकै सताय न	४९१
सखि सोहति	६
सखी सिखावति	२०६
सघन कुंज घन	३०६
सघन कुंजछाय	५

	दो० नं०
सटपटाति सी	७२
सतर भौंह	४५६
सतसैयाके	७२१
सदन सदन के	३८९
सन सूको	२७५
सनि कज्जल	१७५
सब अङ्ग करि	६३
सबही तन	६१
सबै सोहायेई	४०
सबै हँसत	६४०
समरस समर	२०४
समय पलटि	७०६
समै	७१२
सरस कुसुम	६५७
सरसत पोंछत	३०४
सरस सुमिल	३५०
ससि बदनी	४२०
सहज सचिक्कन	३३
सहज सेत	१२१
सहित सनेह	२५४
सही रँगीली	३७७
साजे मोहन मोह	२२८
सामा सैन	७२३
सायँक सम मायक	५३
सारी डारी नील	१२७
सालति है नटसाल	१२२

	दो० नं०		दो० नं०
सीतलता रु	६७१	ह	
सीरैं जतननि	४६५	हँसि उतारि	२१०
सीस मुकुट	२	हँसि ओठन बिच	३४८
सुलगी बीती	२११	हँसि हँसाय	४२५
सुघर सौति बस	४६६	हँसि हँसि हेरति	३५६
सुदुति दुराये	६२	हठ न हठीली	५७३
सुनत पथिक मुँह	४६८	हठि हित करि	४७०
सुनि पग धुनि	५६९	हम हारी कै कै	४५०
सुभर भर्यो	४१३	हरषि न बोली	३२८
सुरँग महावर	४०२	हरि कीजतु	७०७
सुरति न ताल रु	२३४	हरि छबिजल	१४२
सूर उदित हू	१०१	हरि हरि बरि बरि	२८८
सेद सलिल	१७१	हा हा बदन	४४१
सोनजुही सी	२१८	हित करि तुम	३०१
सोवत जागत	५२१	हिये और सी	५२६
सोवत लखि	४३०	हुकुम पाय	७२४
सोवत सपने	५३६	हेरि हिंडोरे	३६८
सोहत अँगुठा	११२	होमति सुख	१८४
सोहत ओढ़े	२१	हौं हिय रहति	२२१
सोहति धोती	२६२	हौं हीं बौरी	५२०
सोहत सँग	६४८	हौं रीझी लखि	१३६
सौंहैं हू चाह्यो	४३७	ह्याँ ते ह्वाँ	१०३
स्याम सुरति करि	५२५	ह्याँ न चलै	४०५
स्वारथ सुकृत	६६६	ह्वै कपूर मनि	१४८

शब्द-कोश

दो० नं०

अ

अँगोट = आड़, रक्षा ४७६
अएरना = अङ्गीकार करना २७६
अकस = ईर्ष्या, विरोधी १०
अचकाँ = अचानक छिपकर २६७
अछत = नास्ति, नहीं ५३१
अछेह = (१) बहुत अधिक १५४
(२) निरन्तर ५०१
अठान = अनुचित कार्य १८६
अदब = आदर ४५४
अनखाहट = क्रोध ४६६
अनखुली = (अनखु + ली) कोप करनेवाली ३८८
अनवट = अँगूठा ११२
अबोलो = मान ४३३
अमोलक = बहुमूल्य ४३
अर = (अड़) हठ, ५२, ३४८
अरगट = (१) (आड़गत) घूँघुट
(२) (अलगंत) अलग ५०
अलीक = झूठ ४७७

आँट = ६२१
आक ४३५
आघु ४७

दो० नं०

आड़ = लंबी टिकुली, लंबी टीका ५९७
आमिल = शासक, गवर्नर ३१
आलबाल = थाला २१५
आले = गीले, भीगे ४९७
आसव = मदिरा, शराब १६३
आह = साहस ४२

इ

इठलाहट = परिहास ४५४

ई

ईछन = नेत्र ५७
ईठ = (सं० इष्ट) मित्र १८, ३२५

उ

उचना = उच्च होना, उठना ३४८
उचाना = उठाना ३४८
उछकना = नशे का उतरना १९४
उजास = उजेला, प्रकाश १०२
उझकना = (१) चौंकना ५५६
(२) झाँक कर देखना ३०६
उठान = दौड़, धावा ३५०
उताल = उतावली, शीघ्रता ३१६
उदोत = प्रकाश, छवि ३७, ४१
उपै जाना = उड़जाना २६४
उमदाना = उन्मत्त की चेष्टा

दो० नं०

उलमना=लटकना, झुकना ३१८
उरबसी=(१) धुकधुकी चौकी १३०
(२) एक अप्सरा विशेष २५६
उसरना=हट जाना ३४७
उसास देना=उखाड़ देना
उभाड़ना ५७८
उसीर=खस ५२३

ऐ

ऐंड़=गर्व, घमंड ३४५

ओ

ओड़=बेलदार, मिट्टीखोदनेवाला ६७५
ओक=स्थान, घर ५८०
ओथरो=उथला ६४५

औ

औम=(सं० अवम)
जिसका क्षय हो, वह तिथि
जिसकी हानि हो ५३१

क

कजाकी=(अ) लूट मार,
हत्यारापन ५६
कटना=रीझना २८५
कटनि=आसक्ति, रीझ ४१६
कन=(सं० कण) भिक्षा १६१
कपूर मणि=कहरुवा, एक प्रकार का
गोंद, जिसमें तृण उठाने की शक्ति
होती है, जैसे चुम्बक में लोहा
उठाने की शक्ति है १४८

दो०

किबलनुमा=एक यंत्र विशेष
जिसकी सुई सदैव एक ही
ओर ठहरती है ६
करिया=कर्णधार, मल्लाह ६८
कलित=(१) युक्त ३६
(२) सुन्दर ३६१
काती=तलवार ५४०
कालविपाक=समय की पूर्णता १६४
कालबूत=(फा० कालबुद) मेहराब
वा लदाऊ छत का भराव ३०७
कुबत=कुवार्ता, निन्दा ७०३
कुही=(फा० कुश्तन) मारो ५६७
केसर=किंजल्क ३८८
कैनि=(फा० कोरनिश)
कुन्नस, प्रार्थना, विनती ४३९
कैम=कठ कदंब ५७५
कोकनद=लाल कमल ३८७
कोद=ओर, दिशा, तरफ ५७२
कोहर=लाल इन्द्रायन ११०

ख

खए=पखौरा, भुजमूल ३५
खलित=(सं० स्खलित)
अर्द्ध स्पष्ट ३५६
खीर=(सं० क्षीर) दूध ४५३
खुभी=नाक की लौंग १२२
खूँद=उछल-कूद ७६, ५६४

	दो० नं०
खोट = खुट्ट (घाव की)	६१०
खौरौहौं = खौलतासा	५२५

ग

गढ़वै = गढ़पति, किले के अन्दर बन्द	४४७, ५८६
गदकारी = माँसल शरीरवाली	५९७
गलगली = अश्रुयुक्त	४७८
गलीत ह्वै = कष्ट सहकर	६४६
गहकना = गर्व करना,	३८४
गहिली = वावला गर्वीली,	४४२
गाँस = अनख, वैमनस्य,	३८४
गाड़ = गड्ढा	९४, ५९७
गीधना = लहरना, पर—कना	६९३
गुभरौट = शिकन पड़ा हुआ,	३४७
गुडी = पतंग,	२१३, ५०६
गुढ़ौ = दृढ़स्थान, मवास	३३४
गुलूबन्द = (फा०) कंठी	१४६
गोय = (फा०) गेंद	३५०
गोल = सेना का मध्य भाग	६६
ग्वैंड़ा = गाँव की पार्श्ववर्ती भूमि	५५०

घ

घैरू = चवाव, गुप्तनिंदा	१६३
घोंसुआ = घोंसला, आशियाना	२७०

च

चटक = (१) गौरैया पक्षी	४६२
(२) चमक-दमक	६१६
चटपटी = वेचैनी	१६६

	दो० नं०
चहुँघा = चारो ओर	४००
चाड़ = चाह	६४
चाय = चाह	१११
चोरी = चुगली	१७५
चाला = गौना, द्विरागमन	३१६
चाहना = देखना	५८४
चिरमि = चिरमिटी, गुञ्जा	१२६
चुनौटिया = चुन्नटदार	१३४
चुभकी = डुबकी, गोता	३६६
चुहटनी = गुञ्जा, घुँघुची	२६०
चुहुँटी = चुटकी	६०७
चुहुटना = वेदना होना	६००
चूँटना = चुनना, तोड़ना	३६१
चूरा = कड़ा (पैरका)	१०८
चोल = मंजीठ	६१६
चौका = अगले चार दातों का समूह	१०३
चौगान = गेंद का खेल जो घोड़े पर चढ़कर खेला जाता है, पोलो	३५०
चौसर = चार लड़ी की माला	५१२

छ

छत = प्रस्तुत, मौजूद, आछत	५०४, ५३१
छनकना = भाफ बनकर उड़ जाना	२५८
छपाकर = चन्द्रमा	३१२

छाक = नशा — दो० नं०
छींका = सिकहर — १००
छुही=सिंचित, छिड़की हुई — ६०८
— ५५२

ज

जक=(१) कल, चैन
(२) भय — १६८
जवाँई=(सं० जामातृ) दामाद — १५७
जातरूप=सोना — ५८३
जाम=पहर — १३६
जामन=खटाई जिससे दही जमाते हैं — ५०१
जिह=(फा०) चिल्ला प्रत्यंचा — १८२
जीगन=जुगनू — ७६
जोन्ह=चाँदनी — ४६२
जोयसी = ज्योतिषी, जोतखरा — १८
यो = जीव, प्राण — ६४१
— ४८५, ५००

झ

झँगा = जामा — २६४, ३९५
झझकना = डराना — ५५६
झपना = टूट पड़ना — ५६०
झर = (१) झड़ी
(२) अग्नि की लपट — ५०६ ५७०
झाँझकरना = शरारत करना — ५७०
झाँपना = ढाँपना, — ५६४
झार = लपट, ज्वाला — ५५६
झालरति जाति=बढ़ती जाती है — ५०६
— ५१३

झिलमिली = कर्ण-भूषण-विशेष, पात — दो० नं०
झीना = महीन — १२७
झुकना = क्रुद्ध होना — २८०
झुकराना = झोंके लेना — १२६, ३५८
झौंर = समूह — ५६४
— १३८, ५६०

ट

टहल = गृहकार्य, धंधा
टाँक = लिपि, लिखावट — ३१
(टाँकना=लिखना)
टोल = समूह, झुण्ड — ५०
— ३१६

ठ

ठकठक = विवाद (संशय-युक्त) — ५७७

ढ

ढरना = लुढ़कना, राजी होना
ढाढ़स = साहस — ३१६
ढाढ़ी = बधैया भाट — १०८
ढूँका देना = छिपकर किसी की बातचीत सुनना — २०३
ढोरी = बानि, आदत, — २४४
— २६४

त

तचना = गरमाना
तन = तरफ, ओर — ६१, २३२, ५२४
तरहरि = तरहटी, नीचे — ५८४
तरौंस = निचली तह. — ६७८
तापन = अग्नि — ५२५
ताफ्ता =(फा०) धूपछाँह (कपड़ा) — ५८५
— २४

	दो० नं०
तिलौंछि = रूखे, स्नेह हीन	४२५
तुलाई = दुलाई, रजाई,	५८५
तूठना = (सं० तुष्ट) प्रसन्न होना	२७१
तेह = क्रोध	४५०
त्यौं = तरफ, ओर	२६६, ७०५
त्यौनार = ढंग, चतुराई	१७०

थ

थुरहथी = छोटे हाथवाली	१६१

द

दंद = दुख	६३२
ददोरा = चोट की सूजन	६०९
दमामा = नगारा	६२४
दाघ = दाह, जलन	५६५
दान = गजमद	५९०
दाम = दमड़ी	३७
दुकूल = कपड़ा	५४३
दुमची = पतली शाखा	३६९

ध

धरधरा = धड़का	३७८
धरहरि = धैर्य	२७५
धुरवा = वर्षा की डोरें	५७२
धोवती = धोती	६४७

न

नटना = नाहीं करना	४०५
नटसाल = तीर की गाँसी जो टूट कर अङ्गके भीतर रह जाती है	१२२
नतरकु = नहीं तो	२४६
नाँदना = चैतन्य हो उठना	२७८
नाग वेलि = पान	४१९
नायक = नाच-गान सिखाने वाला गुरु	६३
नारि = गर्दन	६०७
नारी = राशि	१२४
नावक = नलिका-बाण	८०
निजु = निश्चय पूर्वक	४२०
निदाघ = ग्रीष्म	५२३, ५६५
निदान = रोग का कारण	४८८
निमूँद = प्रकट, खुला हुआ	५२२
निरधार = निश्चय	६८१
निसक = निःशक्ति, निर्बल	६२४
नीठि = मुशकिल से	२०१, ६८२
नींदना = निंदा करना	५३६
नै = नदी, झुककर	२८, ५२६, ६०१

प

पंचाली = द्रौपदी	५३४
पगार = उथला पानी, छीलर	६१८
पनहा = चोरी का पता देनेवाला	३१२
परिमल = सुगंध	५१८
परी = (फा०) अप्सरा	३६८
पलटा = बदला	४६४
पहुला = कुमोदिनी	५६६
पाटल = गुलाब	३०४
पानु = पाँव	४३६

	दो० नं०
पाप=महान कष्ट	४६५
पायक=पैदल, सिपाही	८३
पायल=पायजेब	४३
पार=पाढ़, किनारे की ऊँची सीमा	६५०
पुलक=रोमांच	३२४, ३५५
पैंज=प्रतिज्ञा	३२३
पैड़=डग, कदम	३४५
पैंडा=रास्ता	५५०
पोत=ढंग, समता	६२३
पौंरि=बरोठा, दहलीज	४८३, ४८४
प्यौसाल=नैहर	५३७
प्रकृति=स्वभाव	४८३

फ

फानूस=काँच की हाथी के भीतर का चिराग	१५०
फुरहरी=कम्प सहित रोमांच	६००
फूल=आनन्द	५४३
फेर=बहाना, मिस	१८२

ब

बगर=घर	५२६
बन=कपास का पेड़	२७५
बनौटी=कपासी	१३२
बरत=रस्सी	६५
बसीठि=दूती	४३३
बात=वायु	५०७
बाथ=अँकवार	२५१

	दो० नं०
बानिक=रूप	२
बाय=बावली, बेहर, बापी	६४
बार=द्वार	५२६
बिभावरी=रात	५८०
बिय=दो, दोनों	८३
बिससना=विश्वास करना	६२१
बिहरना=चीरना,	३८९
बीच=अन्तर, फर्क	६२५
बूढ़=बीरबहूटी	४२६, ५७१
बेझा=(सं० वेध्य) निशाना	७६
बै=वयस, उम्र	२८
ब्यौंत=युक्ति, ढंग	२३९
ब्यौरा=भेद, मर्म	३४

भ

भटभेरा=टक्कर,	३२७
भरु=भार, बोझा	२७, ३१८
भाल=(१) ललाट	४३
(२) तीर की गाँसी	४६
भेदीसार=बरमा	१४२
भोंडर=अबरख	४३

म

मकु=शायद, कदाचित	१४४
मतीरा=(राजपूतानी) तरबूज	६७७
मथनिया=वह मटकी जिसमें डालकर दही मथा जाता है	२८३
मनुहार=प्यार सहित आदर	४६६
मरुक=बढ़ावा, उत्तेजना	५२

दो० नं०

मलंग=फकीर, योगी ५२२

मवास=(१) गढ़, आश्रय स्थान १०४
(२) दुर्गमस्थान ५८३

महावरी=महावर की गोली १०९

मिति=मान १०५

मिलानु=मुकाम ४८४

मिसहा=छली, बहाने बाज ३५४

मीना=(रा० पू० मीणा)
भील, लुटेरा १०४

मुरवा=पैर का वह भाग जहाँ
कड़े छड़े पहने जाते हैं। १०८

मुरासा=कर्णफूल, तरकी १२०

मुलकना=नेत्रों से प्रसन्नता प्रकट
करना, आँखों में हँसना ३३५, ६१३

मूका=मोखा, दीवारमें का छेद २११

मूठि=जादू, मारण ५५३

मोट=गठरी ३४७, ३७५

मोष=मोक्ष ६८९, ७००

मौज=बखशिश, इनाम ६३०

र

रंग=(१) से, समान, ६८८
(२) समाचार ४१८

रंगरली=क्रीड़ा ५७१

रई=मथानी २८३

रकम=जमा, राज्यकर ३१

रदछद=(१) ओंठ ३६०
(२) दंताघात (सं० रदक्षत)

रस=रंग ५५७

दो० नं०

रहँचटा=अभिलाख १६१, ३१६

रावटी=बँगला ५२३

रुनित=शब्द करता हुआ ५६०

रोज=रोना-पीटना, सियापा ४४

रौहाल=(फा० रहवार) घोड़ा ५५०

ल

लगि=लग्गी, बाँस की छड़ी ३२

लटकना=झुककर चलना २४१

लहाछेह=एक प्रकार का नृत्य
जिसे लघुद्रुत भी कहते हैं १६

लाँक=कमर ३२

लाने=वास्ते ५६५

लाय=आग २७४, ४०२

लाव=रस्सी १३८

लीक=रेखा, लकीर ४०७

लेस=सम्बन्ध १७३

लोच=नरमी ४४५

लोट=त्रिवली ३४७, ३६१

लोयन=(१) लावण्य ३२
(२) लोचन ६७

स

संक्रौन=संक्राति २५

सगबगि रही=सराबोर
हो रही है। २८५

सटक=पतली छड़ी २५१

सटकारे=लम्बे ३१

सतर=(१) वंक तिरछे ३४४, ४२९
(२) कठोर ६२०

—हमारे साहित्यिक प्रकाशन—

रहीम रत्नावली

(संपादक—पं० मायाशंकर जी याज्ञिक)

रहीम की आज तक की प्राप्त कविताओं का अनोखा और सबसे बड़ा संग्रह है। मूल्य २)

पद्माकर की काव्य साधना

(श्री अखौरी गंगा प्रसाद सिंह जी)

यह ग्रंथ हिन्दी के आलोचना साहित्य का अद्वितीय रत्न है। इसमें पद्माकर का जीवनवृत्तान्त उनके ग्रंथों का आलोचनात्मक परिचय उनकी काव्य-साधना की मीमांसा और अन्त में उनकी सरस सूक्तियों का संग्रह दिया गया है। मूल्य २।)

तुलसी-सूक्ति-सुधा

(संपादक—श्री वियोगी हरि जी)

गोस्वामी तुलसीदास जी के समस्त ग्रन्थों की सूक्तियों का सार है। मूल्य ४)

अनुराग-वाटिका

(प्रणेता—श्री वियोगी हरि जी)

इस पुस्तिका में वियोगी हरि जी प्रणीत व्रजभाषा की कविताओं का संग्रह है। कविता के एक-एक शब्द अमूल्य रत्न है। मूल्य ।=)

भावना

(प्रणेता—श्री वियोगी हरि जी)

यह एक आध्यात्मिक गद्य-काव्य है। इसमें ५० गद्य-काव्य मुर्दे को जिलाने के लिये अमृत है। मूल्य ।।।)

तुलसी-चिकित्सा

(नवीन संस्करण)

तुलसी द्वारा अनेक रोगों से मुक्त होने के उपायों तथा औषधि का वर्णन किया गया है। पुस्तक मनुष्य मात्र के बड़े काम की है। मूल्य ।॥)

बिहारी-सतसई, सटीक

(टीका०—ला० भगवानदीन जी)

हिन्दी-संसार में शृंगार-रस की इसके जोड़ की कोई भी दूसरी पुस्तक नहीं है। इसमें बिहारी के प्रत्येक दोहे के नीचे उसके शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, वचननिरूपण, अलंकार आदि सभी ज्ञातव्य बातों का समावेश किया गया है। परिवर्द्धित संशोधित सचित्र संस्करण का मूल्य ३।)

This book is Sanctioned as a reference book for Hindi Teachers in Hindi Schools of central Province and Berar.

Vide order No. 6801, Dated 28-6-26.

गुलदस्तए बिहारी

(लेखक—देवी प्रसाद 'प्रीतम')

यह 'गुलदस्तए बिहारी' बिहारी-सतसई के दोहों पर रचे हुए उर्दू शेरों का संग्रह है। सचित्र संस्करण का मूल्य १॥)

भ्रमरगीत-सार

(सं० पं० रामचन्द्र शुक्ल)

महात्मा सूरदास जी के उत्कृष्टपदों का यह संग्रह है, सागर का सार अमृत है। सूरसागर का सर्वोत्कृष्ट अंश 'भ्रमर-गीत' माना जाता है। पाद-टिप्पणी सहित, संशोधित संस्करण का मूल्य ३)

महात्मा-नंददासजी कृत भ्रमर-गीत

(सं० बाबू ब्रजरत्नदास बी० ए०)

इस पुस्तक में कृष्ण के अपने सखा उद्धव द्वारा गोपियों के पास भेजे हुए संदेश का तथा गोपियों द्वारा उद्धव से कहे गये कृष्ण-प्रति उपालंभ का सजीव वर्णन है। मूल्य ।)

कुसुम-संग्रह

(लेखिका—श्रीमती वंग महिला)

इसमें ऐसी शिक्षापद आख्यायिकाओं का समावेश है जिनको पढ़-कर साधारणतया सभी स्त्रियों के आदर्श उच्च हो सकते हैं। इसको संयुक्तप्रान्त की तथा मध्य प्रदेश की गवर्नमेंट ने पुरस्कार पुस्तकों तथा पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत किया है। Vide order No 0754 Dated 12/12/16 सात रंग-विरंगे चित्रों से विभूषित पुस्तक का मूल्य १।।।)

श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव

(लेखक—श्रीयुत् देवीप्रसाद जी 'प्रीतम')

श्रीकृष्ण जी की जन्म-संबंधिनी कथाओं का एक खासा दर्पण है। अलंकारों की छटा की भी कमी नहीं है। मूल्य ।।=)

केशव-कौमुदी (रामचन्द्रिका सटीक)

(सं० लाला भगवानदीन जी)

हिंदी के महाकवि आचार्य केशव की सर्व-श्रेष्ठ पुस्तक रामचंद्रिका के मूल छंदों के नीचे उनके शब्दार्थ, भावार्थ, विशेपार्थ, नोट, अलंकारादि दिए गए हैं। २ भाग—मूल्य ४।)

दान-लीला

(सं० जवाहर लाल चतुर्वेदी)

यों तो दानलीला कई स्थानों से प्रकाशित हो चुकी है, किन्तु इतना बड़ा और इतना अच्छा संस्करण कहीं से भी प्रकाशित नहीं हुआ है। श्री हरिराय जी की उक्त दान लीला कितनी सरस और कितनी सुन्दर रचना है उसे आप स्वयं ही देखकर कहेंगे, इस विषय पर हमारा विशेष कहना आत्मप्रशंसा होगी। अष्ट-छाप के गण्यमान्य महानुभावों की सरस-रचनाओं का भी सुन्दर संग्रह किया गया है। इसके अतिरिक्त अनेक विद्वानों की समभावोद्योतक सरल-सूक्तियाँ दी गई हैं पुस्तकान्त में भर पूर शब्दार्थ, चोघड़िया और श्री गोकुल नाथ जी का वचनामृत भी दिये हैं जिसमें सब श्रेणी के पाठक और वैष्णव लाभ उठा सकें। छपाई-सफाई सुन्दर। मूल्य केवल ॥)

पढ़ने योग्य उपन्यास, नाटक, कहानी, काव्य इत्यादि पुस्तकें :—

पद्य-रत्नावली	१॥)	श्रीकान्त—श्री शरत् चन्द्र चटर्जी	५)
दुग्ध-तक्रादि चिकित्सा	१)	नीलम	५)
कहानियों की फुलवारी	।॥)	मंजिल	४)
चूहे की बादशाही	।॥)	मुखाकृति विज्ञान	३॥
पाकिस्तान	५)	भारत की झलक	२)
अभिशाप—श्री के० एम० मुंशी	५)	सिलाई कटाई	२)
प्रतिशोध ,,	५)	जागो (पैलेन)	४॥)
परदे की आड़ में ,,	२)	सूर संग्रह	१।)
स्वप्नद्रष्टा ,,	५)	अन्योक्ति कल्पद्रुम	२)
अतीत के स्वप्न ,,	४)	नवीन बीन	२)
गोरा—टैगोर	६)	अलंकार चंद्रिका	॥)
पैसा	४॥)	अनुवाद शिक्षक	।=)
घर और बाहर-रवि बाबू	३॥)	व्यंग्यार्थ मंजूषा	।=)

चूड़ियाँ	४)
लवंग	४)
निर्मोहि	३॥)
आहुति	३॥)
भँवरा	३।)
धड़कन	३॥)
पगडंडी	४)
अंगड़ाई	३॥)
दहेज	२॥)
गीताञ्जली	४॥)
लव लेटर्स	६)
आरती	४)
प्रामाणिक हिन्दी-कोश	१२॥)
अच्छी-हिन्दी	३)
प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन	३॥।)
कबीर साहित्य का अध्ययन	४॥)
हिन्दी प्रयोग	१।)
आँख की किरकिरी	४)
नाव दुर्घटना	४)
पथ के दावेदार-शरतचन्द्र	५॥)
देवदास—शरत बाबू	२)
मिलन-मंदिर	४)
नारी-धर्म-शिक्षा	२)
हिंदी राजतरंगिनी	४॥)
घाघ और भड्डरी की कहावतें	१॥)
केशव की काव्य कला	२॥)
काम कुंज	८)
अन्ताराष्ट्रीय विधान	६)
पश्चिमी यूरोप भाग १	४॥)
चिद्विलास	३॥)
सामयिकी	३॥)
पत्र और पत्रकार	६)
खंडित भारत	८)
गीतिकाव्य	५)
राजनीति शास्त्र	३)
शिक्षा मनोविज्ञान	४)
पूँजीवाद समाजवाद ग्रामोद्योग	५)
दर्शन का प्रयोजन	३॥)
राष्ट्रीयता और समाजवाद	१०)
बृहत हिन्दी कोश	२०)
कर्मभूमि—प्रेमचन्दजी	५)
कायाकल्प ”	६)
गबन ”	४)
गोदान ”	६)
निर्मला ”	१॥)
कफन ”	२)
मानसरोवर भाग ८ प्रत्येक भाग	३)
शेखर भाग १	५)
शेखर भाग २	५)
चरित्रहीन	५॥)
उषाकाल	७)
शैतान की शैतानी	४)
सेवासदन—प्रेमचन्दजी	३॥)
प्रेमाश्रम ”	६)
भारत की उपज	२)

साग-सब्जी	१॥)
बाग बगीचा	२)
सप्त सरोज	॥।)
प्रेम पचीसी	३॥)
प्रेम पूर्णिमा	२॥।)
घन आनन्द ग्रन्थावली	६)
बिहारी	२॥)
रसखानि ग्रन्थावली	२।)
भारतीय दर्शन	८)
संस्कृत साहित्य का इतिहास	५)
आर्य-संस्कृति के मूलाधार	५॥)
धर्म और दर्शन	३)
बौद्ध दर्शन	६)
संस्कृत वाङ्मय	१)
भारतीय साहित्य-शास्त्र	८)
प्रिया प्रकाश	२।)
सूर पंचरत्न	२॥)
कवितावली सटीक	२)
अलंकार मंजूषा	२)
दोहावली	१॥)
बिहारी और देव	।=)
केशव पचरत्न	१॥)
शेर-ओ-शायरी	८)
शेर-ओ-सुख़न	८)
शुक्तिदूत	५)
दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ	३)
मिलन यामिनी	४)
वैदिक साहित्य	६)
ज्ञान गंगा	६)
भारतीय ज्योतिष	६)
संस्मरण	३)
बिहारी-रत्नाकर	८)
कविवर-बिहारी	६)
कविवर-रत्नाकर	५)
नीलम की अँगुठी	४)
तुलसी ग्रन्थावली	४॥)
सूर सागर २ खंड में प्रत्येक	१०)
रस मीमांसा	७)
नंददास ग्रंथावली	५)
भारतेन्दु नाटकावली	८)
हिन्दी सा० का इतिहास	७)
हिन्दी दासबोध	३)
गीता ज्ञानेश्वरी	५)
आधुनिक हिन्दी सा० का० इतिहास	३॥।)
हिन्दी साहित्य का इतिहास	१।)
वाङ्मय विमर्श	५)
प्रिय प्रवास	३=)
वैदेही वनवास	३)
रस कलस	४॥)
बिहारी की वाग्विभूति	२॥)
मीरा माधुरी	४)
हिन्दी नाट्य साहित्य	२॥।)
मधुकरी २ भाग प्रत्येक	३)
प्रसाद उनका साहित्य	२॥)
उर्दू साहित्य का इतिहास	३)

आँख और कविगण

(संपादक—पं० जवाहर लाल चतुर्वेदी)

हिंदी साहित्य में यह आँख पर की गई कविताओं का पहला संग्रह है। कवियों की कल्पनातीत-कविता का रसास्वादन कर आप तृप्त हो जावेंगे। हम अपने मुख से कुछ अधिक न कह कर इस अभूतपूर्व पुस्तक के संबंध में केवल दो प्रतिष्ठित सम्मतियाँ देना ही उपयुक्त समझते हैं।

"हिंदी में यह पुस्तक अपने ढंग की अनोखी है। हिंदी, संस्कृत, उर्दू और फ़ारसी के प्राचीन तथा आधुनिक अनेक सुप्रसिद्ध कवियों की नेत्र-संबंधिनी कविताओं का यह वृहत संग्रह है। संकलक महोदय ने उक्त चारों भाषाओं के साहित्य-सागर का पूरा मंथन कर वे सूक्ति-रत्न निकाले हैं, जो हिंदी-संसार को अपनी अलौकिक चमक से चका-चौंध कर देने के लिये पर्याप्त हैं।

आँखों से संबंध रखनेवाली ऐसी अगणित सूक्तियों का यह संकलन है, जिन्हें पढ़ने से सहृदयों और भावुकों के हृदयोदधि में तूफ़ान आए बिना नहीं रह सकता। इस पुस्तक से मनोरंजन तथा ज्ञानार्जन दोनों होता है। काव्य-रस-लोलुपों के लिये यह बड़े काम की चीज़ है।"

—गयाप्रसाद शुक्ल एम० ए० (डी० ए० वी० कालेज मैनेजर देहरादून)

आँख पर संसार के सभी कवियों ने सभी भाषाओं में विचित्र-विचित्र उक्तियाँ कही हैं। संस्कृत और हिन्दी का तो कहना ही क्या है। इन भाषाओं के कवियों ने तो जो विषय लिया उसपर जहाँ तक मानव कल्पना की पहुँच हो सकती थी पहुँच गए! ऐसी ऐसी उक्तियाँ संपादक महोदय को जहाँ मिलीं, आपने संग्रह की हैं। रसिक सज्जनों को यह पुस्तक अपने पास अवश्य रखनी चाहिये। मूल्य १) मात्र।

—कृष्णदेव प्रसाद गौड़ 'आज' काशी।

गो० तुलसीदासजी कृत

विनय-पत्रिका

(टीकाकार — श्रीवियोगीहरि)

सर्वमान्य 'रामायण' के प्रणेता महात्मा तुलसीदासजी का नाम भला कौन नहीं जानता ? गोस्वामीजी की सर्वश्रेष्ठ रचना यही विनय-पत्रिका है ! विनय-पत्रिका का सा भक्तिज्ञान का दूसरा कोई ग्रंथ नहीं है। इसमें शिव, हनुमान, भरत, लक्ष्मण आदि पार्षदों सहित जगदीश श्रीरामचन्द्र की स्तुति के बहाने वेदान्त के गूढ़ तत्त्वों का समावेश किया गया है। वेद, पुराण, उपनिषद, गीतादि में वर्णित ज्ञान की सभी बातें इसमें गागर में सागर की भाँति भर दी गई हैं। इसकी टीका उच्चकोटि के विद्वान एवं लब्धप्रतिष्ठ वियोगीहरिजी ने की है। इस टीका में शब्दार्थ भावार्थ, विशेषार्थ, प्रसंग, पदच्छेद आदि सब ही कुछ दिये गये हैं। भावार्थ के नीचे टिप्पणीमें अंतर-कथाएँ, अलंकार, शंकासमाधान आदि के साथ-ही-साथ समानार्थी हिंदी तथा संस्कृत कवियों के अवतरण भी दिए गए हैं। अर्थ तथा प्रसंग पुष्टि के लिए गीता, वाल्मीकि रामायण तथा भागवत आदि पुराणों के श्लोक भी उद्धृत किए गए हैं। दार्शनिक भाव तो खूब ही समझाए गए हैं। इन सब बातों के कारण टीका अद्वितीय हुई है। नवीन संशोधित तथा परिवर्द्धित संस्करण का मूल्य ६) मात्र,

This book is sanctioned as a reference book for Hindi Teachers in High Schools of C. P. & Berar. Vide order No. 6801 Dated 28. 9. 26.

सभी प्रकार की उत्तम पुस्तकों के मँगाने का एकमात्र पता :—

दूधविनायक, बनारस।